गहरे पानी पैठ

भगवान् श्री रजनीश

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई,
१९७४

गहरे पानी पैठ

भगवान्श्री रजनीश

जीवन जागृति आन्दोलन प्रकाशन, बम्बई,
१९७४

प्रकाशक :
ईश्वरलाल एन. शाह,
मंत्री, जीवन जागृति केन्द्र,
३१, इजरायल मोहल्ला,
भगवान भुवन, मस्जिद बन्दर रोड,
बंबई-९

प्रथम संस्करण अगस्त, १९७१
द्वितीय आवृत्ति अक्टूबर, १९७२
तृतीय आवृत्ति : फरवरी १९७४

मूल्य : ७ रुपये

मुद्रक :
अमरनाथ मल्लिक,
इंडिया पब्लिशिंग हाऊस,
२५१, कामदार चेंबर्स,
सायन (पूर्व), बम्बई-२२.

अनुक्रम

आमुख

●

स्वामी आनन्द वीतराग
एम. ए., पी. एच-डी. (एडिनबरा)
डी. लिट. (पटना)

आमुख

उपनिषदों के ऋषि इस बात पर बल देते थे कि आदित्य को ब्रह्म मानकर उपासना करनेवाले साधक तद्रूप हो जाते हैं।

भगवान् रजनीश को मैं ब्रह्मवेत्ता कहता हूँ, आदित्यरूप समझता हूँ और उनकी देशनाओं में उनके आदित्यत्व की अभिव्यक्ति पाता हूँ।

उन्होंने ब्रह्म के प्रकाशवान् चतुष्कल पाद की उपासना की है।

कहा जाता है कि ब्रह्म के अनन्तवान् नाम वाले चतुष्कल पाद की उपासना के अनन्तर वे ज्योतिष्मान् पाद की ओर तथा अन्ततः आयतनवान् पाद की उपासना की ओर प्रवृत्त हुए थे।

जिस व्यक्ति ने 'आत्मैवेदं सर्वम्' के रहस्य का उद्घाटन कर लिया, उसके लिए उनकी देशनाओं में दीख पड़नेवाले सारे-के-सारे अन्तर्विरोध मिट गए। वस्तुतः हम जिन्हें विरोधी, अन्तर्विरोधी, असंगत आदि शब्दों से विशेषित करते हैं, वे भी आदित्य से ही उद्भूत हुए हैं। आदित्य वही ब्रह्म है जो असत् से सत् होने पर एक अंडे में परिणत हो गया था। एक वर्ष पर्यन्त इसी प्रकार पड़े रहने के बाद जब वह फूटा तब उसके रजत और सुवर्णरूप दो खंड हुए।

ये दोनों खंड परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं।

जो कभी असत्—स्तब्ध, स्पन्दनरहित और शून्य—था, वही कार्याभिमुख होकर प्रवृत्ति उत्पन्न होने के कारण सत् हो गया। छान्दोग्योपनिषद् कहती है कि फिर उससे भी कुछ स्पन्दन प्राप्त कर वह थोड़े से नाम-रूप की अभिव्यक्ति के

कारण अंकुरित हुए बीज के समान हो गया। उस अवस्था से ही वह क्रमशः कुछ और स्थूल होता हुआ जल से अंडे के रूप में परिणत हो गया ('आण्डमिति दैर्घ्यं छान्दसम्')। भगवान्श्री की आरम्भिक देशनाएँ इस अंडे के एक तत्त्व को और प्रस्तुत संकलन की देशनाएँ उसके दूसरे तत्त्व को उद्भासित करती हैं। परन्तु ये दोनों तत्त्व परस्पर सम्पूरक और 'ब्रह्म के ही दो हाथ' हैं। यदि एक तत्त्व अंडे का रजत खंड है तो दूसरा तत्त्व उसका सुवर्ण खंड। दोनों भगवान्श्री के 'अपरिवर्तनीय सत् की अनन्त उर्वरता' की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। न तो रजत खंड अपने-आप में पूर्ण था और न स्वर्ण खंड ही रजत के बिना पूर्ण होता। श्वेताश्वतर उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म पशु है, पक्षी है, कृति है, जर्जर वृद्ध है, बालक है, बालिका है। वही समस्त जगत् का कारण है, प्रत्येक व्यक्ति का आत्मभाव है और सभी अन्तर्विरोधों को आत्मसात् करनेवाला है। विरोध और असंगति देखनेवाले लोग अपनी मूढ़तावश जगत् के एक पक्ष को देखते और उसके दूसरे पक्ष के प्रति अंधे होते हैं। यहाँ न तो प्रकाश है और न अंधकार, न अच्छा और न बुरा, न सत् और न असत्, न अहं और न अनहं, न आत्मा और न अनात्मा, न चेतन और न अचेतन। बौद्ध भिक्षुओं की भाषा में भगवान्श्री भी, सम्भवतः यही कहते कि 'शून्यता ही सभी वस्तुओं की विशेषता है; उनका न आदि है और न अन्त; वे निर्दोष हैं और निर्दोष नहीं हैं; वे पूर्ण नहीं हैं और अपूर्ण भी नहीं।'

भगवान्श्री के प्रवचनों को इसी शून्यता के आलोक में पढ़िये। जहाँ अन्तर्विरोध दीख पड़े वहाँ अपनी बुद्धि की सीमाओं के प्रति सजग हो जाइये और याद रखिए कि यद्यपि सिक्के के दो पहलू होते हैं, हमें एक साथ उनका एक ही पार्श्व दीख पड़ता है।

स्वयं सत्य प्रकाश और अप्रकाश, इच्छा और अनिच्छा, क्रोध और अक्रोध, नियम और अनियम—दोनों से पूर्ण है।

भगवान्श्री की बालसुलभ सरल चेतना बोधिसत्त्वों की प्रज्ञापारमिता के निकट पहुँच गई है। वह अन्तर्विरोधों में विरोध नहीं देखती और न असंगति को असंगत मानती है। ऐसी चेतनाएँ तर्कशून्यता में निविष्ट रहती हैं। मानवेतिहास के आरम्भिक युगों में मनुष्य का मन नाना प्रकार के विरोधों और अनिश्चयों से आक्रान्त था। परन्तु उसका अवैज्ञानिक सरल मन विचित्र मार्गों से आकर इन परिस्थितियों में उसकी सहायता करता। तर्क की दृष्टि से परस्पर विरोधी दीख पड़नेवाले दृष्टिकोणों की युक्तियुक्तता को वह एक साथ स्वीकार कर लेता। उनके अनेकरूपात्मक देवी-देवता इसके प्रमाण हैं। बेबिलोनवासी प्रकृति की उत्पादन-ऊर्जा की पूजा वर्षा में एक ऐसे पक्षी के रूप में करते थे जिसका सिर

सिंह का होता; जब वे धरती की उर्वरा शक्ति की पूजा करते तो साँप का रूप देते और मन्दिरों की मूर्तियों को मनुष्य का रूप। प्राचीन हिन्दू इसी सृष्टि-ऊर्जा की पूजा काली के रूप में करते थे और उसे भिन्न-भिन्न अनित्य एवं परस्पर विरोधी दीख पड़नेवाले स्वरूपों में देखते थे। कभी उसे एक अत्यन्त रूपवती नवयुवती बना डालते और कभी नरभक्षिणी राक्षसी। कभी उसकी लम्बी जिह्वा संसार को चाटती दीख पड़ती और कभी उसका शरीर कोमल तथा उसके उरोज अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं उभरे होते। जीवन और धर्म के प्रति उनके ऐसे दृष्टिकोण के मूल में कोरा अंधविश्वास न होकर गम्भीर तत्त्वदर्शन की पीठिका होती थी। देवी-देवताओं के भिन्न-भिन्न वेश और भिन्न-भिन्न पहलुओं से युक्त उनके रूप प्रकृति की जटिलता की ही लयबद्ध एवं कवित्वमयी अभिव्यक्तियाँ हैं।

●

भगवान्श्री रजनीश मानव-जीवन की सरलता एवं संश्लिष्टता, इसके विरोधों और रहस्यों के प्रति जागरूक हैं और अपने चिन्तन के प्रगाढ़ क्षणों में इन सबको समेटते हुए कबीर और गोरखनाथ की उलटबासियों जैसी भाषा में प्रवचन करते जान पड़ते हैं। विश्व के स्वर्ण-स्वप्न से जागी हुई ऐसी प्रबुद्ध आत्माएँ संसृति के प्रथम प्रभात का अभिनन्दन करती हैं और वेदों, तीर्थों तथा मूर्तियों की सार्थकता को ऐसे ही दिव्य परिवेश से अनुस्यूत करती हैं। जब सृष्टि के प्रथमोद्गार में मानव-जीवन बालोचित सरलता से ओतप्रोत था, जब मानवता ने (कविवर पंत के शब्दों में) 'राशि-राशि विकसित वसुधा के यौवन विस्तार' की गवेषणा के लिए वैज्ञानिक दृष्टि विकसित नहीं की थी और जब उसे प्रकृति की 'नग्न सुकुमार सुन्दरता' ही प्यारी थी, तब मूर्तियों के सामने नतशिर होने का कुछ अर्थ था। तभी अपनी तीसरी आँख से प्रसूनों के शाश्वत शृंगार में अथवा पृथ्वी पर अभिसार करती हुई स्वर्ग की सुषमा में वह निखिल ब्रह्मांड के सौन्दर्य को तथा उसमें परिव्याप्त परमात्मा को देखने में समर्थ थी।

हमारी तीसरी आँख ही असली मन्दिरों और मूर्तियों को पहचान सकती है।

परन्तु, चूँकि खो गई है वह आँख, इसलिए असली मन्दिर भी दीख नहीं पड़ते आज।

असली मूर्तियाँ पूजा-पाठ की असली विधियाँ भी खो गई हैं मानो।
प्रवेश की कुंजियों का पता नहीं।
मन्दिरों और तीर्थों के विज्ञान का अवशेष तक नहीं दीखता।
विश्वनाथ के असली मन्दिर में किसी गृहस्थ ने कभी प्रवेश नहीं पाया।

तिलक भी हर कहीं लगा देने की बात नहीं है ।

प्रत्येक व्यक्ति का वह बिन्दु जहाँ तिलक लगाया जाना चाहिए एक ही जगह नहीं होता ।

तिलक के साथ जुड़ी हुई साधनाओं की जगह दिखावे के त्रिपुण्ड और विविधाकार रेखाएँ बच गईं ।

असली मन्दिर वहाँ नहीं जहाँ वे दीख पड़ते हैं।

असली तिलक-स्थान वहाँ नहीं जहाँ भस्म और चन्दन की रेखाएँ बनायी जाती हैं।

असली पूजा की कोई विधि नहीं होती, कोई विधान नहीं होता ।

पूजा आन्तरिक उद्भाव है—अत्यन्त निजी, अत्यन्त वैयक्तिक परन्तु हम आकार से ऊपर निराकार में छलाँग लगाने में असमर्थ होते हैं।

मूर्ति कभी नहीं छूटती और, इस कारण, न कभी सच्ची पूजा हो पाती है।

हम मूर्तियों पर रुक गए हैं।

सागर में छलाँग लगाना हो तो 'जंपिंग बोर्डों' का उपयोग करो, फिर त्याग दो इन्हें, कूद जाओ अनन्त में, साकार से निराकार में, शब्द से निःशब्द में । और स्मरण रखो 'गहरे में साकार निराकार के विपरीत नहीं है—वह भी निराकार का ही एक अविभाजित हिस्सा है । चूँकि हमारी देखने की क्षमता सीमित है, इसलिए वह विभाजित दीख पड़ता है । अन्यथा है वह अविभाजित ।'

भगवान्श्री के प्रवचनों में कहाँ है असंगति? कहाँ है अन्तर्विरोध? आज भी वे यही कहेंगे कि 'मन्दिरों ने, मस्जिदों ने, सम्प्रदायों ने मनुष्य को ईश्वर से दूर रखने के सारे उपाय किये हैं, निकट पहुँचाने के नहीं । और यही तो वजह है कि तीन-चार हजार वर्षों के इतिहास के बाद हम मनुष्य को पाते हैं कि वह अधार्मिक होता चला जा रहा है । . . . और यदि मन्दिर और मस्जिद, हिन्दू और मुसलमान और सत्य के नाम पर चलती हुई परम्परागत थोथी बातें इसी भाँति चलती रहीं, तो वह दिन भी दूर नहीं है जबकि धर्म तिरोहित हो सकता है ।' ये पंक्तियाँ दिसम्बर १९६७ की 'ज्योति-शिखा' से उद्धृत हैं। ६ जून, १९७१ की अन्तरंग वार्ता, जो प्रस्तुत ग्रन्थ में संकलित है, भगवान्श्री की इसी मनोदृष्टि का विकसित प्रस्तुतीकरण अथवा विशदीकरण है, न कि उसका निरसन । क्या आज भी वे यह नहीं कहते कि हमारे असली तीर्थ वहाँ नहीं हैं जहाँ हमारी मुमुक्षा, हमारा स्वार्थ हमें घसीट ले जाता है ? क्या उनका इंगित इस तथ्य की ओर नहीं है कि हम जिसे मूर्ति मानकर पूजा करते हैं वह हमारे हाथों से निर्मित पत्थर-मात्र है ? वे कहते

हैं : '. . . . प्रतिमाएँ व्यक्ति की कम, किसी भाव-दशा की ज्यादा हैं । यदि बुद्ध की प्रतिमा पर ध्यान करेंगे तो थोड़ी ही देर में एहसास होना शुरू हो जायगा कि वह उनकी अद्भुत अनुकम्पा का, उनकी महाकरुणा का मूर्तिमान् रूप है । बुद्ध का उठा हुआ हाथ, बुद्ध की आधी मुंदी हुई पलकें और उनके चेहरे का अनुपात, उनके बैठने का ढंग, उनके मुड़े हुए पैर, उनकी सारी की सारी आनुपातिक व्यवस्था किसी गहरे में आपके भीतर करुणा से सम्बन्ध जोड़ने का उपाय है ।' ऐसी प्रतिमाओं से हमारा सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है जब हम खुले हों । स्वार्थांध व्यक्ति की पूजा, संकुचित हृदय की अपस्वार्थ से भरी प्रार्थनाएँ, साकार से बँधे रहने की प्रवृत्ति और निराकार-निस्सीम में छलाँग लगाने का भय – हमारे मन्दिरों और तीर्थों को इसी कारण निरर्थक कर डालते हैं।

भगवान्श्री के साक्ष्यानुसार प्रत्येक विश्वधर्म की निजी गुप्त भाषा और गुप्त परम्परा होती है । साधारण व्यक्ति इस परम्परा को विकृत न कर दे, इसलिए इसे गुप्त रखा जाता है, छिपाने की निरन्तर कोशिशें की जाती हैं।

●

महीपाल के नाम —

हे सौम्य–सदायतन–सत्प्रतिष्ठ,
भगवान्श्री में जीवन की तरलता और प्रवाह है,
और उनके 'विचारों' में गति।
वे, ठीक ही, कहते हैं—
स्थैर्य मृत्यु है,
विकास जीवन;
सत्य बुद्धि से महत्तर है,
बुद्धि सत्य से अवर।
बुद्धि स्वभाव से तोड़ती है,
केन्द्र की ओर गतिमान् नहीं करती ।
छिछली है,
विश्लेषणक्षमा है केवल,
इसलिए स्वयं को स्वयं से नहीं जोड़ती ।
पार्थक्य और विरोध देखती है—
पक्षपातपूर्ण दृष्टि केवल विरोध देखती है—
बुद्धि असंगति।
प्रवचनों का यह संकलन

'गुप्त तीर्थों की बात' है।
वहीं चेतना गतिमान् होती है,
वहीं सबकी चेतनाएँ एक-दूसरे में प्रवाहित होती हैं।
केवल साधारण तीर्थों की यह बात नहीं है।
और ध्यान रहे—'ध्यान की क्षमता'
से ही तीर्थ सार्थक हो सकते हैं,
अन्यथा, उनका अर्थ नहीं रह जाता।
साधु-संन्यासियों की चाँद-सम्बन्धी धारणा
यहाँ भी तो धूलि-ध्वस्त होती है,
उनकी 'किताब' का 'कोरा कागद',
उनका अंधापन,
मात्र रह जाता है।
रजनीश तक शब्द नहीं जाते,
तर्क पीछे रह जाते हैं—
'न तर्क शब्द विज्ञानात् न वराद्वेद पाठनात्,
स्वस्थो योगी स्वयं कर्ता लीलया चाजरामरः।'

इस सुरुचिपूर्ण सम्पादन के लिए
कोटिशः साधुवाद !

अंग्रेजी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय,
पटना

विनीत :
स्वामी आनन्द वीतराग

?

"मन्दिर, तीर्थ, तिलक-टीके, मूर्ति-पूजा, माला, मंत्र-तंत्र, शास्त्र-पुराण, हवन-यज्ञ, अनुष्ठान, श्राद्ध, ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष गणना, शकुन-अपशकुन, इनका कभी अर्थ था, पर अब व्यर्थ हो गये हैं। इन्हें समझाने की कृपा करें और बतायें कि क्या ये साधना के बाह्य उपकरण थे? रिमेम्बरिंग या स्मरण की मात्र बाह्य व्यवस्था थी, जो समय की तीव्र गति के साथ पूरी की पूरी उखड़ गयी? अथवा भीतर से भी इसके कुछ अन्तर संबंध थे? क्या समय इन्हें पुनः लेने को राजी होगा?"

उपरोक्त प्रश्न महीपालजी द्वारा अंतरंग-वार्त्ता के अंतर्गत भगवान्श्री से निवेदित किया गया था। और उसी संदर्भ में भगवान्श्री ने मंदिर, तीर्थ, तिलक-टीके एवं मूर्ति-पूजा की जो तात्विक-विश्लेषणात्मक विशद विवेचना की—उसे ही संकलित-रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मंदिर

जैसे हाथ में चाभी हो और उस चाभी को हम कैसे भी सीधा जानने का उपाय करें, या चाभी से ही चाभी को समझना चाहें, तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता उस चाभी की छान-बीन से, कि कोई बड़ा खजाना उसके हाथ लग सकता है। चाभी में ऐसी कोई भी सूचना नहीं है जिससे छिपे हुए खजाने का पता लगे। चाभी अपने में बिल्कुल बन्द है। चाभी को हम तोड़ें-फोड़ें, या काटें, तो भले ही लोहा हाथ लगे, या और धातुएं हाथ लग जायं, पर उस खजाने की कोई खबर हाथ न लगेगी, जो चाभी से मिल सकता है। और जब भी कोई चाभी ऐसी हो जाती है जीवन में, कि जिससे खजानों का हमें पता नहीं लगता है, तब सिवाय बोझ ढोने के हम और कुछ भी नहीं ढोते। और जिन्दगी में ऐसी बहुत सी चाभियां हैं जो किन्हीं खजानों का द्वार खोलती हैं—आज भी खोल सकती हैं। पर न हमें खजानों का कोई पता है, न उन तालों का हमें कोई पता है जो हमसे खुलेंगे। जब तालों का भी पता नहीं होता और खजानों का भी पता नहीं होता, तो स्वभावतः हमारे हाथ में जो रह जाता है उसको हम चाभी भी नहीं कह सकते! वह चाभी तभी है जब किसी ताले को खोलती हो। उस चाभी से कभी खजाने खुले थे, आज उससे कुछ भी नहीं खुलता है, इसलिए वह बोझिल हो गई है; तो भी मन उसे फेंक देने का

नहीं होता । कहीं अचेतन में मनुष्य जाति के वह धीमी-सी गन्ध बनी ही रह जाती है । चाहे हजारों साल पहले वह चाभी कोई ताला खोलती रही हो, लेकिन मनुष्य की अचेतना में, उससे कभी ताले खुले हैं, कभी कोई खजाने उससे उपलब्ध हुए हैं,—इस स्मृति के कारण ही उस चाभी के बोझ को हम ढोये चले जाते हैं। न कोई खजाना खुलता है अब, न कोई ताला खुलता है! फिर भी कोई कितना ही समझाये कि चाभी बेकार है, उसे फेंक देने का साहस नहीं जुट पाता है । कहीं किसी कोने में मन के, कोई आशा पलती ही रहती है कि शायद कभी कोई ताला खुल जाय !

मन्दिर को ही लें । पृथ्वी पर ऐसी एक भी जाति नहीं है जिसने मन्दिर जैसी कोई चीज निर्मित न की हो । वह उसे मस्जिद कहती हो, चर्च कहती हो, गुरुद्वारा कहती हो—इससे बहुत प्रयोजन नहीं है । आज तो यह संभव है कि हम दूसरी जातियों से भी कुछ सीख लें । एक वक्त था, तब दूसरी जातियाँ हैं भी, इसका भी हमें पता नहीं था । तो मन्दिर कोई ऐसी चीज नहीं है, जो बाहर से किन्हीं कल्पना करने वाले लोगों ने खड़ी कर ली हो । वह मनुष्य की चेतना से ही निकली हुई कोई चीज है । मनुष्य कितनी ही दूर, कितने ही एकान्त में—पर्वत में, पहाड़ में, झील पर, कहीं भी बसा हुआ हो, उसने मन्दिर जैसा कुछ जरूर निर्मित किया है । मनुष्य की चेतना से ही कुछ निकल रहा है । यह अनुकरण नहीं है; एक दूसरे को देखकर कुछ निर्मित नहीं हो गया है । इसलिये विभिन्न तरह के मन्दिर बने, लेकिन मन्दिर बने अवश्य ।

बहुत फर्क है एक मन्दिर में और एक मस्जिद में । उनकी व्यवस्था में बहुत फर्क है । उनकी योजना में बहुत फर्क है । लेकिन आकांक्षा में फर्क नहीं है, अभीप्सा में फर्क नहीं है । मनुष्य कहीं भी हो, कितना ही दूसरों से अपरिचित हो, वह अपनी चेतना में कहीं कोई बीज छिपाये है, यह एक बात ख्याल में ले लेने जैसी है । दूसरी बात यह भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि हजारों साल हो जाते हैं, न तालों का पता रह जाता है, न खजानों का । लेकिन फिर भी जिस किसी चीज को हम, किसी बिल्कुल अनजाने मोह से ग्रसित लिये चलते हैं; उस पर हजार आघात होते हैं, बुद्धि उसको सब तरफ से तोड़ने चलती है । युग का आज का बुद्धिमान जिसे सब तरह से इन्कार करता है, फिर भी मनुष्य का मन उसे संभाले चलता है इस सबके बावजूद । तो यह बात स्मरण रख लेनी जरूरी है कि मनुष्य की अचेतना में, आज उसे ज्ञात नहीं है तो भी, कहीं कोई गूंजती-सी धुन जरूर है जो कहती है कि कभी कोई ताला खुलता था । अचेतना में इसलिए, कि हम में से कोई भी नया पैदा हो गया हो,

एसा नहीं है । हम में से सभी अनेक बार पैदा हो चुके हैं । ऐसा कोई युग न था जब हम न हों । ऐसी कोई घड़ी न थी जब हम न हों । उस दिन जो हमारी चेतना थी, उस दिन जो हमने चेतन जाना था, वह आज हजारों परतों के भीतर दबा हुआ 'अचेतन' बन गया है । उस दिन अगर हमने मंदिर का रहस्य जाना था, और उससे हमने किसी द्वार को खुलते देखा था, तो आज भी हमारे अचेतन के किसी कोने में वह स्मृति दबी पड़ी है । बुद्धि लाख इन्कार कर दे, लेकिन बुद्धि उतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी गहरी वह स्मृति है । इसलिए सब आघातों के बावजूद, और सब तरह से व्यर्थ दिखायी पड़ने के बावजूद भी कुछ चीजें हैं, कि 'परसिस्ट' करती हैं, हटतीं नहीं । नये रूप लेती हैं, लेकिन जारी रहती हैं । यह तभी संभव होता है जब कि हमारे अनंत जन्मों की यात्रा में, अनंत-अनंत बार, किसी चीज को हमने जाना है यद्यपि आज भूले हुए हैं । और इन में से प्रत्येक का बाह्य उपकरण की तरह तो उपयोग हुआ ही है, उनका आंतरिक अर्थ भी है, अभिप्राय भी है ।

पहले तो मंदिर को बनाने की जो जागतिक कल्पना है, वह यह कि सिर्फ मनुष्य है, जो मंदिर बनाता है । घर तो पशु भी बनाते हैं, घोंसले तो पक्षी भी बनाते हैं, किंतु वे मंदिर नहीं बनाते । मनुष्य की, जो भेद रेखा खींची जाय पशुओं से, उसमें यह भी लिखना ही पड़ेगा कि वह मंदिर बनाने वाला प्राणी है । कोई दूसरा मंदिर नहीं बनाता । अपने लिए आवास तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है । अपने रहने की जगह तो कोई भी बनाता है । छोटे-छोटे कीड़े भी बनाते हैं, पक्षी भी बनाते हैं, पशु भी बनाते हैं; लेकिन परमात्मा के लिए आवास मनुष्य का जागतिक लक्षण है । परमात्मा के लिए भी आवास, उसके लिए भी कोई जगह बनाना ! परमात्मा के गहन बोध के अतिरिक्त मंदिर नहीं बनाया जा सकता । फिर परमात्मा का गहन बोध भी खो जाय तो मंदिर बचा रहेगा, लेकिन बनाया नहीं जा सकता बिना बोध के । जैसे आपने एक अतिथि गृह बनाया घर में, वह इसलिये कि अतिथि आते रहे होंगे । अतिथि न आते हों तो आप अतिथि गृह नहीं बनाने वाले हैं । हालांकि यह हो सकता है कि अब अतिथि न आते हों और अतिथि गृह खड़ा रह गया हो । तो परमात्मा के लिए भी आवास की धारणा उन क्षणों में पैदा हुई जब परमात्मा सिर्फ कल्पना की बात नहीं थी, अनेक लोगों के अनुभव की बात थी । और परमात्मा के अवतरण की जो प्रक्रिया थी, उसके उतरने की, उसके लिए एक विशेष आवास, एक विशेष स्थान, जहां परमात्मा अवतरित हो सके, पृथ्वी के हर कोने पर आवश्यक अनुभव हुआ ।

प्रत्येक चीज के अवतरण में, आग्रहण में, 'रिसेप्टिव' होने में एक संयोजन है।

यों समझें कि अभी जो हमारे पास से रेडियो वैव्ज गुजर रही हैं हम उन्हें पकड़ नहीं पायेंगे। रेडियो के उपकरण के बिना उन्हें पकड़ना कठिन होगा। कल अगर एक ऐसा वक्त आ जाय कि एक महायुद्ध हो जाय, हमारी सारी टेक्नोलाजी अस्त-व्यस्त हो जाय, और आपके घर में एक रेडियो रह जाय तो आप उसे फेंकना न चाहेंगे। मान लीजिए अब कोई रेडियो स्टेशन नहीं बचा, अब रेडियो से कुछ पकड़ा नहीं जाता, अब रेडियो सुधारने वाला भी मिलना मुश्किल है। हो सकता है दस-पांच पीढ़ियों के बाद भी आपके घर में वह रेडियो रखा रहे और तब कोई पूछे कि इसका क्या उपयोग है? तो कठिन हो जाएगा बताना। लेकिन इतना जरूर बताया जा सकेगा कि पिता आग्रहशील थे इसको बचाने के लिए, उनके पिता भी आग्रहशील थे। इतना उन्हें याद है कि हमारे घर में उसको बचाने वाले आग्रहशील लोग थे, वे बचाये चले गये। हमें पता नहीं, इसका क्या उपयोग है? आज इसका कोई भी उपयोग नहीं है। और रेडियो को तोड़कर अगर हम सब उपाय भी कर लें तो भी इसकी खबर मिलना बहुत मुश्किल है कि इससे कभी संगीत बजा करता था, कि कभी इससे आवाज निकला करती थी। सीधे रेडियो को तोड़कर देखने से कुछ पता चलने वाला नहीं है। वह तो सिर्फ एक आग्राहक था, जहाँ कुछ चीज घटती थी। घटती कहीं और थी, लेकिन पकड़ी जाती थी। ठीक ऐसे ही मंदिर आग्राहक थे, 'रिसेप्टिव इन्स्ट्रूमेंट' थे। परमात्मा तो सब तरफ है। आप भी सब जगह मौजूद हैं, परमात्मा भी सब जगह मौजूद है। लेकिन किसी विशेष संयोजन में आप 'एट्यून्ड' हो जाते हैं। आपकी 'ट्यूनिंग' मेल खाती है, ताल-मेल हो जाता है। तो मंदिर आग्राहक की तरह उपयोग में आये। वहां सारा इन्तजाम ऐसा था कि जहां दिव्य भाव को, दिव्य अस्तित्व को, भगवत्ता को हम ग्रहण कर पायें। जहां हम खुल जायें और उसे ग्रहण कर पायें। सारा इन्तजाम मंदिर का वैसा ही था। अलग-अलग लोगो ने अलग-अलग तरह से इन्तजाम किया था। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अलग-अलग रेडियो बनाने वाले लोग, अलग-अलग शक्ल का रेडियो बनायें। बाकी, बहुत गहरे में प्रयोजन एक है।

इस मुल्क में मंदिर बने। और कोई तीन-चार तरह के ही खास ढंग के मंदिर हैं, जिनके रूप से बाकी सारे मन्दिर बने हैं। इस मुल्क में जो मन्दिर बने वह आकाश की आकृति के हैं। यानी जो गुम्बज है मंदिर का, वह आकाश की आकृति में है। और प्रयोजन यह है कि अगर आकाश के नीचे बैठकर मैं ओम् का उच्चार करूँ तो मेरा उच्चार खो जायगा। क्योंकि मेरी शक्ति बहुत कम है, विराट् आकाश है चारों तरफ। मेरा उच्चार लौटकर मुझ पर नहीं बरस सकेगा। मैं जो पुकार करूंगा, वह पुकार मुझ पर लौटकर नहीं आयेगी, वह अनंत

में खो जायेगी। मेरी पुकार मुझ पर लौटकर आ जाय, इसलिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया। वह आकाश की छोटी प्रतिकृति है, ठीक अर्ध-गोलाकार, जैसा आकाश चारों तरफ पृथ्वी को छूता है,—ऐसा एक छोटा आकाश निर्मित किया है गुम्बज में। उसके नीचे मैं जो पुकार करूंगा, मंत्रोच्चार करूंगा, ध्वनि करूंगा, वह सीधी आकाश में खो नहीं जायेगी। गोल गुम्बज उसे वापस लौटा देगा। जितना गोल होगा गुम्बज, उतनी सरलता से ध्वनि वापस लौट आयेगी, और उतनी ही ज्यादा प्रतिध्वनियां उसकी पैदा होंगी। फिर तो ऐसे पत्थर भी खोज लिये गये जो ध्वनियों को वापस लौटाने में बड़े सक्षम हैं। अजन्ता का एक बौद्ध चैत्य है, उसमें लगे पत्थर ठीक उतनी ही ध्वनि को तीव्रता से लौटाते है, उतनी ही चोट को प्रतिध्वनित करते हैं, जैसे तबला। आप तबले पर चोट करें, वैसी ही पत्थर पर चोट करें तो उतनी ही आवाज होगी। कुछ विशेष ध्वनियों को, जो बहुत सूक्ष्म हैं, साधारण गुम्बज नहीं लौटा पाता है, उसके लिए उन पत्थरों का उपयोग किया गया।

क्या प्रयोजन है इन सबका? प्रयोजन ये है कि जब आप ओम् का उच्चार करते हैं, जब बहुत सघनता से, बहुत तीव्रता से आप ओम् का उच्चार करते हैं। और मंदिर का गुम्बज सारे उच्चार को वापस आप पर फेंक देता है, तो एक वर्तुल निर्मित होता है, एक 'सर्किल' निर्मित होता है उच्चार का, ध्वनि का, लौटती ध्वनि का। मन्दिर का गुम्बज आपकी गूंजी हुई ध्वनि को आप तक लौटाकर एक वर्तुल निर्मित करवा देता है। उस वर्तुल का आनन्द ही अद्भुत है। अगर आप खुले आकाश के नीचे ओम् का उच्चार करेंगे तो वर्तुल निर्मित नहीं होगा और आपको कभी आनन्द का पता नहीं चलेगा। जब वर्तुल निर्मित होता है तब आप सिर्फ पुकारने वाले नहीं हैं, पाने वाले भी हो जाते हैं। और उस लौटती हुई ध्वनि के साथ दिव्यता की प्रतीति प्रवेश करने लगती है। आपकी की हुई ध्वनि तो मनुष्य की है, लेकिन जैसे ही वह लौटती है वह नये वेग और नयी शक्तियों को समाहित करके वापस लौट आती है। इस मन्दिर को, इस मन्दिर के गुम्बज को, मंत्र के द्वारा ध्वनि-वर्तुल निर्मित करने के लिए प्रयोग किया गया था। अगर बिल्कुल शांत, एकान्त स्थिति में आप बैठकर उच्चार करते हों, तो जैसे ही वर्तुल निर्मित होगा, विचार बन्द हो जायेंगे। वर्तुल इधर निर्मित हुआ, उधर विचार बन्द हुए। जैसा कि मैंने कई बार कहा है, स्त्री-पुरुष के संभोग में वर्तुल निर्मित हो जाता है शक्ति का, और जब वर्तुल निर्मित होता है तभी संभोग का क्षण समाधि का इशारा करता है। अगर पद्मासन या सिद्धासन में बैठे बुद्ध और महावीर की मूर्तियां देखें तो वह भी वर्तुल ही निर्मित करने के अलग ढंग हैं। जब दोनों पैर जोड़ लिए जाते हैं और दोनों हाथ

पैरों के ऊपर रख दिये जाते हैं तो पूरा शरीर वर्तुल का काम करने लगता है। खुद के शरीर की विद्युत फिर कहीं से बाहर नहीं निकलती। पूरी वर्तुलाकार बनने लगती है। एक सर्किट निर्मित होता है, और जैसे ही सर्किट निर्मित होता है वैसे ही विचार शून्य हो जाते हैं। अगर इसे विद्युत की भाषा में कहें तो आपके भीतर विचारों का जो कोलाहल है वह आपकी ऊर्जा के वर्तुल न बनने की वजह से है। वर्तुल बना कि ऊर्जा शान्त और समाहित होने लगती है। तो मन्दिर के गुम्बज से वर्तुल बनाने की बड़ी अद्‌भुत प्रक्रिया है और यही अंतरंग अर्थ भी है उसका।

मन्दिर के द्वार पर हमने घण्टा लटका रखा है, वह भी सिर्फ इसीलिये; आप जब ओम् का उच्चार करेंगे, हो सकता है बहुत धीमे करें कि ख्याल में भी न आये। पर जोर से घण्टे की आवाज उस वर्तुल का आपको स्मरण दिला जायेगी तत्काल,—उस गूंजती हुई ध्वनि का—वर्तुल पर वर्तुल। जैसे पानी में फेंका गया पत्थर हो और लहर पर लहर, रिपल पर रिपल उठाता चला गया हो।

तिब्बती मन्दिर में तो घण्टा नहीं रखते, सर्व धातुओं का बना हुआ एक बर्तन रखते हैं घड़े की भांति और उसमें लकड़ी का डण्डा रखते हैं घुमाने के लिए। उसको सात बार अन्दर घुमाकर जोर से चोट करते हैं। सात बार घुमाने पर, और चोट करने पर "मणि पद्मे हुं", इसकी पूरी आवाज निकलती है—पूरा मंत्र! पूरा घड़ा चिल्लाकर कहता है, "मणि पद्मे हुं"! और एक दफा नहीं, सात बार। आप सात राउण्ड लेकर चोट मारें उस पर और हाथ बाहर कर लें, फिर सात बार सुनें – ओम् मणि पद्मे हुं, ओम् मणि पद्मे हुं, ओम् मणि पद्मे हुं—आवाज धीमी होती जायगी और सात वर्तुल उसके बन जायेंगे। ठीक आप भी मन्दिर के भीतर एक घड़े की तरह जोर से अपने भीतर चोट करेंगे — ओम् मणि पद्मे हुं। मन्दिर भी दोहराएगा। आपका रोयां रोयां उसे ग्रहण करके वापस फेंकेगा। थोड़ी ही देर में न आप रह जायेंगे, न मन्दिर रह जायेगा, सिर्फ़ विद्युत् के वर्तुल रह जायेंगे।

ध्यान रहे, ध्वनि जो है विद्युत का सूक्ष्मतम रूप है, यह भी थोड़ा ख्याल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि अब विज्ञान भी कहता है कि ध्वनि विद्युत का एक रूप है—सभी कुछ विद्युत का रूप है। लेकिन भारतीय मनीषी की पकड़ थोड़ी सी भिन्न है। वह कहता है, विद्युत भी ध्वनि का रूप है। साउण्ड इज दी बेस, इलेक्ट्रिसिटी बेस नहीं है। इसलिए कहा है शब्द ब्रह्म। विद्युत् सिर्फ ध्वनि का ही एक रूप है। इसमें बहुत दूर तक समानता खड़ी हो गई। अभी विज्ञान कहने लगा है कि ध्वनि जो है, वह विद्युत का एक रूप है। अब ये थोड़ा सा फर्क रह

गया है कि प्राथमिक कौन है? विज्ञान कहता है कि विद्युत प्राथमिक है। लेकिन भारत की मनीषा तो कहती है कि ध्वनि प्राथमिक है। और ध्वनि की ही सघनता विद्युत है। विज्ञान कहता है कि विद्युत का एक प्रकार, ध्वनि है। इस बात की बहुत संभावना है कि शब्द ब्रह्म की खोज बहुत निकट में विज्ञान को करनी पड़ेगी। ये मन्दिर के गुम्बज के नीचे पैदा की गयी ध्वनियों का ही अनुभव है। क्योंकि जब ओम् की सघन ध्वनि की गयी तो साधक ने मंदिर के भीतर थोड़ी देर में जाना कि मंदिर भी मिट गया और मैं भी मिट गया हूं, सिर्फ विद्युत रह गयी। यह किसी प्रयोगशाला में लिया गया निष्कर्ष नहीं है। जिन्होंने ये कहा है, उनके पास कोई प्रयोगशाला नहीं। उनके पास तो एक ही प्रयोगशाला थी, जो उनका मंदिर था। उस मंदिर में उन्होंने जाना है, और यह जाना है कि हम तो ध्वनि से शुरू करते हैं लेकिन अंततः विद्युत ही रह जाती है। इस ध्वनि के अनुभव के लिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया था।

जब पहली दफा पश्चिम के लोगों को भारतीय मन्दिर देखने को मिले, तो वे उन्हें 'अनहाईजीनिक' मालूम पड़े। स्वभावतः खिड़की-दरवाजे ज्यादा नहीं हो सकते, एक ही रखा जा सकता था, वह भी बहुत छोटा। इसका कारण था कि यह किसी भी तरह, ध्वनि जो पैदा हो रही है भीतर, उसके वर्तुल को तोड़ने वाला न बन जाय। उन विदेशियों को लगा कि ये मंदिर बिल्कुल ही अंधेरे, गन्दे और बन्द हैं, जिनमें हवा भी नहीं जाती। उनका चर्च साफ-सुथरा है, खिड़कियां हैं, दरवाजे हैं, बड़ी खिड़कियां हैं, बड़े दरवाजे हैं। रोशनी भी जाती है, हवा भी जाती है, पूरे 'हाईजीनिक' हैं। मैंने कहा कि जब चाभी भूल जाती है तो कठिनाइयां खड़ी होती हैं। आज कोई नहीं कह सकता हिन्दुस्तान में, एक आदमी भी, कि हमारे मन्दिर में खिड़की क्यों नहीं है, दरवाजा क्यों नहीं है? हमको भी लगा कि सच तो है कि मन्दिर 'अनहाईजीनिक' हैं। परन्तु कोई यह तर्क न दे सका कि इन मन्दिरों में इस मुल्क के स्वस्थतम लोग रहे हैं, इन मन्दिरों के भीतर बीमारी नहीं जाने दी गई। इन मन्दिरों में बैठा हुआ पूजा और प्रार्थना करने वाला आदमी, स्वस्थतम लोगों में से है।

तब यह भी धीरे धीरे अनुभव में आना शुरू हुआ कि ओम् की ध्वनि का जो आघात है वह अपूर्व रूप से 'प्यूरीफाई' करता है। विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात शुद्धता लाते हैं, विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात अशुद्धता लाते हैं। विशेष ध्वनियां हैं जो वहां बीमारियों को प्रवेश ही नहीं करने देंगी, विशेष ध्वनियां हैं जो वहां बीमारियों को निमंत्रित करती हैं। पर ध्वनि का पूरा शास्त्र खो गया। जिन्होंने कहा था—शब्द ही ब्रह्म है, उन्होंने शब्द के लिए

बड़ी से बड़ी बात जो कही जा सकती थी, वह कही। ब्रह्म से बड़ा कोई अनुभव ही नहीं था, और शब्द से गहरी उन्होंने कोई चीज नहीं जानी थीं, जिसका प्रयोग किया जा सके। सारे राग, सारी रागिनियां, सारा संगीत पूर्व का है। वह शब्द ब्रह्म की ही प्रतीतियों का फैलाव है। समस्त राग, समस्त रागिनियां मन्दिरों में पैदा हुईं। समस्त नृत्य पहली दफा मन्दिरों में पैदा हुए, फिर हर जगह विकसित हुए। क्योंकि मन्दिर में ही ध्वनि का अनुभव करने वाला साधक था। उसने ध्वनियों में भेद देखे। उसने इतने भेद देखे जिसका कोई हिसाब नहीं।

अभी सिर्फ चालीस साल पहले काशी में एक साधु हुए हैं विशुद्धानन्द। सिर्फ ध्वनियों के विशेष आघात से किसी की भी मृत्यु हो सकती थी, ऐसे सैकड़ों प्रयोग विशुद्धानन्द ने करके दिखाये। वह साधु अपने बन्द मन्दिर के गुम्बज में बैठा था जो बिल्कुल 'अनहाईजीनिक' था। पहली दफा तीन अंग्रेज डाक्टरों के सामने प्रयोग किया गया। वे तीनों अंग्रेज डाक्टर एक चिड़िया को लेकर अन्दर गये। विशुद्धानन्द ने कुछ ध्वनियां कीं, वह चिड़िया तड़फड़ायी और मर गयी। और उन तीनों ने जांच कर ली कि वह मर गयी। तब विशुद्धानन्द ने दूसरी ध्वनियां कीं, वह चिड़िया फिर तड़फड़ायी और जिन्दा हो गयी! तब पहली दफा शक पैदा हुआ कि ध्वनि के आघात का परिणाम हो सकता है! अभी हम दूसरे आघातों के परिणाम को मान लेते हैं क्योंकि उनको विज्ञान कहता है। हम कहते हैं कि विशेष किरण आपके शरीर पर पड़े तो विशेष परिणाम होंगे। विशेष औषधि आपके शरीर में डाली जाय तो विशेष परिणाम होंगे। विशेष रंग विशेष परिणाम लाते हैं। लेकिन विशेष ध्वनि क्यों नहीं? अभी तो कुछ प्रयोगशालाएं पश्चिम में, ध्वनियों का जीवन से क्या सम्बन्ध हो सकता है, इसपर बड़े काम में रत हैं। दो-तीन प्रयोगशालाओं में बड़े गहरे परिणाम हुए हैं। इतना तो बिल्कुल साफ हो गया है कि विशेष ध्वनि का परिणाम, जिस मां की छाती से दूध नहीं निकल रहा है, उसकी छाती से दूध ला सकता है। विशेष ध्वनि करने पर जो पौधा छः महीने में फूल देता है वह दो महीने में फूल दे सकता है। जो गाय जितना दूध देती है उससे दुगुना दे सकती है—विशेष ध्वनि पैदा की जाय तो। आज रूस की सारी डेरीज में बिना ध्वनि के कोई गाय से दूध नहीं दुहा जा रहा है। और बहुत जल्दी कोई फल, कोई सब्जी बिना ध्वनि के पैदा नहीं होगी। क्योंकि प्रयोगशाला में तो यह सिद्ध हो गया है, अब व्यापक फैलाव की बात है। अगर फल, सब्जी, दूध और गाय ध्वनि से प्रभावित होते हैं, तो कोई कारण नहीं है कि आदमी प्रभावित न हो।

स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य ध्वनि की विशेष तरंगों पर निर्भर है। इसलिए तब

बहुत गहरी 'हाईजीनिक' व्यवस्था थी जो हवा से बंधी हुई नहीं थी। सिर्फ हवा मिल जाने से ही कोई स्वास्थ्य आ जाने वाला है, ऐसी धारणा नहीं थी। नहीं तो यह असंभव है, कि पांच हजार साल के लम्बे अनुभव में यह ख्याल में न आ गया होता! हिन्दुस्तान का साधु बन्द गुफाओं में बैठा है जहां रोशनी नहीं जाती, हवा नहीं जाती। बन्द मन्दिरों में बैठा है। छोटे दरवाजे हैं, जिन में से झुक कर अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। कुछ मन्दिरों में तो रेंग कर ही अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। फिर भी स्वास्थ्य पर इसका कोई बुरा परिणाम कभी नहीं हुआ था। हजारों साल के अनुभव में कभी नहीं आया कि इनका स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम हुआ है। पर जब पहली दफा संदेह उठा तो हमने अपने मंदिरों के दरवाजे बड़े कर लिए। खिड़कियां लगा दीं। हमने उनको 'माडर्नाईज' किया, बिना यह जाने हुए कि वह 'माडर्नाइज' होकर साधारण मकान हो जाते हैं। उनकी वह 'रिसेप्टि-विटी' खो जाती है जिसके लिए वह कुंजी हैं।

ध्वनि से गहरा सम्बन्ध है मन्दिर की वास्तु-कला का, आर्किटेक्चर का। वह सारा ध्वनि-शास्त्र ही है। किस कोण से ध्वनि चोट की जाय, उसका हिसाब है। कौन सी ध्वनि खड़े होकर की जाय और कौन सी बैठ कर की जाय, उसका भी हिसाब है। कौन सी लेट के की जाय उसका भी हिसाब है। क्योंकि खड़े होके उसके आघात बदल जायेंगे, बैठ के उसके आघात बदल जायेंगे। कौन सी ध्वनियां साथ में की जायं तो परिणाम अलग होंगे। कौन सी ध्वनियां अलग-अलग की जायं तो परिणाम अलग होंगे। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जब वैदिक साहित्य का पश्चिम की भाषा में अनुवाद शुरू हुआ तो स्वभावतः पश्चिम में भाषा का जो जोर है वह भाषागत है, ध्वनिगत नहीं है, फोनेटिक नहीं है। कोई शब्द लिखा जाय तो वैदिक दृष्टि में उस शब्द के लिखने और बोलने का उतना मूल्य नहीं है जितना उसके भीतर वह विशेष ध्वनि और विशेष ध्वनि की मात्राओं का समाहित होना जरूरी है। संस्कृत का जोर फोनेटिक है, लिंग्वि-स्टिक नहीं। शब्दगत नहीं है, ध्वनिगत है। इसीलिए हजारों साल तक कीमती शास्त्रों को न लिखने की जिद की गयी। क्योंकि लिखते ही जोर बदल जायगा। 'एम्फेसिस' बदल जायगा। बोल के ही दिया जाय दूसरे को, लिख के न दिया जाय, क्योंकि लिखे जाने पर शब्द बन जायेगा, और ध्वनि की जो बारीक संवेदनाएं थीं वह मर जायेंगी। उनका कोई अर्थ नहीं रह जायगा।

अगर राम को लिख दें हम, तो पढ़ने वाले पचास तरह से पढ़ सकते हैं। कोई 'र' पर थोड़ा कम जोर दे, कोई 'अ' पर थोड़ा ज्यादा जोर दे, कोई 'म' पर थोड़ा कम जोर दे। वह कैसा जोर देगा, वह पढ़ने वाले पर निर्भर

करेगा। लिखने के बाद ध्वनिगत जोर समाप्त हो जाता है। अब उसको फिर डिकोड करना पड़ेगा। इसलिए हजारों साल तक जिद थी कि कोई शास्त्र लिखा न जाय। कारण ? कारण सिर्फ एकमात्र यही था कि उसकी जो ध्वनिगत व्यवस्था है वह न खो जाय। सीधा व्यक्ति के द्वारा ही वह दूसरे को सुनाया जाय। इसलिए शास्त्र को 'श्रुति' कहते हैं, जो सुन के मिले वही शास्त्र था। जो पढ़ के मिले उसको हमने शास्त्र नहीं कहा कभी। क्योंकि उसकी सारी की सारी वैज्ञानिक प्रक्रिया थी, कि उसमें ध्वनि के आघात होंगे—कहां क्षीण होगी ध्वनि, कहाँ तीव्र होगी। परन्तु उसको लिपिबद्ध करने पर कठिनाई खड़ी हो जायगी। और कठिनाई खड़ी हुई। जिस दिन लिपिबद्ध हुए ये शास्त्र, उसी दिन इनकी जो मौलिक आंतरिक व्यवस्था थी वह खण्डित हो गयी। फिर कोई जरूरत न रही कि आप किसी से सुनके ग्रहण करें। आप किताब पढ़ सकते हैं, वह बाजार में उपलब्ध है। फिर उसके साथ ध्वनि का कोई सवाल नहीं रहा।

यह भी मजे की बात है कि इन शास्त्रों का कभी जोर न था अर्थ पर। जोर ही नहीं था अर्थ पर। अर्थ पर जोर तो पीछे हमारी पकड़ में आना शुरू हुआ जब हमने उनको लिपिबद्ध किया। क्योंकि लिपिबद्ध कोई भी चीज अगर अर्थहीन हो तो हम पागल मालूम पड़ेंगे। उनको उससे अर्थ देना ही पड़ेगा। अभी भी वैदिक वचनों में ऐसे वचन हैं जिनके अर्थ नहीं लगाये जा सके। और जिनके अर्थ नहीं लगाये जा सके वही वचन असली हैं, क्योंकि वे बिल्कुल ही ध्वनिगत हैं, उनमें अर्थ था ही नहीं। जैसे 'ओम् मणि पद्मे हुं'। यह एक तिब्बती मंत्र है। इसमें सवाल अर्थ का नहीं है। 'ओम्' में भी सवाल अर्थ का नहीं है। उसमें कोई अर्थ नहीं है। ध्वनिगत चोट है। और उसके परिणाम हैं। जब कोई साधक 'ओम् मणि पद्मे हुं' का आवर्तन करता है बार-बार, तो उसके शरीर के विभिन्न चक्रों पर चोट पड़नी शुरू होती है और वे चक्र सक्रिय होने शुरू होते हैं। इसमें क्या अर्थ है यह सवाल नहीं है, इसकी क्या 'युटीलिटी' उपयोगिता है, यह सवाल है। इसको ख्याल में ले लेना जरूरी है कि पुराने शास्त्र अर्थ पर जोर नहीं देते, उपादेयता पर जोर देते हैं — उपयोगिता क्या है, उपयोग क्या है इस पर जोर देते हैं।

बुद्ध से किसी ने पूछा है कि सत्य क्या है ? तो बुद्ध ने कहा, जो उपयोग में आये। सत्य की परिभाषा—जो उपयोग में आ सके। विज्ञान भी यही करेगा सत्य की परिभाषा। विज्ञान भी यही करता है। वह प्रेगमेटिक परिभाषा करेगा। वह यह नहीं कहेगा कि सत्य क्या है, जिसको आप सिद्ध कर देंगे, यह सवाल नहीं है। सत्य क्या है, जो उपयोग में आ सके। आप उपयोग करके दिखा दें। आप कहते हैं कि

हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलकर पानी बनते हैं। हमें फिक्र नहीं है कि ये सत्य है या असत्य। आप पानी बनाकर दिखा दें तो सत्य हो जायेगा, न बन सके पानी तो असत्य है। हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनते हैं कि नहीं, यह कोई लाजिकल, कोई तर्कगत इसकी वैलिडिटी नहीं है। बनते हों तो बनाकर दिखा दें। बन जाय तो सत्य हैं, न बनते हों तो सिद्ध हो जायगा कि असत्य हैं। विज्ञान ने अब जाकर वही व्याख्या पकड़ी है सत्य की, जो पांच हजार साल पहले धर्म की व्याख्या थी। धर्म कहता था, जो उपयोग में आ जाये। जिसका आप उपयोग कर सकें। वैसे ओम् का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है; कोई मीनिंग नहीं है, यूटिलिटी है। मन्दिर का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है। और उपयोग में लाना एक कला है और सभी कलाओं के साथ एक खराबी है, कि उनका जीवंत हस्तांतरण नहीं हो सकता।

इधर मैं पढ़ता था, चीन में कोई पन्द्रह सौ साल पहले एक सम्राट था। वह मांस का बहुत शौकीन है, और इतना शौकीन है कि वह अपने सामने ही गाय-बैल को कटवाता है। जो उसका कसाई है, वह पन्द्रह साल से नियमित सुबह आकर उसके सामने जानवर काटता है। एक दिन वह सम्राट पूछता है कि यह तू जो फरसा लाता है काटने को, इसे मैंने तुझे कभी बदलते नहीं देखा। पन्द्रह-साल हो गये, इसकी धार मरती नहीं ? तो वह कसाई कहता है कि इसकी धार नहीं मरती। धार तभी मरती है जब कसाई कुशल न हो। धार तभी मरती है जब कसाई को पता न हो कि कहां ठीक जगह है, जहां कि फरसा आर-पार हो जाता है और दो हड्डियों के बीच में नहीं आता। यानी 'ज्वाइंट्स' कहां हैं ? यह मेरी पुश्तैनी कला है। इस फरसे की धार सिर्फ मरती ही नहीं, बल्कि रोज जानवर काट के इसकी धार और तेज हो जाती है। उस सम्राट ने कहा, क्या तू यह कला मुझे भी सिखा सकता है ? कसाई ने कहा कि यह बहुत कठिन है। यह तो मैं अपने बाप के पास, जबसे मुझे होश है, तबसे मैं खड़ा रहा और इसको मैंने 'इम्बाइब' किया है, इसको मैंने सीखा नहीं। इसको मैं पी गया हूं। मैं बाप के पास खड़ा रहता था। रोज रोज यही हो रहा था, दिन में जानवर कट रहे थे, मैं पास खड़ा रहता था। कभी उसका फरसा उठाकर लाता था, कभी जानवर के कटे हुए अंगों को उठाकर रखता था। बस मैं पी गया। अगर तुम भी राजी हो तो मेरे पास खड़े रहो, कभी फरसा उठाकर लाओ, कभी रखो, कभी बैठो, कभी देखते रहो। इस हुनर को पी जाओ। मैं वह हुनर सिखा नहीं सकता।

साइंस सिखायी जा सकती है, आर्ट्स सिखाया नहीं जा सकता। विज्ञान हम सिखा सकते हैं, पढ़ा सकते हैं। कला हम सिखा नहीं सकते, कला को तो

'इम्बाइब' करना पड़ता है। ये सारे मंत्र अर्थ नहीं रखते, किन्तु इनका कलात्मक उपयोग है। छोटे छोटे बच्चों को हम 'इम्बाइब' करवा देते थे। वह मंदिर की कला सीख जाते थे। उन्हें कभी पता भी नहीं चलता था कि वे क्या सीख गये! वे मंदिर में जाने की कला सीख जाते थे। वे मंदिर में बैठने की कला सीख जाते थे, वे मंदिर का उपयोग सीख जाते थे। जब भी मुसीबतें होती थीं वे भागे मंदिर चले जाते थे। मंदिर से वे शांत होकर लौट आते थे। रोज सबेरे वे मन्दिर चले आते थे, क्योंकि जो मन्दिर में मिलता था वह कहीं भी मिलना मुश्किल था। पर उन्होंने इतने बचपन से पकड़ी थी बात कि उन्हें कभी सिखाया, ऐसा नहीं —इम्बाइब्ड कर गये थे वे, पी गये थे। बहुत सी चीजें हैं जो सिखायी नहीं जा सकतीं। जहां भी कला है वहां सिखाना मुश्किल है।

इस मन्दिर की, इन मन्दिरों के बीच ध्वनि की जो सारी की सारी संयोजना थी, उसकी एक प्रायोगिक व्यवस्था है। और जबतक शब्द का ठीक ध्वनिगत रूप ख्याल में न हो, उसका कोई मतलब नहीं होता। जैसे मंत्र है; हमारे यहाँ गुरु के द्वारा ही दिया जाय, इसपर जोर था। वह मंत्र आप जानते रहे हैं सदा। हो सकता है गुरु आपके कान में कहे—'राम राम का जाप करो'। और आप हैरान होंगे और कहेंगे कि यह क्या? क्या यह मंत्र गुरु के बिना नहीं मिलता? यह तो दुनिया जानती है कि राम राम कहो, और इस आदमी ने कान में कहा कि राम राम कहो। यह तो पागलपन की बात है। नहीं, गुरु के दिये मंत्र में राम के ध्वनिगत रूप पर जोर होगा, जिसे दुनिया नहीं जानती। वैसे राम के भी पचासों प्रयोग हैं।

बाल्मीकि की सारी कथा हमने सुनी है, लेकिन अब वह कथा बचकानी हो गयी। ऐसी कथा हो गयी कि हम समझने लगे कि बाल्मीकि नासमझ था, गर पढ़ा-लिखा था, गंवार था। वह भूल गया कि गुरु ने कहा था कि 'राम राम' का पाठ करना, तो वह 'मरा मरा' का पाठ करने लगा, और 'मरा मरा' का पाठ करते हुए ज्ञान को उपलब्ध हो गया। ये चाभियाँ जब खो जाती हैं तो ऐसी गड़बड़ खड़ी हो जाती है। सच बात यह है कि राम के मंत्र के एक रूप का यही हिस्सा है, कि 'राम राम' कहते कहते जब आपके भीतर से 'मरा मरा' निकलने लगे तभी वर्तुल बना। राम राम गति से कहते हुए, जब बिल्कुल स्थिति उल्टी हो जाय और मरा मरा निकलने लगे, तब ठीक ध्वनिगत हो गया। और जब मरा मरा निकलेगा तब एक अद्भुत घटना घटती है। और वह घटना यह है कि आप नहीं रहे, आप मर गये। और जब आप मर गये होते हैं, वही क्षण आपके जप के पूरे होने का है। वही क्षण अनुभव का है, जब आप नहीं हैं, मिट गये। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर यह प्रक्रिया

ठीक से की जाय, तो राम का पाठ आप शुरू करेंगे, बहुत शीघ्र वह घड़ी आ जायेगी जब राम की जगह 'मरा मरा' निकलने लगेगा और आप चाहेंगे भी कहना राम, तो न कह पायेंगे। सारा व्यक्तित्व मरा मरा कहेगा। उस वक्त आपकी मृत्यु घटित होगी, जो कि ध्यान का पहला चरण है। और जब आपकी मृत्यु पूरी घटित हो जायेगी तो आप अचानक पायेंगे कि मरा मरा, राम में रूपांतरित होने लगा। फिर आपके भीतर से राम की ध्वनि निकलनी शुरू होगी। और जो राम की ध्वनि अब निकलेगी आपके भीतर से, तब आपको राम का साक्षात्कार होगा, इसके पहले नहीं होगा। बीच में मरा की ध्वनि में रूपांतरण अनिवार्य है। इसके तीन हिस्से हुए। राम से आप शुरू करेंगे, मरा में आप मिटेंगे, और राम पर फिर पूरा होगा। और जब तक बीच में मरा-मरा की प्रक्रिया पकड़ न ले आपको, तबतक असली राम की प्रक्रिया, जो तीसरे चरण में पूरी होने वाली है, वह नहीं होगी। अगर आप राम राम कहते ही गये, और मरा मरा नहीं आया बीच में, तो आपको पता ही नहीं है, —उसके फोनेटिक 'एमफेसिस' का पता ही नहीं है। उसका ध्वनिगत जो जोर है उसजोर को अगर ठीक से आपने दिया—जैसे अगर आपने 'र' जोर से कहा, 'म' धीमे कहा तो ही 'मरा' बनेगा, नहीं तो नहीं बनेगा। 'र' पर सारी ताकत लग जायगी और 'म' को ढीला छोड़ दिया तो 'म' गड्ढे की तरह हो जायगा, 'र' शिखर की तरह हो जायगा। 'र' एक उत्तुंग चोटी हो जायगा और 'म' एक खाई हो जायेगा। और इस स्थिति में, राम में 'म' को छोटा करते आप चले जायें, तो बहुत शीघ्र आप पायेंगे कि रूपांतरण हुआ। 'म' शिखर बन जायेगा और 'र' खाई बन जायेगा। और 'मरा' शुरू हो जायेगा।

जैसे लहरे हैं, हर शिखर के बाद खाई और हर खाई के बाद शिखर! अभी अभी जो शिखर था वह कुछ देर में खाई हो जायेगा, जो खाई थी फिर शिखर बन जायेगी। ठीक लहर की तरह। ध्वनि की भी लहरें हैं। ठीक ध्वनि के भी उतार-चढ़ाव हैं, आरोह-अवरोह हैं। तो ठीक ध्वनि की व्यवस्था अगर ज्ञात न हो तो आप राम राम कहते रहें कोई परिणाम नहीं होगा। अब जिन्होंने बाल्मीकि के संबंध में यह कहानी प्रचलित की थी कि वह नासमझ था, वह पढ़ा-लिखा न था, वह गंवार था, ये सब बातें सत्य हैं कि वह नासमझ था, बे पढ़ा-लिखा था, गंवार था, लेकिन यह बात सच नहीं है कि इसलिए वह 'मरा मरा' कहने लगा। जहाँ तक इस सूत्र का संबंध है, इस मामले में तो वह पूरा होशियार था। उसे ठीक, पूरे गणित का पता था। इतने ममाले का तो उसे पूरा पता था कि 'राम' कैसे कहना है कि 'मरा' बन जाय। जब मरा बन जाय तभी आप संक्रमण से गुजरेंगे और फिर राम पैदा होगा। वह राम आपके द्वारा कहा हुआ राम नहीं होगा। फिर आप तो मर गये। वह राम जन्मेगा आपके भीतर, वह अजपा होगा। आप उसका जाप नहीं कर रहे, वह हो रहा है जाप।

ध्वनिगत जोर की वजह से श्रुति है। और उसे कोई जानने वाला, जो ध्वनियों को जानता हो, वही व्यक्ति उसे किसी को दे, तो ही उपयोगी होगा। वही शब्द होंगे, जो किताब में लिखे होंगे, सबको मालूम होंगे, फिर भी उनका गणित अलग हो जायेगा। और गणित में ही सारा खेल है। ध्वनि का जो गणित है, आरोह-अवरोह के जो अन्तर हैं, उनका ही सारा खेल है। तो एक पूरा मंत्र-शास्त्र था, और मंदिर उनकी एक प्रयोगशाला थी। यह उसका आंतरिक मूल्य था, साधक का। और मंदिर में जितने लोगों को परमात्मा का अनुभव हुआ, मन्दिर के बाहर नहीं हो सका—यह जानते हुए कि परमात्मा मन्दिर के बाहर भी है। वह अनुभव आज मन्दिर में भी नहीं हो रहा है। लेकिन मन्दिर के भीतर जितने लोगों को अनुभव हुआ उतने लोगों को कभी मन्दिर के बाहर नहीं हुआ। या जिन लोगों को मन्दिर के बाहर प्रयोग करने पड़े—जैसे महावीर, तो फिर उनको, जो मन्दिर में हो रहा था, उसके अलावा दूसरा उपकरण खोजना पड़ा जो ज्यादा जटिल है। महावीर को उन आसनों को साधना पड़ा वर्षों तक, जिनसे कि वर्तुल भीतर बन जाय। वह जो मन्दिर का सहारा था वह न लिया जाय। लेकिन वह वर्षों की प्रक्रिया है, और महावीर जैसे संकल्पी के लिए ही संभव है। बाकी अति कठिन हो जायेगी। बुद्ध ने भी मन्दिर का सहारा नहीं लिया। लेकिन महावीर के मरने के थोड़े दिन बाद ही मन्दिर बनाना शुरू करना पड़ा, और बुद्ध के मरने के बाद भी बनाना शुरू करना पड़ा। क्योंकि जो मन्दिर दे सकता है बिल्कुल सामान्य जन को, वह बुद्ध और महावीर नहीं दे सकते। बुद्ध और महावीर जो कह रहे हैं करने को, वह सामान्य जन नहीं कर पायेगा।

आज तो अगर हम इस विज्ञान को पूरा समझ लें तो मंदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण खोजे जा सकते हैं। अभी इस पर थोड़ा काम भी चलता है। मंदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण इसलिये खोजे जा सकते हैं क्यों कि अब हम विद्युत के संबंध में ज्यादा जानते हैं। परंतु इस तरह के बहुत से प्रयोग, खतरे में भी ले जा सकते हैं, भयानक भी हैं। लेकिन ठीक उपयोग किया जाय तो जो मंदिर करता था, उसकी हम साइंटिफिक व्यवस्था कर सकते हैं। क्योंकि मंदिर में जो वर्तुल पैदा होता था वह वर्तुल अब और तरह से भी पैदा किया जा सकता है। आप जेब में छोटा-सा यंत्र भी रख सकते हैं जो आपके भीतर विद्युत का वर्तुल बना सके। आप उस विद्युत् के यंत्र में उन ध्वनियों को भी रेकार्डेड रख सकते हैं, जो आपके भीतर ध्वनियों का वर्तुल बना दें। अभी इस पर कुछ काम चलता है। बहुत हैरानी का काम है।

अमरीका में कोई सात-आठ वैज्ञानिक बहुत अद्भुत काम में लगे हुए

हैं। वह काम यह है कि हमारे जितने सुख-दुख के अनुभव हैं, सभी हमारे शरीर के किन्हीं केन्द्रों पर विद्युत के प्रवाह के अनुभव हैं, और कुछ भी नहीं। जैसे, आपके अगर शरीर में सुई चुभाई जाय, पूरे शरीर में, तो सब जगह आपको सुई की चुभन पता नहीं चलेगी। कुछ डेड स्पाट्स हैं आपके शरीर में, जहां आपकी पीठ में हम सुई चुभाते रहेंगे और आपसे पूछेंगे, सुई चुभ रही है? आप कहेंगे नहीं। किसी की भी पीठ में सुई चुभाकर आप दस-बीस, जगह देखें तो आपको दो-चार डेड स्पाट मिल जायेंगे। जहाँ आप चुभायेंगे और वह कहेगा चुभ नहीं रही है। ठीक वैसे ही दस-पाँच ऐसी जगहें हैं जहाँ आप जरा ही चुभायेंगे, वह कहेगा बहुत चुभ रही है। ठीक ऐसा ही मस्तिष्क का मामला है। मस्तिष्क के 'सेंस' की बहुत-सी ग्रंथियाँ हैं, लाखों की संख्या में। और प्रत्येक ग्रंथि का अनुभव है। जब आप कहते हैं, मुझे सुख हो रहा है तब आपके मस्तिष्क की किसी खास ग्रंथि में से विद्युत् बहती है। समझें कि आप अपनी प्रेयसी के पास बैठे हैं। उसका हाथ, हाथ में लिये हैं और कहते हैं, मुझे सुख हो रहा है। जहाँ तक वैज्ञानिक का संबंध है वह आपकी खोपड़ी में बतायेगा कि फलां जगह से विद्युत बह रही है। और इस स्त्री के साथ सिर्फ दिमाग का एसोसिएशन है आपका, कि इसके पास बैठने से सुख मिलता है। तो उस सहयोग, साहचर्य की धारणा की वजह से खास बिन्दु से आपकी धार बहनी शुरू हो जाती है। लेकिन दो-चार महीने बाद नहीं मिलेगा सुख। क्योंकि किसी बिन्दु से अगर आपने बहुत ज्यादा विद्युत की धारा बहायी तो वह 'इनसेंसिटिव' हो जाता है। उसकी संवेदनशीलता मर जाती है। जैसे एक जगह हम कांटा चुभाये जायं बार बार, तो आज जितना दर्द आपको होगा, कल नहीं होगा, परसों और नहीं होगा। हम चुभाये चले जाएं तो वह जगह ग्रंथि बना लेगी, काँटे को झेल जायेगी, और दर्द बिल्कुल नहीं होगा। जो लोग सितार बजाते हैं तो उनकी उंगली कट जाती है। पहले बहुत तकलीफ होती है, फिर बजाते ही चले जाते हैं तो उंगली संवेदनहीन हो जाती है। फिर कितने ही तार-वार खींचे जायें, उंगली को पता नहीं चलता। तो आपका जो प्रेम क्षीण हो जाता है कि तीन महीने के बाद प्रेम क्षीण हो गया, बड़ा कच्चा प्रेम था, —उसका और कोई कारण नहीं है। जिस बिन्दु से आपका सुख का प्रवाह हो रहा था वह आदी हो गया। यही स्त्री दो-चार दस साल आपसे छूट जाय तो फिर सुख दे सकती है।

यह जो वैज्ञानिकों का काम है इसमें अभी तो उनके जो प्राथमिक प्रयोग थे, वह पशुओं पर थे। चूहों पर अभी उनका एक प्रयोग चलता था जिसने उनको भी घबड़ा दिया। चूहा जब संभोग में रत होता है तो उसके मस्तिक

को उन्होंने खोल के रखा । खिड़की खुली थी उसके मस्तिष्क की, ताकि उस पूरे मस्तिष्क की जांच हो सके कि जब वह संभोग में जाता है, जब उसका वीर्य क्षरण होता है, तो उसके मस्तिष्क में कहां से विद्युत बहती है? जब उसके मस्तिष्क की विद्युत की एक किरण पकड़ ली उन्होंने कि यहाँ से बहती है, तब वहाँ उन्होंने 'इलेक्ट्राड' लगा लिया। मस्तिष्क बन्द कर दिया और 'इलेक्ट्राड' से जुड़े हुए तार की एक मशीन लगा दी। उस मशीन से उसी मात्रा की, उसी अनुपात की विद्युत बहेगी, जितने अनुपात की विद्युत उसके वीर्य क्षरण में बहती थी। और सामने उसके बटन लगा हुआ है। उस चूहे को बटन दबाना एक दफा बता दिया, कि जैसे बटन दबाया उसे वही आनंद आया, जो उसको संभोग में आया था। आप हैरान होंगे कि चूहे ने फिर कोई काम ही नहीं किया चौबीस घण्टे तक। एक घण्टे में छः छः हजार बार वह बटन दबाता रहा। खाना पीना बन्द उसका, और जब तक 'इलेक्ट्राड' काट नहीं दिया उसका, तब तक न खाया, न पिया, न सोया, न इधर-उधर देखा, बस वह एक ही काम—पूरे चौबीस घंटे, सतत! थक के गिर पड़ा वह बिल्कुल, लेकिन वह थकते वक्त तक उसको दबाये चला गया। वह वैज्ञानिक जो उसपर प्रयोग कर रहा था, उसका कहना है कि उस चूहे ने जितना संभोग का रस जाना, आज तक पृथ्वी पर किसी चूहे ने नहीं जाना। हालांकि संभोग वह कर नहीं रहा था, सिर्फ उस जगह से विद्युत प्रवाहित थी। उस वैज्ञानिक का दावा है कि बहुत जल्दी ही सेक्स बहुत साधारण सुख रह जायगा। जिस दिन हम आदमी को 'इलेक्ट्राड' दे देंगे, तब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल होगा जो 'सेक्स' के लिए राजी हो जाय। क्योंकि बहुत शक्ति गंवा के कुछ खास पाता नहीं। हम उसके खीसे में एक बैटरी लगा छोटा-सा यंत्र दे सकते हैं, वह अपने खीसे में जब भी चाहे दबा ले बटन—सरसराहट फैलेगी, जैसी सेक्स में फैलती है। पर यह खतरनाक भी है। क्योंकि एक बार मनुष्य के मस्तिष्क की सारी व्यवस्था का पता चल जाय तो उसमें कौन-सा हिस्सा संदेह करता है वत् काटकर फेंका जा सकता है, कौन-सा हिस्सा क्रोध करता है वह अलग किया जा सकता है,—या उसके सारे शरीर का कौन-सा हिस्सा बगावती है, उसके सारे संबंध, उसके सारे तार, डिस्कनेक्ट किये जा सकते हैं। सरकार उसके खतरनाक उपयोग कर सकती है।

लेकिन मनुष्य को सुख देने की दिशा में भी उनसे बहुत उपयोग नहीं हो सकते हैं। उनको तो पता नहीं है; लेकिन मैं मानता हूँ कि हम मनुष्य को मन्दिर भी दे सकते हैं उस व्यवस्था से। वह और भी सरल होगा, इस मन्दिर से भी सरल होगा। इस मंदिर में आपके लिए घण्टों, महीनों, वर्षों ध्वनि का आघात पैदा करके जो स्थितियाँ बनतीं, वे स्थितियाँ और भी सरलता से पैदा की जा सकती हैं। तो मन्दिर मेरे हिसाब से एक बहुत वैज्ञानिक प्रक्रिया थी जो ध्वनि के माध्यम से आपके

भीतर सुखद, शांतिदायी, आनंददायी और प्रीतिकर भाव को जगाने का अद्भुत काम करती रही। और उस भाव की उपस्थिति में आपका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण बदलता जाता। हाँ, वैज्ञानिक जो कर रहे हैं उसमें खतरे हैं। खतरा एक ही है कि विज्ञान जो भी करता है वह 'टेक्नोलाजिकल' हो जाता है। तकनीकी हो जाता है। चेतना की उसमें बहुत जरूरत नहीं रह जाती। हो सकता है कि ठीक मंदिर जैसी स्थिति भी विद्युत के प्रभाव से पैदा कर दी जाय, लेकिन चेतना के जो चारित्रिक परिवर्तन होते थे वह न हो सकेंगे। जो चेतना को ऊँचाइयाँ मिलती थीं, जो रूपांतरण, 'ट्रांसफर्मेशन' होता था, वह न हो। आदमी को बटन दबाने से जो मिल जायगा उससे कोई मूल रूपांतरण नहीं हो सकते। वह उपकरण होंगे। इसलिए मंदिर की जरूरत समाप्त होगी, ऐसा मैं नहीं मानता हूँ।

और आप पूछते हैं कि क्या आज भी वे वापस इस परिवर्तित समय में उपयोग में लाये जा सकते हैं?

वे लाये जा सकते हैं। लेकिन पुराना पुरोहित मंदिर में जो बैठा है वह इसको उपयोग में लाने के लिए लोगों को नहीं समझा पायेगा। उसके पास चाभी है, लेकिन उसके पास चाभी के पीछे कोई व्यवस्था नहीं है। मंदिर की पूरी दृष्टि और पूरे दर्शन को पुनर्स्थापित करना आज भी काम में आ सकता है। और पुराने से भी बेहतर मन्दिर हम आज बना सकते हैं, क्योंकि आज सब साधन हमारे पास ज्यादा बेहतर हैं। ज्यादा बेहतर सामान का उपयोग किया जा सकता है जो ध्वनि को हजारगुना कर दे, मैग्नीफाई कर दे। इतनी संवेदनशील दीवालें बनायी जा सकती हैं कि आप एक बार ओम् कहें और दीवालें लाख बार ओम् दोहरा दें। आज हमारे पास सारे उपकरण ज्यादा बेहतर हैं, हो सकते हैं, यदि कुंजी ख्याल में हो। पहले तो हमें एक दरवाजा रखना भी पड़ता था, अब हम बिल्कुल बिना दरवाजे का मंदिर रख सकते हैं। उसको हम बिल्कुल ही बन्द कर सकते हैं। आज हमारे पास ज्यादा बेहतर उपकरण हैं, ज्यादा बेहतर मन्दिर बनाया जा सकता है। तब जिन लोगों ने मंदिर बनाये थे वे बिल्कुल झोंपड़े में रह रहे थे, उनके पास कोई उपकरण नहीं थे। मिट्टी-गारे से जो वे कर सकते थे, जो संभव था उस सीमा के भीतर, उन्होंने वह किया। फिर भी अद्भुत किया! हमारे पास आज बहुत अद्भुत उपकरण हैं, लेकिन हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं। यह उसकी अंतरवस्तु है, मंदिर की।

उसकी बहिर्वस्तु भी है। उसका बाह्य उपयोग भी है। यह तो साधक की बात हुई जो मंदिर जायेगा, साधेगा, व्यवस्था में गहरा उतरेगा और साधना में डूबेगा। जो डुबकी लेगा, उसकी बात हुई। लेकिन जो मंदिर के पास से गुजरता था उसको भी फर्क पड़ता था; यद्यपि अब नहीं पड़ता है। अब तो भीतर जाने वाले पर भी

नहीं पड़ता। फर्क पड़ता था उसी दिन, जब भीतर जाने वाला सच में भीतर कुछ कर रहा था। जब मन्दिर में निरंतर दिन में पच्चीसों, सैकड़ों साधक आकर एक विशेष ध्वनि-व्यवस्था का संचरण करते हैं तो मन्दिर चार्ज्ड हो जाते हैं। मन्दिर फिर भीतर ही ध्वनि नहीं फेंकता, बाहर भी बहुत सूक्ष्म ध्वनियाँ फेंकना शुरू कर कर देता है। जीवित हो जाता है। जीवित मंदिर का अर्थ यही था। जीवित प्रतिमा का भी अर्थ यही था कि उस प्रतिमा से ऐसे व्यक्ति को भी संस्पर्श हो जाय, जो उससे संस्पर्श करने आया नहीं था। जो उत्तर दे सके, जो कुछ कर सके। मंदिर जीवित वही कहा जाता था, जिस मंदिर के पास से आप अनजाने गुजर रहे हों और एकदम आपको लगे कि हवा बदल गयी, एकदम आपको लगे कि कुछ वातावरण और हो गया। आपको पता भी न हो कि मन्दिर है पड़ोस में। आप अंधेरी रात में गुजर रहे हों और मंदिर के पास आकर आपको भीतर लगे कि जैसे कोई चीज बदल गयी हो। आप जो सोच रहे थे वह धारा टूट गयी, आप कुछ और सोचने लगे। हत्या की सोच रहे थे और एकदम दया से भर गये। लेकिन यह तभी हो सकता है जब मन्दिर चार्ज्ड हो। वहाँ का हर जर्रा-जर्रा, मंदिर की ईंट-ईंट का टुकड़ा-टुकड़ा, द्वार-दरवाजे सब आविष्ठ हो गये हों। मंदिर अब जीवित ध्वनियों का हो।

हर मन्दिर के सामने लटका हुआ जो घण्टा है उसे भी चार्ज करने के लिए बड़े अद्भुत ढंग से प्रयोग होता है। जो आदमी मंदिर में प्रवेश करे वह घण्टा बजायेगा। यानी वह मंदिर में आने की अपनी सूचना दे रहा है। कभी मन्दिर में जाकर घण्टा बजाएं, सोये मन से नहीं, पूरे होशपूर्वक घण्टा बजाएं! घण्टा बजाने से आपके विचार में डिसकंटीन्युटी पैदा होती है। आप जो सोचते आ रहे थे उसमें ब्रेक लगता है। घण्टे की आवाज विचारों को अस्त-व्यस्त कर जाती है। ये आपके नया होने का एक क्षण है। और घण्टे की जो आवाज है, उस आवाज में तथा 'ओम्' की आवाज में आंतरिक संबंध है। घण्टे की आवाज मन्दिर को चार्ज करती जाती है दिन भर। इसी प्रकार ओम् की आवाज भी चार्ज करती जाती है। ऐसे अन्तर-संबंधों की मंदिर में कितनी चीजें उपयोग की जाती थीं, चाहे घी से जलने वाला दिया हो, चाहे जलती हुआ सुगन्ध हो, चन्दन हो, फूल हो। और हर देवता के लिए विशेष फूल प्रिय थे। ये कोई देवता के प्रिय होने का सवाल न था, लेकिन हर मंदिर की अपनी ध्वनिसंचरण व्यवस्था थी। उसमें कौन-सी ध्वनि हार्मोनियस है कौन-सी सुगन्ध के साथ, इस पर पूरा पूरा ध्यान था। सिर्फ वही फूल लाना है अन्दर मंदिर के, जिससे मन्दिर में पैदा होने वाली ध्वनि के साथ हार्मोनी रहती है और वही सुगंध भी। फिर दूसरे फूल अन्दर नहीं लाये जा सकते। मस्जिद में लोबान जलाया जायगा, मंदिर में अगरबत्ती जलेगी, धूप जलेगी, उन सबका ध्वनियों से सम्बन्ध था। 'अल्लाह' का जो उच्चार है, उसका जो सघन रूप है, उस रूप के साथ लोबान

की सुगन्ध का तालमेल है। ये तालमेल बड़ी भीतरी खोज से मिले थे। यह ऐसे नहीं सोच लिये गये थे। ऊपर से सोचा भी नहीं जा सकता। इनके खोजने की बात आपसे कह दूं। अगर आप अल्लाह का उच्चार करते जायं अपने कमरे में बैठ कर, उस कमरे में जहां कि पहले कभी लोबान नहीं लाया गया है, और कमरा बन्द कर लें। अल्लाह का उच्चारण भी सिर्फ अल्लाह नहीं, 'अल्लाहू'; उसका ठीक उच्चारण है अल्ला...हू। हू पर जोर होना चाहिए। धीरे धीरे अल्लाह छूटता जायगा और हू शेष रह जायेगा, अपने आप। और जिस दिन हू का ही उच्चार रह जायगा उस दिन आप अचानक पायेंगे कि आपके कमरे में लोबान की गंध फैल गई है। यह आपके भीतर से आती हुई गन्ध होगी। लोबान तो सिर्फ उसकी पैरेलल गंध है जो बाद में बाजार में खोजी गयी। खोजी इसलिये गई कि 'हू' के उच्चार से आपके भीतर से जो गन्ध आनी शुरू होती है उससे कोई मेल खाती गन्ध मिल जाय, तो हम मस्जिद में जला दें। क्योंकि वहां वह 'हू' के उच्चार करने वाले को सहयोगी हो जायेगी। दोहरा प्रयोग हो जायेगा। उसके भीतर से तो गंध जब उठेगी तब उठेगी, हम उसके बाहर पैदा कर देंगे। ओम् के साथ कभी भी मूल के भी किसी को लोबान का स्मरण नहीं आ सकता। उसकी चोट अलग जगह है, जहां से वह गन्ध नहीं निकल सकती।

हमारे शरीर में गन्ध के भी क्षेत्र हैं। और हमारे मनोभावों से गन्ध के सम्बन्ध हैं। इसलिए जैन कहते हैं कि महावीर के शरीर से दुर्गन्ध नहीं निकलती, सुगन्ध ही निकलती थी,—और एक विशेष सुगन्ध ही। उस सुगन्ध के आधार पर तीर्थंकर पहचाना जाता रहा। महावीर के वक्त में आठ लोगों का दावा था कि वह तीर्थंकर थे, लेकिन सुगंध ने साथ नहीं दिया। आठ लोग दावेदार थे और महावीर से कोई कम नहीं था उन आठों में। ठीक उसी हैसियत के लोग थे। किंतु उस मंत्र की धारा के लोग नहीं थे जिससे वह सुगन्ध निकले। इस वजह से वे दावे गलत हो गये। बुद्ध के बाबत भी लोगों का दावा था कि वह भी तीर्थंकर हैं। महावीर से कम उनकी हैसियत जरा भी न थी। बिल्कुल उसी हैसियत के आदमी थे। वही स्थिति थी उनकी, लेकिन उस मंत्र परम्परा के नहीं थे इसलिए महावीर का शरीर जो गन्ध दे पाता था वह बुद्ध का शरीर नहीं दे पाता था। निर्णय गन्ध से हुआ अन्ततः। महावीर के पास जाके एक विशेष गन्ध आनी शुरू हो जाती थी। उस वक्त ऐसे लोग जिन्दा थे जिन्होंने कहा कि ठीक यही पार्श्वनाथ के शरीर से भी गंध आती थी। अभी ज्यादा दिन पार्श्वनाथ को मरे नहीं हुए थे। गन्ध की यह स्मृतिसूचक व्यवस्था थी कि जब भी तीर्थंकर पैदा होगा, यही गन्ध होगी। एक विशेष मंत्र की जो अंतिम प्रक्रिया है उसके बाद ही तीर्थंकर हो सकता है। उससे यह गंध निकलेगी, वह उसका प्रमाण होगी, उसका दावा नहीं होगा। इसलिए महावीर ने कोई दावा नहीं

किया, वह तीर्थंकर हो गये। मखलीगोशाल ने बहुत दावा किया लेकिन वे तीर्थंकर नहीं हो सके। आपको हैरानी मालूम होगी कि गन्ध से तीर्थंकर तय होते थे। आसान नहीं था मामला। उतनी ही गहरी परीक्षा चाहिए थी, शब्द कुछ कह नहीं सकते थे। पूरा व्यक्तित्व गन्ध देना चाहिए कि उस व्यक्ति के भीतर वह फूल खिला है! उस मंत्र की अंतिम प्रक्रिया पूरी हो गयी, जहां से तीर्थंकर जन्मता है। नहीं तो उसको तीर्थंकर नहीं मानते। मखलीगोशाल का दावा था, अजितकेश कंबल कह रहा था, संजय, विलेटीपुत्र सब दावेदार थे। ये सब बड़े लोग थे किंतु इन सबके नाम खो गये। उस वक्त ये सब महावीर की हैसियत के लोग थे। इनमें से प्रत्येक के लाखों शिष्य थे और उनका दावा था कि हमारा आदमी तीर्थंकर है। उधर महावीर बिलकुल चुप थे इस मामले में, कभी उन्होंने दावा नहीं किया। और अन्ततः लोगों ने कहा कि तीर्थंकर तो वही आदमी है जिसके शरीर से वही गन्ध प्रवाहित हो रही है!

प्रत्येक मंत्र से होने वाली अपनी गंध है। ओम् का जिन्होंने पाठ किया है उन्होंने गंध जानी है। प्रत्येक मंत्र से, भीतर पैदा होने वाले प्रकाश का भी अनुभव है। उस प्रकाश के आधार पर मंदिर में कितना प्रकाश हो, उसका इन्तजाम किया गया। उससे ज्यादा नहीं। आज जो बिजली के बल्ब मंदिर में लगा के बैठे हैं उनके पागलपन का कोई अंत नहीं। इससे कोई लेना-देना नहीं है। क्योंकि वहां, ठीक अंतर आकाश में जितना प्रकाश होता था, उतनी ही प्रकाश की व्यवस्था मन्दिर में करनी थी। बहुत मद्धिम, अनाक्रमक प्रकाश! इसलिए घी को चुना। बहुत अनाक्रमक, आंख को चोट करता हुआ नहीं। यह एकदम से ख्याल नहीं आयेगा कि हमने कभी प्रकाश पर आंख के टिकाने का कोई अभ्यास नहीं किया था। मिट्टी के तेल का दिया जला लें और उस पर घण्टे भर आंख को रोक कर बैठ जायं। फिर घी का दिया जलायें, उस पर घण्टे भर आंख को रोक कर देखें। मिट्टी के तेल के दिये पर घण्टे भर के बाद आंख जलेगी, दुख पायेगी और थक जायेगी। और घी के दिये पर घंटे भर में आपके आंख की ज्योति बढ़ेगी और आंखें ज्यादा शांत और स्निग्ध हो जायेंगी। यह हजारों लोगों के अन्तर-अनुभव थे, जिनको बाहर व्यवस्था दी गयी। पैरेलल थे बाहर के। निश्चित ही कोई बाहर ठीक वह दिया नहीं खोज सकते जो भीतर हो सकता, लेकिन निकटतम, एप्रोक्सिमैंट, जो हो सकता था उस वक्त वह उन्होंने खोज लिया। बाहर हम ठीक वह सुगन्ध नहीं खोज सकते जो भीतर पैदा होगी मंत्र के उच्चार से, लेकिन फिर भी निकटतम हम खोज लेते हैं।

चन्दन सारे मंदिरों में प्रीतिकर हो गया। चंदन का टीका हम जहाँ लगाते हैं

वह आज्ञाचक्र है। मंत्र हैं, जिनके अनुभव से भीतर चन्दन की सुगन्ध पैदा होनी शुरू होती है, लेकिन उस सुगन्ध का स्रोत सदा ही आज्ञाचक्र होता है। जब भी वह अनुभव आता है तो ऐसा ही लगता है कि आज्ञाचक्र से सुगन्ध निकल रही है और चारों तरफ फैल रही है। वही पैरेलल प्रतीक! हमने चन्दन घिस के आज्ञाचक्र पर लगाया। जब भीतर आज्ञाचक्र पर सुगन्ध पैदा होती है तो इतनी शीतलता का अनुभव होता हैं जैसे बर्फ का टुकड़ा रख दिया है। ध्यान रहे, शीतल और ठण्डी चीज में फर्क है। ठीक वैसा ही फर्क, जैसे कि मिट्टी के तेल के दिये में और घी के तेल के दिये में है। बर्फ ठण्डा जरूर है, शीतल नहीं है। बर्फ का, थोड़ी देर के बाद का अनुभव गर्मी का होगा, उत्ताप का होगा। ठंडक जरूर है, शीतल नहीं। जो अंतिम फलश्रुति निकलेगी वह तो उत्ताप ही निकलने वाली है। आप और गर्म हो गये होते हैं। लेकिन चन्दन शीतल है, ठण्डा नहीं है। सिर्फ शीतल है। यह बहुत आर्द्र स्थिति है, और जिसमें उष्ण्य है। आपके सिर को हम बर्फ से छुआ दें तो वह सिर्फ सतह को छूता है। अब चन्दन को लगा के देखें। आज्ञाचक्र पर बर्फ को लगाकर देखें थोड़ी देर, और बर्फ को अलग रख दें, तो आप पायेंगे कि एक सतह पर उसने छुआ, चमड़ी के पार वह नहीं गया, वहां उत्ताप पैदा कर गया। फिर चन्दन को लगा लें। थोड़ी देर के बाद आपको लगेगा कि चमड़ी के पार उसकी शीतलता उतरती जा रही है। चमड़ी के पार! चमड़ी के पार न पहुंचे तो बेकार है, क्योंकि जो चक्र है वह तो चमड़ी के पार है। जिन लोगों को आज्ञाचक्र की गति का अनुभव हुआ और उन्होंने वहां शीतलता जानी, उन्होंने चन्दन को खोज लिया। उसकी सुगन्ध भी ठीक वैसी है जैसी भीतर अनुभव हुई। ये सारे के सारे उपकरण समानान्तर हैं। और जब मंदिर इन सबसे भरा होता है तो आविष्ट होता है। इसलिए मंदिर में कोई बगैर स्नान किए न जाय। हम उसके व्यक्तित्व के, क्षण भर को ही सही, पुराने तारतम्य को तोड़ना चाहते हैं। बिना घण्टा बजाये न जाय, बासे कपड़े पहन के न जाय। सच तो यह है कि मंदिर में ठीक कपड़े पहनने के लिए जो व्यवस्था थी, वह रेशम की थी। क्योंकि रेशम शरीर की विद्युत को पैदा करने में बड़ा अद्भुत था और उसको संरक्षित करने में भी। और कितना ही पहनें, बासेपन का ख्याल नहीं पकड़ता। किसी गहरे अर्थ में ताजा बना रहता है। इस सारी व्यवस्था से अगर कोई मंदिर चलता हो तो वह मंदिर चार्ज्ड, आविष्ट हो जाता है। उसके पास से भी कोई गुजरेगा तो उस मंदिर का फील्ड पैदा हो जाता है।

महावीर के बाबत कहा जाता है कि महावीर जहां चलते उससे इतनी-इतनी सीमा के भीतर हिंसा नहीं हो सकती थी। वह उनका चार्ज्ड फील्ड था। इतनी-इतनी सीमा के भीतर हिंसा नहीं हो सकती थी। वह जहां से गुजरेंगे उनका फील्ड उनके साथ चलेगा। वह चलते हुए मन्दिर हैं। उतनी सीमा के भीतर कुछ भी हो

रहा हो, वह तत्काल बदल जायगा। पूरा नो स्फियर हो जायगा। तिलार जार्जिन ने नया एक शब्द गढ़ा है 'नो स्फियर', एटमास्फियर की जगह। एटमास्फियर का तो मतलब होता है वातावरण। नो स्फियर को हिंदी में हम कह सकते हैं 'विचार-आवरण', 'मनस आवरण'। एक मन का भी आवरण है। उस फील्ड में ऐसी घटनाएं नहीं घटतीं। इसलिए पुराने गुरु के आश्रम में अगर कोई गलत काम हो जाय तो शिष्यों को सजा नहीं दी जाती थी, गुरु अपने को सजा देता था। उसका मतलब है कि फील्ड नहीं रहा। उसका कोई कारण नहीं था कि शिष्य को कुछ कहा जाय। व्यर्थ है कहना उसको। उसका मतलब यह है कि गुरु की क्षमता नहीं रही। नहीं तो एक विशेष सीमा के भीतर तो वह नहीं हो सकता था जो हुआ है। दोष देने का किसी को कोई कारण नहीं है। गुरु स्वयं पश्चात्ताप करेगा, तपश्चर्या करेगा, उपवास करेगा, आत्मशुद्धि करेगा। मगर गांधी जी ने उसको बहुत गलत पकड़ा। वह आत्मशुद्धि दूसरे के लिए प्रताड़ना नहीं है। वह ऐसी नहीं है कि इस तरह हम अपने को सतायें, तो उससे दूसरे पर दबाव डाल देंगे, और उसका अन्तःकरण बदल देंगे। वह समझ नहीं पाये। उनको उसका पता भी नहीं था। गुरु ऐसा करता था, वह उसको बदलने के लिए नहीं करता था, वह सिर्फ जो फील्ड है उसके आसपास, उसको बदलने के लिए करता था। और अगर वह फील्ड बदलता है, वह विचार-आवरण बदलता है, तो वह आदमी बदलेगा। वह दबाने के लिए, सताने के लिए नहीं था कि मैं अपने को सता रहा हूं, तो तू अब बदल। ऐसा उसके अन्तःकरण-शुद्धि का सवाल नहीं था। अंतःकरण का सवाल नहीं, चारों तरफ की हवा बदल जाने की बात है। वह एक मैगनेटिक फील्ड है, जो हर ऐसा व्यक्ति लेकर चलता है।

ये व्यक्ति गतिमान मंदिर थे। महावीर जैसे व्यक्तियों को हम एक जगह नहीं बिठा सकते हैं। सदा के लिए नहीं बिठा सकते हैं। हमें कुछ ज्यादा स्थिर चाहिये जो गांव की जिन्दगी का केन्द्र बन जाय, जिसके आस-पास गांव बदलता रहे। जहां निरन्तर हम कुछ डालते रहें मंदिर में जाकर, और मंदिर से हम लेते रहें। जिसका हमें पता भी न चले, यह सब अनजान चुपचाप हो जाय। मन्दिर के पास से निकलें तो कुछ हो जाय। कोई भी निकले मन्दिर के पास से तो कुछ हो जाय। एक बहुत बड़ा मैगनेटिक फील्ड है मंदिर, बाहर के लिए। एक बाहरी प्रयोग के लिए उसको खड़ा किया था। जैसे कि चुम्बक के पास लोहा भी आये तो चुम्बकीय मालूम पड़ने लगे, वैसे ही मंदिर के पास कोई आये तो मंदिर उसे घेर ले और छा ले। तो ऐसा मन्दिर का क्षेत्र था।

मूसा के जीवन में उल्लेख है कि जब मूसा पहाड़ पर गये। उन्होंने पहाड़ पर

दिव्य अग्नि जलते देखी। एक झाड़ी में आग लगी है। पूरी झाड़ी जलती है, चारों तरफ आग है, फिर भी बीच में झाड़ी में फूल खिले हैं और झाड़ी में हरे पत्ते हैं। मूसा परमात्मा की खोज में है, वह एकदम आगे बढ़ा, तो झाड़ी से जोर से आवाज आयी कि 'नासमझ, जूते सीमा के बाहर छोड़ दे'। सीमा वहां कोई न थी, खुला जंगल था। तो मूसा ने चल कर देखा कि सीमा कहां है? और जब उसको अनुभव हो गया कि सीमा यहां है, यानी जहां तक मूसा मूसा रहा, और जहां से एक कदम आगे बढ़ा और उसे लगा कि कुछ बदला, वहां उसने जूते बाहर रख दिये। यह है मैगनेटिक फील्ड! उसने जूते बाहर रख दिये और माफी मांगी कि मुझे क्षमा कर देना, पवित्र भूमि में जूता ले आया।

मन्दिर का एक वर्तुल है, उसके अपने आविष्ठ क्षेत्र का, जो बहुत जीवन्त है। उस जीवन्त वर्तुल का पूरे गांव के लिए उपयोग था। और उससे परिणाम आये थे। हजारों हजारों साल तक भारत के गांव की जो निर्दोषता, पवित्रता थी, उसके लिये गांव कम जिम्मेवार था, उस गांव का मन्दिर आविष्ठ था, वही ज्यादा जिम्मेवार था। तो जिस गांव में मंदिर नहीं था, उससे दीन गांव नहीं था। कितना ही गरीब गांव हो, मंदिर तो उसका होना ही था। मन्दिर के बिना सब अस्त-व्यस्त था। हजारों वर्ष तक गांव ने एक तरह की पवित्रता कायम रखी। उस पवित्रता के बड़े अदृश्य स्रोत हैं। पूरब की संस्कृति को तोड़ने के लिए जो सबसे बड़ा काम हो सकता था वह मंदिर के आविष्ठ रूप को तोड़ देना था। मन्दिर का आविष्ठ रूप टूट जाय तो पूरब की पूरी संस्कृति का जो आत्मस्रोत है वह बिखर जाता है।

इसलिए आज मन्दिर पर भारी संदेह है। और जो भी थोड़ा पढ़ा-लिखा हुआ, जिसे मंदिर के जीवन्त रूप का कोई अनुभव नहीं रहा, उसने केवल शब्द और तर्क सीखे स्कूल और कालेज में। जिसके पास सिर्फ बुद्धि रही और हृदयगत कोई द्वार न रहा, उसे मन्दिर के पास जाकर कुछ दिखायी नहीं पड़ा। उसने कहा, कुछ भी नहीं है मंदिर में। धीरे धीरे मंदिर का अर्थ टूटता चला गया। भारत पुनः कभी भारत नहीं हो सकता जब तक उसका मन्दिर जीवन्त न हो जाय। उसकी सारी कीमिया, सारी अल्केमी ही मंदिर में थी, जहां से उसने सब कुछ लिया था। चाहे बीमार हुआ हो तो मन्दिर भाग कर गया था, चाहे दुखी हुआ तो मन्दिर भाग कर गया, चाहे सुखी हुआ तो मंदिर धन्यवाद देने गया था। घर में खुशी आयी हो तो मन्दिर में प्रसाद चढ़ा आया। घर में तकलीफ आयी हो तो मन्दिर में निवेदन कर आया। सब कुछ उसका मन्दिर था। सारी आशाएं, सारी आकांक्षाएं, सारी अभीप्साएं उसकी मन्दिर के आस-पास थीं। खुद कितना ही दीन रहा हो, मंदिर को उसने सोने और हीरे-जवाहरातों से सजा रखा था। आज जब हम सोचने बैठते हैं तो यह बिल्कुल

पागलपन मालूम पड़ता है कि आदमी भूखों मर रहा है और मंदिर की प्रतिष्ठा हो रही है। मंदिर को हटाओ, एक अस्पताल बना लो। एक स्कूल खोल दो। इसमें शरणार्थी ही ठहरा दो। इस मन्दिर का कुछ उपयोग कर लो। क्योंकि मन्दिर का वास्तविक उपयोग हमें पता नहीं है, इसलिए वह बिल्कुल निरुपयोगी मालूम हो रहा है। लगता है उसमें कुछ भी तो नहीं है। फिर मंदिर में क्या जरूरत है सोने की, क्या जरूरत है चांदी की, और मंदिर में क्या जरूरत है हीरों की, जब कि लोग भूखों मर रहे हैं! लेकिन ध्यान रहे भूखों मरने वाले लोगों ने ही हीरा और सोना बहुत दिन से लगा रखा है। उसके कुछ कारण थे। जो भी उन लोगों के पास श्रेष्ठ था वह मन्दिर में रख आये थे। क्योंकि जो भी उन्होंने श्रेष्ठ जाना था वह मन्दिर से ही जाना था। इसके उत्तर में उनके पास कुछ देने को नहीं था। न सोना कोई उत्तर था, न हीरे कोई उत्तर थे। लेकिन जो मिला था मन्दिर से, उसके प्रति कृतज्ञता से भर कर हम सब कुछ वहां दे सकते थे। जो भी था हम वहां रख आये थे। अकारण नहीं था वह। क्योंकि लाखों साल तक अकारण कुछ नहीं चलता। ये मंदिर के बाहरी, उसके आविष्ठ रूप के अदृश्य परिणाम थे, जो चौबीस घण्टे तरंगायित होते रहते थे। उसके चेतन परिणाम भी थे। उसके चेतन परिणाम बहुत सीधे साफ थे।

आदमी को निरन्तर विस्मरण है। जो महान है विस्मृत हो जाता है, और जो क्षुद्र है चौबीस घण्टे याद रहता है। परमात्मा को याद रखना पड़ता है, वासना को याद रखना नहीं पड़ता, वह याद रहती है। गड्ढे में उतर जाने में कोई कठिनाई नहीं होती, पहाड़ चढ़ने में कठिनाई होती है। तो मन्दिर गांव के बीच में निर्मित करते थे ताकि दिन में दस बार आते-जाते रहें। वह हमारी आकांक्षा को भी निरन्तर जगाये रखे। और ध्यान रहे, हममें से बहुत कम ऐसे हैं जिनकी आकांक्षा सहज आंतरिक रूप से जगती है। हममें से बहुतों की आकांक्षाएं सिर्फ चीजों को देखकर ही जगती हैं। अगर हवाई जहाज नहीं था दुनिया में तो आपको हवाई जहाज में उड़ने की कोई आकांक्षा नहीं जगती थी। हां, किसी राइट ब्रदर्स को जगती। जो एकाध आदमी है जो हवाई जहाज बनाता है—उसको जगती है क्योंकि वह तो हवाई जहाज निर्माण करता है, लेकिन आप को कभी नहीं जगती। आप हवाई जहाज देखेंगे तो अवश्य जगेगी। हमें चीजें दिखायी पड़ती हैं तो हमारे भीतर उन्हें पाने की आकांक्षा जगती है। तो मंदिर के रूप में परमात्मा का कहीं न कहीं कोई साकार रूप हमें दिखायी पड़ता था, जो हम अन्धों के मन में कहीं प्रवेश करता था। खास तौर से उन लोगों के मन में जो कि निराकार के लिए आतुर नहीं हो सकते थे। जो हो सकते थे निराकार के लिए राजी, उनके लिए तो कोई सवाल नहीं था मंदिर का। उन्होंने तो इस लिहाज से मन्दिर को नुकसान पहुंचा दिया। उसमें भूल हुई। जो हो सकते थे निराकार से आविष्ठ, उन्होंने कहा बेकार हैं मंदिर, उन्हें हटा दो। मैं

खुद ही निरन्तर कहता रहा हूं कि बेकार हैं, हटा दो। लेकिन धीरे धीरे मुझे ख्याल में आया कि यह मैं कह रहा हूं, और मन्दिर हट गया तो जिनको आकार से कुछ स्मरण नहीं आया उनको निराकार से कैसे आ सकेगा? तो इस लिहाज से कई बार कठिनाई हुई है। महावीर अगर अपनी हैसियत से बोलेंगे तो कहेंगे, हटा दो। क्योंकि महावीर को कोई जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन कभी आपका ख्याल आ जाय तो इसे रोक लेना पड़ेगा। यह आपके लिए चौबीस घण्टे आकांक्षा का एक नया स्रोत बना रहता है। एक और द्वार भी है जीवन में—दुकान और घर ही नहीं, धन और स्त्री ही नहीं —एक और द्वार भी है जीवन में जो न बाजार का हिस्सा है, न वासना का हिस्सा है। न धन मिलता है वहां, न यश मिलता है वहां, न काम तृप्ति होती है वहां। एक जगह और भी है, यह गांव में ही नहीं है, जीवन में एक जगह और है। इसके लिए धीरे धीरे यह मन्दिर रोज आपको याद दिलाता है। और ऐसे क्षण हैं, जब बाजार से भी आप ऊब जाते हैं और ऐसे क्षण हैं जब घर से भी ऊब जाते हैं। तब मन्दिर का द्वार खुला है। ऐसे क्षण में तत्काल आप मंदिर में ठहर पाते हैं। मन्दिर सदा तैयार है। जहाँ मंदिर गिर गया वहां फिर बड़ी कठिनाई है, विकल्प नहीं कोई है। घर से ऊब जायं तो होटल हो सकता है, रेस्तरां हो सकता है। बाजार से ऊब जायं, पर जायं कहां? कोई अलग डायमेंशन, कोई अलग आयाम नहीं है। बस वही है, —वहीं के वहीं घूमते रहते हैं। मन्दिर एक बिल्कुल अलग डायमेंशन है जहां लेन-देन की दुनिया नहीं है। इसलिए जिन्होंने मंदिर को लेन-देन की दुनिया बनाया उन्होंने मन्दिर को गिराया। जिन्होंने मन्दिर को बाजार बनाया, उन्होंने मन्दिर को नष्ट किया। जिन्होंने मन्दिर को भी दुकान बना लिया, उन्होंने मन्दिर को नष्ट कर दिया। मन्दिर लेन-देन की दुनिया नहीं है। सिर्फ एक विश्राम है। एक विराम है, जहां आप सब तरफ से थके-मांदे चुपचाप सिर छिपाते हैं। वहां की कोई शर्त नहीं है कि आप इस शर्त से आओ। इतना धन हो तो आओ, इतना ज्ञान हो तो आओ, कि इतनी प्रतिष्ठा हो तो आओ, कि ऐसे कपड़े पहनकर आओ कि मत आओ। वहां की कोई शर्त नहीं है। आप जैसे हो, मंदिर आपको स्वीकार कर लेगा। कहीं कोई जगह है जहां जैसे आप हो वैसे ही आप स्वीकृत हो जाओगे, ऐसा भी सरल स्थल है। आपकी जिन्दगी में हर वक्त ऐसे मौके आये होंगे जबकि जो जिन्दगी है तथाकथित, उससे आप ऊबे होंगे, उस क्षण प्रार्थना का दरवाजा खुला होगा! और एक दफा भी वह दरवाजा आपके भीतर भी खुल जाय तो फिर दुकान में भी खुला रहेगा, मकान में भी खुला रहेगा। वह द्वार निरन्तर पास होना चाहिए, जब आप चाहो वहां पहुंच सको। क्योंकि आपके बीच जिसको हम विराट् का क्षण कहें वह बहुत अल्प है। कभी क्षण भर को होता है। जरूरी नहीं कि आप तीर्थ जा सको, जरूरी नहीं कि महावीर को खोज सको कि बुद्ध को खोज सको। वह क्षण अल्प है, उस

क्षण बिल्कुल निकटतम आपके कोई जगह होनी चाहिए जहां आप प्रवेश कर सकें। इस स्मृति के अद्भुत परिणाम हैं। जैसे छोटे बच्चे हैं—हम सभी छोटे बच्चे थे, और जो भी होगा वह छोटा बच्चा ही होगा पहले तो। वैज्ञानिक कहते हैं कि सात साल में बच्चा करीब करीब जो भी आधारभूत है, वह सीख लेता है। फिर इसी आधारभूत पर फैलाव हो सकता है। लेकिन नया बहुत कम जोड़ा जाता है। जुड़ता है, उसी दायरे में। कुछ नया नहीं जोड़ा जाता। अगर हमने सात साल के बच्चे तक की जिन्दगी में मन्दिर नहीं जोड़ा, तो आप दोबारा नहीं जोड़ पायेंगे। बहुत कठिन हो जायगा फिर जोड़ना। और यदि जोड़ने की मेहनत की भी गई तो वह कभी गहरा नहीं हो पायेगा, ऊपर ऊपर से रह जायेगा। तो बच्चा पहले दिन पैदा हुआ और उसकी पहली स्मृति हम मंदिर की बनाना चाहते थे। वह मन्दिर के पास ही बड़ा हो, वह मंदिर को जानता हुआ बड़ा हो, वह मन्दिर को पहचानता हुआ बड़ा हो। मंदिर उसके अंतरंग का हिस्सा बन जाय। जब वह जिन्दगी में प्रवेश करे तो उसके भीतर मन्दिर की एक जगह बन जाय। क्योंकि अंततः वही जगह उसका विश्रामस्थल बनेगी जीवन के अंत में! सारी दौड़-धूप के बाद वही कोना उसका आखिरी घर और निवास होने वाला है। वह हमें पहले ही बना देना है। एक दफा वह नहीं बना तो फिर बहुत कठिनाई हो जाती है। अभी तो इतनी सरलता से बन सकती है, फिर वह जगह निर्मित नहीं हो सकती।

बाहर जो भी लोग जी रहे हैं मंदिर के प्रतिबिंब उनके चित्त में उतरने चाहिए। वह उनके अचेतन में इतने गहरे उतर जायं कि सोच-विचार का भी हिस्सा न रह जाय, वह उनके हिस्से ही हो जायं। इसलिए सारी पृथ्वी पर, चाहे रूप कोई भी हो,—अलग अलग रूप रहे, लेकिन मन्दिर अनिवार्य था। मनुष्य जिस सभ्यता और संस्कृति में जिया, उसका वह अनिवार्य अंग था। अब हम जो दुनिया बनाने जा रहे हैं उसमें मंदिर अनिवार्य नहीं रह गया। कुछ और चीजें अनिवार्य हो गयीं। स्कूल हैं, अस्पताल हैं, पुस्तकालय हैं, पर ये सब अति लौकिक हैं, इनसे कुछ पार का, 'बियोन्ड' का, कोई संबंध नहीं जुड़ता है। सदा ही, वह जो अतिक्रमण कर जाता है जीवन का, उसकी तरफ इशारा बना रहे। सुबह हमारी आंखें खुलें तो मंदिर की घण्टी बजती हुई सुनायी पड़े। रात में सोने जाते हों तो मंदिर का भजन हमें सुनायी पड़े। हम न भी करें, तो भी मंदिर का भजन हमारे कान में पड़े।

महावीर के जीवन में एक कथा है, कि एक आदमी है चोर। मर रहा है, अपने बेटे को उसने कहा, जब बेटे ने पूछा है कि कोई आखिरी शिक्षा है मेरे लिये? तो उसने कहा, एक ही शिक्षा है कि यह जो महावीर नाम का आदमी है इसके पास मत खड़े होना। यह अगर तुम्हारे गांव में बोलता हो तो दूसरे गांव में भाग जाना। यह

अगर रास्ते से गुजरता हो तो फौरन गली-कूचे में कहीं भी निकल के छिप जाना। अगर पता न चले और तुम ऐसी जगह पहुंच जाओ जहां उसकी आवाज सुनायी पड़ गयी तो फौरन कान बन्द करके, आंख बन्द करके दौड़ आना। इस आदमी से बचना। चोर के लड़के ने कहा, लेकिन इतना डरने की इस आदमी से क्या जरूरत है? उसने कहा, मैं तुमसे कहता हूं, वह मानो। ऐसे आदमियों के पास गये तो अपना धंधा सदा खतरे में होगा, फिर हम नहीं जी सकते। इनसे बचना। फिर बड़ी मजेदार कथा है। वह बचता है जिन्दगी भर। सदा भागता रहा। जहां महावीर आते, वह वहां से भाग जाता। लेकिन एक दिन भूल हो गयी। वह एक रास्ते से गुजरता था और आम्रवन में महावीर बैठे थे, उसे कुछ पता न था। बोल नहीं रहे थे, जब वह आया था पास, तब बोल नहीं रहे थे। अचानक उन्होंने बोलना शुरू किया तो आधा वाक्य उसको सुनायी पड़ गया। उसने कान बन्द किये और भागा। लेकिन आधा वाक्य सुनायी पड़ ही गया। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आधा वाक्य! पुलिस उसके पीछे थी, राज्य उसके पीछे था—कोई दस-पन्द्रह दिन बाद वह पकड़ा गया। वह कुशल चोर था, पीढ़ी दर पीढ़ी का उसका धन्धा था। इतना कुशल चोर था कि राज्य के पास कोई भी प्रमाण न था। जाहिर था चोर वही है, जाहिर था बड़ी चोरियां उसी ने की हैं। सबको पता था। इसमें छिपा भी कुछ न था। जाहिर रहस्य था। लेकिन फिर भी प्रमाण कुछ न था। कुशल इतना था कि लोगों के घरों में खबर करके चोरी कर लेता था, पर प्रमाण नहीं मिलते। तो सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं था कि कोई प्रमाण उससे ही निकलवाया जाय। उसे गहरा नशा करके बेहोश किया गया, इतना बेहोश रखा कि उसे दो-तीन दिन बिलकुल होश में नहीं आने दिया। दो-तीन दिन के बाद वह होश में आया। उसने आंख खोली, तो तीन दिन की बेहोशी थी, खुमारी थी। देखा चारों तरफ कि अप्सराएं खड़ी हैं। उसने पूछा—मैं कहां हूं? तुम मर गये हो और तुम्हें स्वर्ग या नर्क ले जाने की तैयारी की जा रही है। हम सिर्फ ले जाने वाले हैं। तुम होश में आ जाओ, इसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, ताकि हम तुमसे पूछ लें। अगर तुमने जो जो पाप किये हैं वह तुम कह दो तो तुम स्वर्ग जा सकते हो, और न कहो तो नर्क। सत्य बोल दो, बस इतना काफी है। उसका मन हुआ कि बोल दे सत्य, स्वर्ग जाने का मौका न चूके। जब मर ही गया तो अब क्या डर है? लेकिन तभी उसे महावीर का वह आधा वचन याद आया। जब वह गुजर रहा था उस वक्त महावीर कुछ देवताओं और प्रेतों के संबंध में बोल रहे थे। मृत्यु के पार जो यम ले जाते हैं उनके संबंध में कुछ इशारे थे। आधा वाक्य उसने सुना था। महावीर कह रहे थे कि वह जो ले जाते हैं मृत्यु के बाद, उनके पैर उल्टे होते हैं। उसने उनके पैर देख लिये, वे सब तो सीधे थे। वह सजग हो गया। उसने सोचा इस झंझट में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। समझ गया कि कुछ गड़बड़

मामला है। होश आ गया। उसने कुछ कहा नहीं। उसने कहा, पाप तो कुछ किये नहीं, तो वक्तव्य क्या दूं। नर्क ही ले चलो। पर जब पाप मैंने कुछ किये नहीं तो नर्क तुम ले जाओगे कैसे? उसे छोड़ दिया गया। वह भागा हुआ महावीर के पास पहुंचा, जा कर उनका पैर पकड़ लिया और कहा कि पूरा वाक्य करो, आधे वाक्य ने बचा लिया। अब तुम्हारा पूरा वाक्य सुन लूं। मैं तो भाग रहा था। आधा ऐसे ही सुन लिया था भागते भागते। उसने बचा ली ज़िन्दगी, नहीं तो फांसी लग गयी होती! अब तुम पूरा कह दो प्रभु! कि क्या कहना है, नहीं तो फांसी कभी न कभी लगेगी। अब मैं आ गया तुम्हारी शरण! तो महावीर अक्सर कहा करते थे कि आधा वाक्य भागते हुए जबरदस्ती सुना गया भी कभी काम का हो जाता है। तो मंदिर के पास से कभी भागता हुआ आदमी, ऐसे अकारण गुजरता हुआ आदमी, कभी उसके भीतर से उठती हुई ध्वनि को, कभी उसके भीतर से आती सुगन्ध को ऐसे ही सुन ले, तो भी काम आ सकती है।

●

तीर्थ

प्रशान्त महासागर में एक छोटे से द्वीप ईस्टर आईलैंड में एक हजार विशाल मूर्तियां हैं जिनमें कोई भी मूर्ति बीस फीट से छोटी नहीं है। और निवासियों की कुल संख्या दो सौ है। जरा अन्दाजा लगाइये, एक हजार, बीस फीट से सत्तर फीट के बीच की, विशाल मूर्तियां! जब पहली दफा इस छोटे से द्वीप का पता लगा तो बड़ी कठिनाई हुई। कठिनाई यह हुई कि उस द्वीप की सामर्थ्य ही नहीं है दो सौ से ज्यादा लोगों को बसाने की और जो पैदावार हो सकती है वह इससे ज्यादा लोगों को पाल नहीं सकती। फिर जहां सिर्फ दो सौ लोग रह सकते हों, वहां एक हजार मूर्तियां विशाल पत्थर की खोदने का प्रयोजन नहीं मालूम पड़ता। ये तो एक आदमी के पीछे पांच मूर्तियां हो गयीं। और इतनी बड़ी मूर्तियां ये दो सौ लोग खोदना भी चाहें, इतना मंहगा काम ये गरीब आदिवासी करना भी चाहें, तो भी नहीं कर सकते। क्योंकि इनकी जिन्दगी तो सुबह से सांझ तक रोटी कमाने में ही व्यतीत हो जाती है। और इन मूर्तियों को बनाने में हजारों वर्ष लगे होंगे!

क्या होगा प्रयोजन इतनी मूर्तियों का? किसने इन मूर्तियों को बनाया होगा? क्यों बनाया होगा? इतिहासविद् के सामने बहुत से सवाल थे।

ऐसी ही एक जगह मध्य एशिया में है। जब तक हवाई जहाज नहीं उपलब्ध

था, तब तक उस जगह को समझना बहुत मुश्किल पड़ा। हवाई जहाज के बन जाने के बाद ही यह ख्याल में आया कि वह जगह कभी जमीन से हवाई जहाज उड़ने के लिए एयरपोर्ट का काम करती रही होगी। उस तरह की जगह के बनाने का और कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। फिर वह जगह नयी नहीं है। उसको बने हुए अन्दाजन बीस हजार और पन्द्रह हजार वर्ष के बीच का वक्त हुआ होगा। लेकिन जब तक हवाई जहाज नहीं बने थे तब तक तो हमारी समझ के बाहर था उसे समझना। हवाई जहाज बने, और जब हमने एयरपोर्ट बनाये, तब हमारी समझ में आया कि उस जगह ने कभी एयरपोर्ट का काम किया होगा। यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि तीर्थ को हम न समझ पायेंगे, जब तक कि तीर्थ पुनः आविष्कृत न हो जाय।

अब जाकर, उन ईस्टर आईलैण्ड की मूर्तियों के एयरव्यू से, आकाश से हवाई जहाज के द्वारा लिये गये चित्रों से अन्दाज लगता है कि वह इस ढंग से बनायी गयी हैं, इस विशेष व्यवस्था में बनायी गयी हैं कि किन्हीं खास रातों में चांद पर से देखी जा सकें। वह ज्यामिट्रि के जिन कोणों में खड़ी की गयी हैं, वहां वह कोण बनाती हैं पूरा का पूरा। जो लोग इस संबंध में खोज करते हैं, उनका ख्याल यह है कि यह पहला मौका नहीं है कि हमने दूसरे ग्रहों पर जो जीवन है, उससे संबंध स्थापित करने की कामना की है। इसके पहले भी जमीन पर बहुत प्रयोग किये गये, कि दूसरे ग्रहों पर अगर कोई जीवन हो, कोई प्राणी हो, तो उनसे हमारा संबंध स्थापित हो सके। इतना ही नहीं दूसरे प्राणी-लोकों से पृथ्वी के संबंध स्थापित हो सकें, इसके बहुत से सांकेतिक इन्तजाम किये गये। यह जो बीस फीट से ऊंची मूर्तियां हैं, ये अपने आप में अर्थपूर्ण नहीं हैं; लेकिन जब ऊपर से उड़कर उनके पूरे पैटर्न को देखा जाय, तब पता चलता है कि इनका पैटर्न किसी संकेत की सूचना देता है। वह संकेत चांद से पढ़ा जा सकता है। पर जिन लोगों ने वह बनाया होगा! जब तक हम हवाई जहाज में उड़कर न देख सके, तब तक हम उसकी कल्पना भी न कर सके और तब तक ये हमारे लिए सिर्फ मूर्तियां ही थीं। ऐसी इस पृथ्वी पर बहुत सी चीजें हैं, जिनके संबंध में तब तक हम कुछ भी नहीं जान पाते, जब तक कि किसी रूप में हमारी सभ्यता, उस घटना का पुनर्आविष्कार न कर ले।

अभी मैं दो-तीन दिन पहले बात कर रहा था। तेहरान में एक छोटा-सा लोहे का डिब्बा मिला था। वह ब्रिटिश म्यूजियम में पड़ा रहा। वर्षों प्रतीक्षा की उस डिब्बे ने वहां। वह तो अभी अभी जाकर पता लगा है कि वह बैट्री है, जो दो हजार साल पहले तेहरान में उपयोग में आती रही। उसकी बनावट का ढंग ऐसा था कि ख्याल में नहीं आ सका। लेकिन अब उसकी पूरी खोज-बीन हो गयी। तेहरान में दो हजार साल पहले बैट्री हो सकती है, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

लकिन अब पूरा साफ हो गया है कि वह बैट्री ही है। अगर हमारे पास बट्री न होती तो हम कभी भी, किसी भी तरह से, इस डिब्बे को बैट्री के रूप में खोज नहीं पाते। ख्याल भी नहीं आता, धारणा भी नहीं बनती।

तीर्थ पुरानी सभ्यता के खोजे हुए बहुत गहरे, सांकेतिक, और बहुत अनूठे आविष्कार हैं। लेकिन हमारी सभ्यता के पास उनको समझने के सब रूप खो गये हैं। सिर्फ एक मुर्दा व्यवस्था रह गयी है। हम उसको ढोये चले जाते हैं बिना यह जाने कि वह क्यों निर्मित हुए, क्या उनका उपयोग किया जाता रहा, किन लोगों ने उन्हें बनाया, क्या प्रयोजन था? जो ऊपर से दिखायी पड़ता है वही सब कुछ नहीं है, भीतर कुछ और भी है जो ऊपर से कभी दिखायी नहीं पड़ता। पहली बात तो यह समझ लेनी चाहिए कि हमारी सभ्यता ने तीर्थ का अर्थ खो दिया है। इसलिए जो आज तीर्थ को जाते हैं वह भी करीब करीब व्यर्थ जाते हैं। जो उसका विरोध करते हैं वह भी करीब करीब व्यर्थ विरोध करते हैं। बल्कि विरोध करने वाला ठीक मालूम पड़ेगा, यद्यपि उसे भी कुछ पता नहीं है इस बारे में। जिस तीर्थ का वह विरोध कर रहा है वह तीर्थ की धारणा नहीं है। और तीर्थ जाने वाला जिस तीर्थ में जा रहा है वह भी तीर्थ की धारणा नहीं है। इस संबंध में चार-पांच चीजें पहले ख्याल में ले लेनी चाहिए —

जैसे कि जैनों का तीर्थ है—समेतशिखर। जैनों के चौबीस तीर्थंकर में से बाईस तीर्थंकरों का समाधि-स्थल है वह। चौबीस में से बाईस तीर्थंकरों ने समेतशिखर पर शरीर विसर्जन किए हैं। आयोजित थी यह सारी व्यवस्था। अन्यथा एक जगह पर जाकर इतने तीर्थंकरों का, चौबीस में से बाईस का, जीवन अंत होना आसान मामला नहीं है बिना आयोजन के। एक ही स्थान पर, हजारों साल के लंबे फासले में ऐसी घटना घटे! अगर हम जैनों का हिसाब मानें, और मैं मानता हूं कि हमें जहां तक बन सके जिसका हिसाब हो उसका पहले मानने की कोशिश करनी चाहिए, तब तो लाखों वर्षों का फासला है—उनके पहले तीर्थंकर में और चौबीसवें तीर्थंकर में। लाखों वर्षों के फासले पर एक ही स्थान पर बाईस तीर्थंकरों का जाकर अपने शरीर को छोड़ना विचारणीय है।

मुसलमानों का तीर्थ है काबा। काबा में मुहम्मद के वक्त तक तीन सौ पैंसठ मूर्तियां थीं। हर दिन की एक अलग मूर्ति थी। वह तीन सौ पैंसठ मूर्तियां हटा दी गयीं। फेंक दी गयीं। लेकिन जो केन्द्रीय पत्थर था मूर्तियों का, जो मंदिर का केन्द्र था, वह नहीं हटाया गया। तो काबा मुसलमानों से बहुत ज्यादा पुरानी जगह है। मुसलमानों की तो उम्र बहुत लम्बी नहीं है, केवल चौदह सौ वर्ष है। लेकिन काबा में लाखों वर्ष पुराना पत्थर है—वह जो काला पत्थर है। दूसरे एक मजे की बात

है कि वह पत्थर जमीन का पत्थर नहीं है, यह तय है। पर आया कैसे वहां यह पत्थर? एक ही उपाय था हमारे पास जानने का कि वह उल्कापात में गिरा हुआ पत्थर है। क्योंकि उल्कापात में सदा पत्थर जमीन पर गिरते हैं, और थोड़े पत्थर नहीं गिरते, रोज दस हजार पत्थर जमीन पर गिरते हैं, चौबीस घण्टे में। जो आपको रात तारे गिरते हुए दिखायी पड़ते हैं वह तारे नहीं होते, वह उल्काएं हैं, पत्थर हैं, जो जमीन पर गिरते हैं। जोर से घर्षण खाकर हवा का, वे जल उठते हैं। अधिकतर तो बीच में ही राख हो जाते हैं, कोई कोई जमीन तक पहुंच जाते हैं। कभी कभी जमीन पर बहुत बड़े पत्थर भी पहुंच जाते हैं। उन पत्थरों की बनावट और निर्मिति सारी भिन्न होती है। यह जो काबा का पत्थर है, यह जमीन का पत्थर नहीं है। इसकी सीधी व्याख्या तो यह है कि वह उल्कापात में गिरा है। लेकिन जो और गहरे जानते हैं, उनका मानना है, वह उल्कापात में गिरा हुआ पत्थर नहीं है। जैसे हम आज जाकर चांद पर जमीन के चिन्ह छोड़ आये हैं—समझ लें कि एक लाख साल बाद यह पृथ्वी नष्ट हो चुकी हो, इसकी आबादी खो चुकी हो। अथवा कल अगर तीसरा महायुद्ध हो जाय तो यह पृथ्वी सूनी हो जाय, तो चांद पर जो हम चिन्ह छोड़ आये हैं, हमारे अंतरिक्ष यात्री चांद पर जो वस्तुएं छोड़ आये हैं वे वहीं बनी रहेंगी, सुरक्षित रहेंगी। उन्हें बनाया भी इस ढंग से गया है कि लाखों वर्षों तक सुरक्षित रह सकें। अगर कभी कोई जीवन चांद पर विकसित हुआ, या किसी और ग्रह से चाँद पर पहुंचा, तो उसे वे चीजें मिलेंगी, और उसके लिए यह कठिनाई होगी कि वे कहां से आयी हैं? इसी भांति काबा का जो पत्थर है वह सिर्फ उल्कापात म गिरा हुआ पत्थर नहीं है, वह पत्थर पृथ्वी पर किन्हीं और ग्रहों के यात्रियों द्वारा छोड़ा गया पत्थर है। और उस पत्थर के माध्यम से उस ग्रह के यात्रियों से सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते थे। लेकिन पीछे सिर्फ उसकी पूजा रह गयी। उसका पूरा का पूरा विज्ञान खो गया; उससे कैसे संबंध स्थापित किया जा सके, वह सारी बात खो गयी।

रूस का एक आंतरिक्ष यान, जिसमें कोई मनुष्य यात्री नहीं था, खो गया और उसकी जो रेडियो व्यवस्था थी, हमसे संपर्क स्थापित करने की, वह टूट गयी। जैसे उसका रेडियो खराब हुआ, हम यह भी पता न लगा सके कि वह कहां गया? कहां है? बचा, जला, समाप्त हुआ, हम कुछ भी पता न लगा सके। इस अनन्त अंतरिक्ष में अब हम उसका कभी भी पता नहीं लगा सकेंगे; क्योंकि उससे संबंध के सब सूत्र खो गये। वह अगर किसी ग्रह पर गिर जाय तो उस ग्रह के वासी क्या करेंगे? अगर उनके पास इतनी वैज्ञानिक उपलब्धि हो कि उसके रेडियो को ठीक कर सकें, तो हमसे संबंध स्थापित हो सकता है। अन्यथा उसको तोड़-फोड़ करके, उनके पास अगर कोई म्यूजियम होगा तो उसमें रख लेंगे और किसी तरह की व्याख्या करेंगे कि वह क्या है? अगर रेडियो तक उनका विकास हुआ हो तो उन्हें व्याख्या करने की

जरूरत न पड़गी। तब वह उसके राज को खोल लेंगे। अगर ऐसा न हुआ हो तो वह भयभीत हो सकते हैं उससे, डर सकते हैं, अभिभूत हो सकते हैं, आश्चर्यचकित हो सकते हैं, पूजा कर सकते हैं।

काबा का पत्थर उन छोटे से उपकरणों में से एक है जो कि कभी दूसरे ग्रह के अंतरिक्ष यात्रियों ने छोड़े और जिनसे कभी सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे। यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं आपको, कि तीर्थ हमारी ऐसी व्यवस्थाएं हैं जिनसे हम अंतरिक्ष के जीवन से संबंध स्थापित नहीं करते बल्कि इस पृथ्वी पर ही जो चेतनाएं विकसित होकर विदा हो गयीं, उनसे पुनः पुनः संबंध स्थापित कर सकते हैं। और इन संभावनाओं को बढ़ाने के लिए जैसे समेतशिखर पर बहुत गहरा प्रयोग हुआ। बाईस तीर्थंकरों का समेत शिखर पर जाकर समाधि लेना, गहरा प्रयोग था। वह इस चेष्टा में था कि उस स्थल पर चेतना-तरंगों की इतनी सघनता हो जाय कि सम्बन्ध स्थापित करने आसान हो जायं। उस स्थान से इतनी चेतनाएं यात्रा करें दूसरे लोक में कि उस स्थान और दूसरे लोक के बीच सुनिश्चित मार्ग बन जाय। वह सुनिश्चित मार्ग रहा है। जैसे जमीन पर सब जगह एक-सी वर्षा नहीं होती, घनी वर्षा के स्थल हैं, विरल वर्षा के स्थल हैं, रेगिस्तान हैं जहां कोई वर्षा नहीं होती, और ऐसे स्थान हैं जहां पांच सौ इंच वर्षा होती है। ऐसी जगह हैं जहां ठण्डा है सब और बर्फ के सिवाय कुछ भी नहीं बनता, और ऐसे स्थान हैं जहां सब गर्म है, और बर्फ बन नहीं सकती। ठीक वैसे ही पृथ्वी पर चेतना की डेंसिटी और नान-डेंसिटी के स्थल हैं। और उनको निरन्तर बनाने की कोशिश की गयी है। उनको निर्मित करने की कोशिश की गयी है। क्योंकि वह अपने आप निर्मित नहीं होंगे, वह मनुष्य की चेतना से निर्मित होंगे। समेतशिखर पर बाईस तीर्थंकरों की यात्रा करना, समाधि में प्रवेश करना, और उसी एक जगह शरीर को छोड़ना; उस जगह पर इतनी घनी चेतना का प्रयोग है कि वह जगह चार्ज्ड हो जायेगी विशेष अर्थों में। फिर कोई भी व्यक्ति वहां बैठे और उन विशेष मंत्रों का प्रयोग करे, जिन मंत्रों को उन बाईस लोगों ने दिया है, तो तत्काल उसकी चेतना शरीर को छोड़कर यात्रा करना शुरू कर देगी। वह प्रक्रिया वैसी ही विज्ञान की है जैसी कि और विज्ञान की सारी प्रक्रियाएं हैं।

तीर्थों को बनाने का एक तो प्रयोजन यह था कि हम इस तरह के चार्ज्ड, ऊर्जा से भरे हुए स्थल पैदा कर लें जहां से कोई भी व्यक्ति सुगमता से यात्रा कर सके। जैसे दो ढंग हैं नाव खेने के—एक तो होता है कि हम नाव में पतवार लगाकर नाव खेवें। दूसरा यह होता है कि हम पतवार को चलायें ही न, सिर्फ नाव के पाल खोल दें उचित समय पर, और उचित हवा की दिशा में नाव को बहने दें। तीर्थ वैसी

जगह है, जहां से चेतना की एक धारा अपने आप प्रवाहित हो रही है, जिसको प्रवाहित करने के लिए सदियों ने मेहनत की है। 'आप सिर्फ उस धारा में खड़े हो जायं जहां आपकी चेतना का पाल तन जाय और आप एक यात्रा पर निकल जायं। जितनी मेहनत आपको अकेले में करनी पड़े, उससे बहुत अल्प मेहनत में यात्रा संभव हो सकती है। विपरीत स्थल पर खड़े होकर यात्रा अत्यंत कठिन भी हो सकती है। हवाएं जब उलटी तरफ बह रही हों और आप पाल खोल दें, तो बजाय इसके कि आप पहुंचें, आप और भटक जायं, इसकी पूरी संभावना है।

अब जैसे, आप किसी ऐसी जगह में ध्यान कर रहे हैं जहां चारों ओर नकारात्मक भावावेश प्रवाहित होते हैं, निगेटिव इमोशंस प्रवाहित होते हैं। यों समझ लें कि आप एक जगह बैठ कर ध्यान कर रहे हैं और आपके चारों तरफ हत्यारे बैठे हुए हैं। ध्यान करने के क्षण में आप इतने रिसेप्टिव हो जाते हैं कि आस-पास जो भी हो रहा है वह तत्काल आपमें प्रवेश कर जाता है। ध्यान एक रिसेप्टिविटी है, एक ग्राहकता है। ध्यान में आप 'वल्नरेबल' हो जाते हैं, खुल जाते हैं और कोई भी चीज आपमें प्रवेश कर सकती है। इसलिये ध्यान के क्षण में, आस-पास कैसी तरंगें हैं चेतना की, वह विचार कर लेना बहुत उपयोगी है। अगर ऐसी तरंगे आपके चारों तरफ हैं, जो कि आपको गलत दिशा में झुका सकती हैं, तो ध्यान महंगा भी पड़ सकता है। तब ध्यान एक जद्दोजहद और एक संघर्ष बन जायेगा। जब कभी ध्यान में अचानक आपको ऐसे ख्याल आने लगें जो आपको कभी नहीं आये थे, जब ध्यान के क्षण में आपको एक क्षण भी शांत होना मुश्किल होने लगे और ऐसा लगे कि इससे ज्यादा शांत तो आप बिना ध्यान के ही रहते हैं, तब स्थिति यह होती है कि उस ध्यान के क्षण में भाव तरंगों के रूप में आस-पास जो भी प्रवाहित हो रहा है वह आप में सुगमता से प्रवेश पा जाता है। वैसे कारागृह में भी बैठकर ध्यान किया जा सकता है, पर उसके लिए बड़ा सबल व्यक्तित्व चाहिए। और कारागृह में बैठकर ध्यान करना हो तो प्रक्रियाएं भिन्न चाहिए। ऐसी प्रक्रियाएं चाहिए जो पहले आपके चारों तरफ अवरोध की एक सीमा रेखा निर्मित कर दें, जिसके भीतर कुछ प्रवेश न कर सके। परन्तु तीर्थ में वैसे अवरोध की कोई जरूरत नहीं है। तीर्थ में तो आप सब 'रेसिस्टेंस', सब द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दें! हवाएं वहां बह रहीं हैं। सैकड़ों लोगों ने उस जगह से अनंत में प्रवाहित होकर एक मार्ग निर्मित किया है। ठीक वैसा ही मार्ग कहना चाहिए जैसे कि हम जंगल में दरख्त गिरा कर एक पक्का रास्ता बना लेते हैं, ताकि पीछे चलने वाले दूसरे यात्री को बड़ी सुगमता हो जाय। आत्मिक अर्थों में भी सदा इस तरह के रास्ते निर्मित करने की कोशिश की गयी। कमजोर आदमियों को जिस तरह भी सहायता पहुंचाई जा सके, उस तरह सहायता, जो शक्तिशाली थे, उन्होंने सदा पहुंचाने की कोशिश की। तीर्थ उनमें एक बहुत बड़ा प्रयोग है।

तीर्थ वह स्थान है जहां हवाएं शरीर से आत्मा की तरफ बह ही रही हैं, जहां वायुमण्डल पूरा तरंगायित है, जहां से लोग ऊर्ध्वगामी हुए, जहां बैठकर लोग समाधिस्थ हुए, जहां बैठकर लोगों ने परमात्मा का दर्शन पाया, जहां इन अनूठी घटनाओं के सैकड़ों वर्षों तक घटते रहने से वह जगह एक विशेष आविष्ठ जगह हो गयी। उस आविष्ठ जगह में आप अपने पाल को खुला भर छोड़ दें, कुछ और न करें, तो भी आपकी यात्रा शुरू हो जायगी। यह तीर्थ का पहला प्रयोग था। इसलिए सभी धर्मों ने तीर्थ निर्मित किये। उन धर्मों ने भी तीर्थ निर्मित किये जो मंदिर के पक्ष में नहीं थे। यह बड़े मजे की बात है कि मंदिर के पक्ष में कोई धर्म तीर्थ निर्मित करे, समझ में आता है। लेकिन जो धर्म मंदिर के पक्ष में न थे, जो धर्म मूर्ति के विरोधी थे, उनको भी तीर्थ तो निर्मित करना ही पड़ा। मूर्ति का विरोध आसान हुआ, मूर्ति हटा दी वह भी कठिन न हुआ, लेकिन तीर्थ को हटाया नहीं जा सका। क्योंकि तीर्थ का और भी व्यापक उपयोग था जिसको कोई धर्म इन्कार न कर सका। जैन भी मूलतः मूर्तिपूजक नहीं हैं, मुसलमान मूर्तिपूजक नहीं हैं, सिख मूर्तिपूजक नहीं हैं।, बुद्ध भी मूर्तिपूजक नहीं थे प्रारम्भ में—लेकिन इन सबने भी तीर्थ निर्मित किये हैं। तीर्थ निर्मित करने ही पड़े। सच तो यह है कि बिना तीर्थ के धर्म का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। बिना तीर्थ के धर्म फिर ऐसा है कि एक एक व्यक्ति जो कर सकता है, करे। लेकिन फिर समूह में खड़े होने का कोई प्रयोजन, कोई अर्थवत्ता नहीं है।

तीर्थ शब्द का अर्थ होता है घाट। उसका अर्थ होता है ऐसी जगह जहां से हम उस अनन्त सागर में उतर सकते हैं। जैनों का शब्द तीर्थंकर तीर्थ से बना है। उसका अर्थ है तीर्थ को बनाने वाला, और कोई अर्थ नहीं है उसका। असल में उसको ही तीर्थंकर कहा जा सकता है जिसने ऐसा तीर्थ निर्मित किया हो जहां साधारण जन खड़े हों, पाल खोलें, और यात्रा पर संलग्न हो जायं। जैनों ने उन्हें अवतार न कहकर तीर्थंकर कहा। और अवतार से बड़ी घटना तीर्थंकर है। क्योंकि परमात्मा, आदमी में अवतरित हो यह तो एक बात है, लेकिन आदमी परमात्मा में प्रवेश का तीर्थ बना ले, यह और भी बड़ी बात है।

जैन, परमात्मा में भरोसा करने वाला धर्म नहीं है, आदमी की सामर्थ्य में भरोसा करने वाला धर्म है। इसलिए तीर्थ और तीर्थंकर का जितना गहरा उपयोग जैन कर पाये उतना कोई भी नहीं कर पाया। क्योंकि यहां तो कोई ईश्वर की कृपा का उनको ख्याल नहीं है। ईश्वर कोई सहारा दे सकता है, इसका कोई अर्थ नहीं है। आदमी अकेला है, और आदमी को अपनी ही मेहनत से यात्रा करनी है। इसके दो रास्ते हो सकते हैं। एक तो यह कि एक एक आदमी अपनी अपनी मेहनत करे।

पर तब शायद कभी करोड़ों में एक आदमी उपलब्ध हो पायेगा। चप्पू से भी नाव चला कर यात्रा तो की ही जा सकती है, लेकिन तब कभी कोई एकाध पार हो पायेगा। लेकिन हवाओं का सहारा लेकर यात्रा बड़ी आसान होती है, यह दूसरा रास्ता है। तो क्या आध्यात्मिक हवाएँ संभव हैं? उसपर ही तीर्थ का सब कुछ निर्भर है। क्या यह संभव है कि जब महावीर जैसा एक व्यक्ति खड़ा होता है तो उसके आस-पास किसी अनजाने आयाम में कोई प्रवाह शुरू होता है? क्या वह किसी एक ऐसी दिशा में बहाव को निर्मित करता है कि बहाव में कोई पड़ जाय, तो बह जाय? असल में वही बहाव तीर्थ है। इस पृथ्वी पर तो उसके जो निशान हैं वह भौतिक निशान हैं, लेकिन वे स्थान न खो जायँ इसलिए उन भौतिक निशानों की बड़ी सुरक्षा की गयी है। मन्दिर बनाये गये हैं उन जगहों पर, या पैरों के चिन्ह बनाये गये हैं उन जगहों पर, या बड़ी बड़ी मूर्तियाँ खड़ी की गयी हैं उन जगहों पर। और उन जगहों को हजारों वर्षों तक वैसा का वैसा बनाये रखने की चेष्टा की गयी है। इंच भर भी वह जगह न हिल जाय, जहाँ घटना घटी है कभी! बड़े बड़े खज़ाने गड़ाये गये हैं; आज भी उनकी खोज चलती है। जैसे कि रूस के आखिरी जार का खजाना अमरीका में कहीं गड़ा है, जो पृथ्वी का सबसे बड़ा खजाना है और आज भी खोज चलती है। वह खजाना है, यह पक्का है, क्योंकि १९१७ को घटे बहुत दिन नहीं हुए। उसका इंच इंच हिसाब भी रखा गया है कि वह कहाँ होगा। लेकिन डिकोड नहीं हो पा रहा है, वह जो हिसाब रखा गया है उसको समझा नहीं जा पा रहा है कि एक्जैक्ट जगह क्या है। जैसे कि ग्वालियर में एक खजाना ग्वालियर फेमिली का है, जिसका फेमिली के पास सारा का सारा हिसाब है, लेकिन फिर भी जगह नहीं पकड़ी जा रही है कि वह जगह कहाँ है। वह डिकोड नहीं हो रहा है। नक्शा है—पर इस तरह के सब नक्शे गुप्त भाषा में ही निर्मित किये जाते हैं, अन्यथा कोई भी डिकोड कर लेगा। सामान्य भाषा में वे नहीं लिखे जाते।

इन तीर्थों का भी पूरा का पूरा सूचन है। इसलिए जरूरी नहीं है वह ठीक वही स्थान हो जैसा कि आम लोग समझ लेते हैं। आम लोग गड़बड़ न कर पायें इसलिए बड़े उपाय किये जाते हैं। वह मैं आपको कहूँ तो बहुत हैरानी होगी। जैसे कहीं आप जाते हैं और आपसे कहा जाता है कि यह जगह है जहाँ महावीर निर्वाण को उपलब्ध हुए। बहुत संभावना तो यह है कि वह जगह नहीं होगी। उससे थोड़ी हटकर वह जगह होगी जहाँ उनका निर्वाण हुआ। उस जगह पर तो प्रवेश उनको ही मिल सकेगा जो सच में ही पात्र हैं और उस यात्रा पर निकल सकते हैं। एक फाल्स जगह, एक झूठी जगह आम आदमी के लिए खड़ी की जायेगी, जहाँ तीर्थयात्री जाता रहेगा, नमस्कार करता रहेगा और लौटता रहेगा। असली जगह तो आम आदमी से बचाई जायेगी और उनको ही बतायी जायेगी जो सचमुच उस जगह आ गये हैं जहाँ से वह

सहायता लेने के योग्य हैं और उनको सहायता मिलनी चाहिए। ऐसी बहुत सी जगह हैं।

अरब में एक गाँव है जिसमें आज तक किसी सभ्य आदमी को प्रवेश नहीं मिल सका। आज तक, अभी भी! चाँद पर आप प्रवेश कर गये, लेकिन छोटे-से गाँव अल्कुफा में आज तक किसी यात्री को प्रवेश नहीं मिल सका। सच तो यह है कि आज तक यह ठीक नहीं हो सका कि वह जगह कहाँ है! और वह गाँव है, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं, क्योंकि हजारों साल से इतिहास उसकी खबर देता है। किताबें उसकी खबर देती हैं। उसके नक्शे हैं। वह गाँव बहुत प्रयोजन से छिपा कर रखा गया है। सूफियों में जब कोई बहुत गहरी अवस्था में होता है तभी उसको उस गाँव में प्रवेश मिलता है। उसकी सीक्रेट कुंजी है। अल्कुफा के गाँव में उसी सूफी को प्रवेश मिलता है जो ध्यान में उसका रास्ता खोज लेता है, अन्यथा नहीं। फिर तो उसे कोई रोक भी नहीं सकता। अन्यथा कोई उपाय नहीं है। नक्शे हैं, सब तैयारी है लेकिन फिर भी उसका पता नहीं लगता है कि वह कहाँ है। एक अर्थ में नक्शे थोड़े से झूठ हैं और भटकाने के लिए हैं। उन नक्शों को जो मान कर चलेगा वह अल्कुफा कभी नहीं पहुंच पायेगा। इसलिए बहुत यात्री योरोप के पिछले तीन सौ वर्षों में अल्कुफा को ढूँढ़ने गये। उनमें से कुछ तो कभी लौटे नहीं, मर गये। जो लौटे वह कभी पहुंचे नहीं। वह सिर्फ चक्कर मारकर वापस आ गये। सब तरह से कोशिश की जा चुकी है। पर उसकी कुंजी है। और वह कुंजी एक विशेष ध्यान है; उस विशेष ध्यान में ही अल्कुफा पूरा का पूरा प्रगट होता है। तब वह ध्यानी सूफी उठता है और चल पड़ता है। जब इतनी योग्यता हो तभी उस गाँव में गति है। वह एक सीक्रेट तीर्थ है जो इस्लाम से बहुत पुराना है। लेकिन उसको गुप्त रखा गया है। इन तीर्थों में भी जो जाहिर हैं, इन तीर्थों में भी जो जाहिर दिखायी पड़ते हैं, वह असली तीर्थ नहीं हैं। असली तीर्थ कहीं आस-पास होते हैं।

जैसे एक मजेदार घटना घटी। विश्वनाथ के मन्दिर में, काशी में, जब विनोबा हरिजनों को लेकर प्रवेश कर गये, तो करपात्री ने कहा कि कोई हर्ज नहीं, हम दूसरा मंदिर बना लेंगे, और दूसरा मंदिर बनाना शुरू कर दिया। वह मंदिर तो बेकार हो गया। साधारणतः देखने में विनोबा ज्यादा समझदार आदमी मालूम पड़ते हैं करपात्री से। असलियत ऐसी नहीं है। साधारणतः देखने में करपात्री निपट पुराण-पंथी, नासमझ, आधुनिक जगत और ज्ञान से वंचित मालूम पड़ते हैं। यह थोड़ी दूर तक सच है बात। लेकिन फिर भी जिस गहरी बात की वह ताईद कर रहे हैं उसके मामले में वह ज्यादा जानकार हैं। सच बात यह है कि विश्वनाथ का यह मन्दिर भी असली नहीं है, और वह जो दूसरा बनायेंगे वह भी असली नहीं होगा। असली

मंदिर तो तीसरा है। लेकिन उसकी जानकारी सीधी नहीं दी जा सकती। असली मन्दिर को छिपा कर रखना पड़ेगा, नहीं तो कभी भी कोई धर्म सुधारक और समाज सुधारक उसको भ्रष्ट कर सकता है। अभी जो विश्वनाथ का मन्दिर है खड़ा हुआ, इसको तो नष्ट किया जा चुका है। इसमें कोई उपाय नहीं है, इसमें कोई कठिनाई भी नहीं है, चाहे नष्ट कर दो। वह जो दूसरा बनाया जा रहा है वह भी 'फाल्स' है। लेकिन एक फाल्स बनाये ही रखना पड़ेगा, ताकि असली पर नजर न जाय। और असली को सदा छिपाकर रखना पड़ेगा। विश्वनाथ के मंन्दिर में भी प्रवेश की कुँजियाँ हैं, जैसे अल्कुफा में प्रवेश की कुँजियाँ हैं जिसमें किसी गृहस्थ ने कभी प्रवेश नहीं पाया और कभी पा नहीं सकेगा। सभी संन्यासी भी उसमें प्रवेश नहीं पाते। कभी कोई सौभाग्यशाली संन्यासी उसमें प्रवेश पाता है। उसे सब भाँति छिपा कर रखा गया है। उसके मंत्र हैं जिनके प्रयोग से उसका द्वार खुलेगा, नहीं तो द्वार नहीं खुलेगा। उसका बोध ही नहीं होगा, उसका ख्याल ही नहीं आयेगा। काशी में लोग जाकर इस फाल्स मन्दिर की पूजा, प्रार्थना करके वापस लौट आयेंगे। मगर इस मंदिर की भी अपनी एक सेंक्टिटी बन गयी यह यद्यपि झूठा था, लेकिन फिर भी लाखों वर्षों से उसको सच्चा मानकर चला जा रहा था। उसमें भी एक तरह की पवित्रता आ गयी।

सारे धर्मों ने कोशिश की है कि उनके मंदिर में या उनके तीर्थ में दूसरे धर्म का व्यक्ति प्रवेश न करे। आज हमें बेहूदी लगती है यह बात। हम कहेंगे, इससे क्या मतलब? लेकिन जिन्होंने व्यवस्था की थी, उनके कुछ कारण थे। यह करीब करीब मामला ऐसा ही है जैसे कि एटामिक इनर्जी की एक लेबोरेटरी हो और उस पर यह लिखा हो कि यहाँ सिवाय एटामिक साइंटिस्ट के कोई प्रवेश नहीं करेगा, तो हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। हम कहेंगे, बिल्कुल ठीक है। बिल्कुल दुरुस्त है। खतरे से खाली नहीं है दूसरे आदमी का भीतर प्रवेश करना! लेकिन यही बात हम मंदिर और तीर्थ के सम्बन्ध में मानने को राजी नहीं हैं, क्योंकि हमें यह ख्याल ही नहीं है कि मंदिर और तीर्थ की अपनी साइंस है। और वह मन्दिर या तीर्थ विशेष लोगों के प्रवेश के लिए है। इसे यों समझें कि एक आदमी बीमार पड़ा है और उसके चारों तरफ डाक्टर खड़े होकर बात करते हैं। मरीज सुनता है, समझ कुछ नहीं पाता। क्योंकि डाक्टर एक कोड लेंग्वेज में बात कर रहे हैं। वह लैटिन या ग्रीक शब्दों का उपयोग कर रहे हैं। मरीज सब सुन रहा है, लेकिन समझ नहीं सकता। क्योंकि मरीज के हित में नहीं है कि वह उसे समझे। ठीक इसी भाँति सारे धर्मों ने अपनी कोड लेंग्वेज विकसित की थी। उन धर्मों के गुप्त तीर्थ थे, उनकी गुप्त भाषाएँ थीं, उनके गुप्त शास्त्र थे। आज जिनको तीर्थ समझ रहे हैं उनमें भी बहुत कम संभावनाएँ हैं सही होने की।

वह जो सीक्रेट ट्रेडीशन है, उसे तो छिपाने की निरन्तर कोशिश की जाती है।

क्योंकि जैसे ही वह आम आदमी के हाथ में पड़ती है, उसके विकृत हो जाने का डर है। और आम आदमी उससे परेशान ही होगा, लाभ नहीं उठा सकता। जैसे सूफियों के गाँव अल्कुफा में अचानक आपको प्रवेश करवा दिया जाय, तो पागल हो जायेंगे। अल्कुफा की यह परम्परा है कि वहाँ अगर कोई आदमी आकस्मिक प्रवेश कर जाय तो पागल होकर लौटेगा। वह लौटेगा ही। इसमें किसी का कोई कसूर नहीं है। क्योंकि अल्कुफा इस तरह की पूरी की पूरी मनस्तरंगों से निर्मित है कि आपका मन उनको झेल नहीं पायेगा। आप विक्षिप्त हो जायेंगे। उतनी सामर्थ्य और पात्रता के बिना उचित नहीं है कि वहाँ प्रवेश हो। अल्कुफा के बाबत कुछ बातें ख्याल में ले लें तो और तीर्थों का ख्याल भी थोड़ा आ जायगा आपको।

जैसे अल्कुफा में नींद असंभव है। कोई आदमी सो नहीं सकता। तो स्वाभाविक है कि आप पागल हो ही जायेंगे जब तक कि आपने जागरण का गहन प्रयोग न किया हो। इसलिए सूफी फकीर की सबसे बड़ी जो साधना है वह रात्रि जागरण है। वे रात भर जागते रहेंगे। यह बहुत सोचने जैसी बात है। एक आदमी नब्बे दिन तक खाना न खाये तो भी सिर्फ दुर्बल होगा, मर नहीं जायेगा। पागल नहीं हो जायेगा। साधारण स्वस्थ आदमी आसानी से नब्बे दिन, बिना खाना खाये रह सकता है। लेकिन साधारण स्वस्थ आदमी इक्कीस दिन भी बिना सोये नहीं रह सकता। वह तीन महीने बिना खाये रह सकता है, तीन सप्ताह बिना सोये नहीं रह सकता। तीन सप्ताह तो बहुत ज्यादा कह रहा हूँ, एक सप्ताह भी बिना सोये रहना कठिन मामला है। पर अल्कुफा में नींद असंभव है। एक बौद्ध भिक्षुक को सीलोन से किसी ने मेरे पास भेजा। तीन साल से नींद खो गयी थी उसकी, तो उसकी जो हालत हो सकती थी हो गयी। पूरे वक्त हाथ-पैर कंपते रहते थे, पसीना छूटता रहता था और घबड़ाहट होती रहती थी। एक कदम भी उठाता था तो डरता था, भरोसा अपने ऊपर का सब खो गया था। नींद आती नहीं थी। बिल्कुल विक्षिप्त था और अजीब ही हालत थी। बहुत इलाज करवाया उसका कुछ फायदा हुआ नहीं; कोई ट्रैंकोला-इजर उसको सुला नहीं सकता था। गहरे से गहरे ट्रैंकोलाइजर दिये गये तो भी उसने कहा कि मैं बाहर से सुस्त होकर पड़ जाता हूँ लेकिन भीतर तो मुझे पता चलता ही रहता है कि मैं जगा हुआ हूँ। मैंने उसको कहा कि तुम्हें कभी नींद आयेगी नहीं, ट्रैंको-लाइजर से या और किसी उपाय से। तुम बुद्ध का अनापान सती योग तो नहीं कर रहे हो? क्योंकि बौद्ध भिक्षु के लिए वह अनिवार्य है। उसने कहा, वह तो मैं कर ही रहा हूँ। फिर मैंने कहा, अब तुम नींद का ख्याल छोड़ दो। अनापान सती योग का प्रयोग ऐसा है कि नींद खो जायेगी। मगर वह प्राथमिक प्रयोग है। और जब नींद खो जाय तब दूसरा प्रयोग तत्काल जोड़ा जाना चाहिए उसमें। अगर उसको ही करते रहोगे तो पागल हो जाओगे, मुश्किल में पड़ जाओगे। वह सिर्फ नींद हटाने

का प्रयोग है। एक दफा भीतर से नींद हट जाय तो आपके भीतर इतना फर्क पड़ता है चेतना में कि उस क्षण का उपयोग करके आगे गति की जा सकती है। तो मैंने पूछा, दूसरी प्रक्रिया तुझे मालूम है? उसने कहा, मुझे दूसरी किसी ने बतायी नहीं, बस अनापान सती किताब में लिखी हुई है, और सबको मालूम है। मगर खतरनाक है उसका किताब में लिखा जाना। क्योंकि उसको करके कोई भी आदमी नींद से वंचित हो सकता है। और जब नींद से वंचित हो जायेगा, तो दूसरी प्रक्रिया का कोई पता नहीं!

यही कारण था कि सदा बहुत सी चीजें गुप्त रखी गयीं। गुप्त रखने का और कोई कारण नहीं था। किसी से छिपाने का कोई और कारण नहीं था। जिनको हम लाभ पहुँचाना चाहते हैं उनको नुकसान पहुँच जाय तो फिर कोई अर्थ नहीं रह जाता उसका। इसी भाँति तीर्थ जरूर हैं, पर वास्तविक तीर्थ छिपे हुए और गुप्त हैं। करीब करीब निकट हैं उन्हीं तीर्थों के, जहाँ आपके 'फाल्स' तीर्थ खड़े हुए हैं। और वह जो फाल्स तीर्थ हैं, वह जो झूठे तीर्थ हैं, धोखा देने के लिए खड़े किये गये हैं। वह इसलिए कि ठीक स्थल पर कहीं गलत आदमी न पहुँच जाय। ठीक आदमी तो ठीक पहुँच ही जाता है। और हरेक तीर्थ की अपनी कुँजियाँ हैं। इसलिए अगर सूफियों का तीर्थ खोजना हो तो जैनियों के तीर्थ की कुँजी से नहीं खोजा जा सकता। अगर जैनियों का तीर्थ खोजना है तो सूफियों की कुँजी से नहीं खोजा जा सकता। सबकी अपनी कुँजियाँ हैं। उन कुंजियों का उपयोग करके तत्काल खोजा जा सकता है। मैं नाम नहीं लेता, किंतु किसी के तीर्थ की कुँजी आपको बताता हूँ।

एक विशेष यंत्र जैसे कि तिब्बतियों के होते हैं, जिसमें खास तरह की आकृतियाँ बनी होती हैं। वह यंत्र कुँजियाँ हैं। जैसे हिन्दुओं के पास भी यंत्र हैं, और हजार यंत्र हैं। आप घरों में भी 'लाभ शुभ' बना कर कभी कभी आँकड़े लिखकर यंत्र बना लेते हैं, बिना जाने कि किस लिए बना रहे हैं। क्यों लिख रहे हैं यह? आपको ख्याल भी नहीं हो सकता है कि आप अपने मकान में एक ऐसा यंत्र बनाये हुए हैं जो किसी तीर्थ की कुँजी हो सकती है। मगर बाप-दादे आपके बनाते रहे थे इसलिए आप बनाये चले जा रहे हैं। एक विशेष आकृति पर ध्यान करने से आपकी चेतना विशेष आकृति लेती है। हर आकृति आपके भीतर चेतना को आकृति देती है। जैसे कि आप बहुत देर तक खिड़की पर आँख लगाकर देखते रहें, फिर आँख बन्द करें तो खिड़की का निगेटिव चौखटा आपकी आँख के भीतर बन जाता है। वह निगेटिव है। अगर किसी यंत्र पर आप ध्यान करें तो उसके ठीक उल्टा निगेटिव चौखटा और निगेटिव आँकड़े आपके भीतर निर्मित होते हैं। वह, विशेष ध्यान के बाद आपको भीतर दिखायी पड़ना शुरू होता है। और जब वह दिखायी पड़ना शुरू हो जाय, तब विशेष आह्वान करने से तत्काल आपकी यात्रा शुरू हो जाती है।

नसरुद्दीन के जीवन में एक कहानी है। नसरुद्दीन का गधा खो गया है। वह उसकी संपत्ति है, उसका सब कुछ है। सारा गाँव खोज डाला, सारे गाँव के लोग खोज खोज कर परेशान हो गये, कहीं कोई पता नहीं चला। लोगों ने कहा, ऐसा मालूम होता है कि --यात्री निकल रहे हैं, तीर्थ का महीना है, गधा शायद इन्हीं तीर्थयात्रियों के साथ निकल गया है। गाँव में तो नहीं है, गाँव के आसपास भी नहीं है, सब जगह खोज डाला गया। नसरुद्दीन से लोगों ने कहा, अब तुम माफ करो, समझो कि खो गया। अब वह मिलेगा नहीं। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं आखिरी उपाय और कर लूँ। वह खड़ा हो गया, आँख उसने बन्द कर ली। थोड़ी देर में वह झुक गया चारों हाथ-पैर से, और उसने चलना शुरू कर दिया। वह उस मकान का चक्कर लगाकर, उस बगीचे का चक्कर लगाकर उस जगह पहुँच गया जहाँ एक खड्डे में उसका गधा गिर पड़ा था। लोगों ने कहा, नसरुद्दीन हद कर दी तुम्हारी खोज ने! ये तरकीब क्या है? उसने कहा, मैंने सोचा कि जब आदमी नहीं खोज सका, तो मतलब यह है कि गधे की कुँजी आदमी के पास नहीं है। मैंने सोचा कि मैं गधा बन जाऊँ। तो मैंने अपने मन में सिर्फ यही भावना की कि मैं गधा हो गया। अगर मैं गधा होता तो खोजने कहाँ जाता? फिर कब मेरे हाथ झुककर जमीन पर लग गये, और कब मैं गधे की तरह चलने लगा, मुझे कुछ पता नहीं। कैसे मैं चलकर वहाँ पहुँच गया, वह मुझे पता नहीं। जब मैंने आँख खोली तो मैंने देखा, मेरा गधा खड्डे में पड़ा हुआ है।

नसरुद्दीन तो एक सूफी फकीर है। यह कहानी कोई भी पढ़ लेगा और मजाक समझकर छोड़ देगा। लेकिन एक 'की' है इस छोटी सी कहानी में। इसमें एक 'कुंजी' है खोज की। खोजने का एक ढंग वह भी है। और आत्मिक अर्थों में तो ढंग वही है। तो प्रत्येक तीर्थ कुँजियाँ हैं, यंत्र हैं। तीर्थों का पहला प्रयोजन यह है कि आपको उस आविष्ठ धारा में खड़ा कर दें जहाँ धारा बह रही हो और आप उसमें बह जायें।

दूसरी बात, मनुष्य के जीवन में जो भी है वह सब पदार्थ से निर्मित है, सिर्फ उसकी आंतरिक चेतना को छोड़कर। लेकिन आंतरिक चेतना का तो आपको कोई पता नहीं है। पता तो आपको सिर्फ शरीर का है। और शरीर के सारे संबंध पदार्थ से हैं। थोड़ी सी अल्केमी समझ लें तो तीर्थ का दूसरा अर्थ ख्याल में आ जाय।

अल्केमिस्ट की प्रक्रियाएँ हैं, वह सब गहरी धर्म की प्रक्रियाएँ हैं। अब अल्केमिस्ट कहते हैं कि अगर पानी को एक बार भाप बनाया जाय फिर पानी बनाया जाय, फिर भाप बनाया जाय उसको, फिर पानी बनाया जाय,—ऐसा एक हजार बार किया जाय तो उस पानी में विशेष गुण आ जाते हैं जो साधारण पानी में नहीं हैं। इस बात को पहले मजाक समझा जाता था। क्योंकि इससे क्या फर्क पड़ेगा? आप एक

दफा पानी को डिस्टिल्ड कर लें, फिर दुबारा उस पानी को भाप बनाकर फिर डिस्टिल्ड कर लें, फिर तीसरी बार कर लें, फिर चौथी बार कर लें। इससे फर्क क्या पड़ेगा, पानी डिस्टिल्ड ही रहेगा। लेकिन अब विज्ञान ने स्वीकार किया है कि इसमें क्वालिटी बदलती है। एक हजार बार उपयोग करने पर उस पानी में विशिष्टता आ जाती है। वह कहाँ से आती है यह अब तक साफ नहीं है। लेकिन वह पानी विशेष हो जाता है। लाख बार भी उसको करने के प्रयोग हैं और तब वह और विशेष हो जाता है। आदमी के शरीर में हैरान होंगे जानकर आप, कि पचहत्तर प्रतिशत पानी है। थोड़ा बहुत नहीं, पचहत्तर प्रतिशत ! उस पानी का केमिकल ढंग वही है, जो समुद्र के पानी का है। इसलिए नमक के बिना आप मुश्किल में पड़ जाते हैं। आपके शरीर के भीतर जो पानी है उसमें नमक की मात्रा उतनी ही होनी चाहिए जितनी समुद्र के पानी में है। अगर इस पानी की व्यवस्था को भीतर बदला जा सके तो आपकी चेतना की व्यवस्था को बदलने में सुविधा होती है। तो लाख बार डिस्टिल्ड किया हुआ पानी अगर आपको पिलाया जा सके तो आपके भीतर बहुत सी वृत्तियों में एकदम परिवर्तन होगा। यह अल्केमिस्ट हजारों प्रयोग ऐसे कर रहे थे। एक लाख दफा पानी को डिस्टिल्ड करने में सालों लग जाते हैं और एक आदमी चौबीस घण्टे यही काम कर रहा था। इसके दोहरे परिणाभ होते हैं। एक तो उस आदमी का चंचल मन ठहर जाता था क्योंकि यह ऐसा काम था, जिसमें चंचल होने का कोई उपाय नहीं था। रोज सुबह से साँझ तक वह यही कर रहा था। थक के मर जाता था, दिन भर उसने किया क्या ? हाथ में कुल इतना है कि पानी को उसने पच्चीस दफा डिस्टिल्ड कर दिया। वर्षों बीत जाते, वह आदमी पानी ही डिस्टिल्ड करता रहता। हमें सोचने में कठिनाई होगी, क्योंकि थोड़े दिन में हम ऊब जायेंगे। ऊबेंगे तो हम बन्द कर देंगे। यह मजे कि बात है कि जहाँ भी ऊब आ जाय वहीं टर्निंग प्वाइंट होता है। अगर आपने बन्द कर दिया तो आप अपनी पुरानी स्थिति में लौट जाते हैं, और अगर जारी रखा तो आप नयी चेतना को जन्म दे लेते हैं। जैसे रात को आपको नींद आती है। रोज आप दस बजे सोते हैं, दस बजे नींद आने लगेगी। अगर आप टिक जायँ दस बजे और सोने से मना कर दें, तो आप पायेंगे कि आधा घण्टे में होना तो यह चाहिए था कि नींद और जोर से आती, लेकिन आधा घण्टे में यह होगा कि अचानक आप पायेंगे कि सुबह से भी ज्यादा फ्रेश हो गये हैं। और अब नींद आना मुश्किल हो जायेगा। वह टर्निंग प्वाइंट था, जहाँ से आप अपनी स्थिति में वापस गिर सकते थे, अगर सो गये होते तो। लेकिन आपने कंटीन्यु रखा। आपने भीतर की व्यवस्था तोड़ दी। तो शरीर से नयी शक्ति वापस आ गयी। शरीर ने देख लिया कि आप सोने की तैयारी नहीं दिखा रहे हैं, जागना ही पड़ेगा। तो शरीर के पास जो रिजर्वायर है, जहाँ वह शक्ति संरक्षित रखता है, जरूरत के वक्त के लिए, वह

उसने छोड़ दी और आप ताजे हो गये। इतने ताजे जितने आप सुबह भी नहीं होते।

अब एक आदमी ऊब गया है, एक हजार दफे पानी को बदल चुका है। कहते हैं, उसका गुरु कह रहा है, लाख दफे बदलना है चाहे दस साल लगें, पन्द्रह साल लगें, कि कितने साल लगें। वह ऊब गया है, लेकिन बदले चला जा रहा है, बदले चला जा रहा है। एक घड़ी आयेगी, जब कि उसे ऐसा लगेगा कि अब अगर मैंने एक दफा और बदला तो मैं गिर कर मर ही जाऊँगा। अब बहुत हो गया। इसको अब मैं न सह सकूँगा, लेकिन उसका गुरु कह रहा है कि अभी भी बदले जाओ। और वह बदलता ही चला जाता है, लौटता नहीं है। यह पानी तो इधर परिवर्तित हो ही रहा है, उसकी चेतना भीतर परिवर्तित होती है। और फिर इस विशिष्ट पानी के प्रयोग से चेतना में परिणाम होते हैं। जैसे गंगा का पानी, —अभी तक साफ नहीं हो सका है वैज्ञानिक को कि कैसे उसमें बहुत सी विशेषताएँ हैं, जो दुनिया की किसी नदी के पानी में नहीं हैं। माना कि दुनिया की नदियों के पानी में न हों, लेकिन ठीक गंगा की बगल से भी जो नदियाँ निकलती हैं उनके पानी में भी नहीं हैं। ठीक उसी पहाड़ से जो नदी निकलती है उसके पानी में भी नहीं। एक ही बादल दोनों नदियों में पानी गिराता हैं और एक ही पहाड़ का बर्फ पिघलकर दोनों नदियों में जाता है, फिर भी उस पानी में वह क्वालिटी नहीं है जो गंगा के पानी में है।

अब इस बात को सिद्ध करना मुश्किल होगा। कुछ बातें हैं जिनको सिद्ध करना एकदम मुश्किल है। लेकिन पूरी की पूरी गंगा अल्केमिस्ट का प्रयोग है, पूरी गंगा ! इसको सिद्ध करना मुश्किल होगा, मैं आपसे कहता हूँ। लेकिन पूरी की पूरी गंगा साधारण नदी नहीं है। पूरी की पूरी गंगा को अल्केमिकली तैयार करने की चेष्टा की गयी है। और इसलिए हिन्दुओं ने सारे तीर्थ अपने, गंगा के किनारे निर्मित किये। एक महान प्रयोग था गंगा को एक विशिष्टता देने का, जो कि दुनिया की किसी नदी में नहीं है। अब तो केमिस्ट भी राजी हैं कि गंगा का पानी विशेष है। किसी नदी का पानी रख लें, सड़ जायेगा, गंगा का पानी वर्षों नहीं सड़ेगा। सड़ेगा ही नहीं, सड़ता ही नहीं। इसलिए गंगा-जल आप मजे में रख सकते हैं। उसके पास आप दूसरी किसी बोतल में पानी भरके रख दें, वह पन्द्रह दिन में सड़ जायेगा। पर गंगा जल अपनी पवित्रता और शुद्धता को पूरा कायम रखेगा। किसी जल भी में, आप लाशें डाल दें, वह नदी गंदी हो जायेगी। गंगा कितनी ही लाशों को हजम कर जायेगी और कभी गन्दी नहीं होगी। एक और हैरानी की बात है कि हड्डी साधारणतः गलती नहीं, पर गंगा में गल जाती है। गंगा पूरा पचा डालती है, कुछ भी नहीं बचता उसमें। सभी लीन हो जाता है पंच तत्व में। इसलिए गंगा में फेंकने का

लाश को, आग्रह बना। क्योंकि बाकी सब जगह से पूरे पंच तत्वों में लीन होने में सैकड़ों, हजारों और कभी लाखों वर्ष लग जाते हैं। गंगा का समस्त तत्वों में वापस लौटा देने के लिए बिल्कुल केमिकल काम है। वह निर्मित इसलिए की गयी, वह पूरी की पूरी नदी साधारण पहाड़ से बही हुई नदी नहीं है। बहाई गयी नदी है। पर वह हमारे ख्याल में नहीं आ सकता। और गंगोत्री बहुत छोटी-सी जगह हैं, जहाँ से गंगा बहती है। बड़े मजे की बात यह है कि जहाँ गंगोत्री को यात्री नमस्कार करके लौट आते हैं, वह फाल्स गंगोत्री है। वह सही गंगोत्री नहीं है। सही को सदा बचाना पड़ता है। वह सिर्फ शो है, वह सिर्फ दिखावा है जहाँ से यात्री को लौटा दिया जाता है, और यात्री नमस्कार करके लौट आता है। सही गंगोत्री को तो हजारों साल से बचाया गया है। और इस तरह निर्मित किया गया है कि वहाँ साधारणतः पहुँचना संभव नहीं है। सिर्फ एस्ट्रल ट्रावेलिंग हो सकती है सही गंगोत्री पर, सशरीर पहुँचना संभव नहीं है।

जैसा मैंने कहा कि सूफियों का अल्कुफा है। इसमें सशरीर पहुँचा जा सकता है। इसलिए कभी कोई भूल-चूक से पहुँच सकता है। यानी चाहे कोई खोजने वाला न पहुँच सके, क्योंकि खोजने वाले को आप धोखा दे सकते हैं, गलत नकशे पकड़ा सकते हैं। लेकिन जो खोजने नहीं निकला है, अकारण पहुँच जाय तो उसको आप नहीं धोखा दे सकते। वह पहुँच सकता है। लेकिन गंगोत्री पर पहुँचने के लिए, सिर्फ सूक्ष्म शरीर में ही पहुँचा जा सकता है, इस शरीर में से नहीं पहुँचा जा सकता। इस तरह का सारा इन्तजाम है। गंगोत्री का दर्शन सशरीर कभी नहीं हो सकता। वह एस्ट्रल ट्रावलिंग है। ध्यान में इस शरीर को यहीं छोड़कर यात्रा की जा सकती है। और जब कोई गंगोत्री को देख ले, एस्ट्रल ट्रावेलिंग में, तब उसको पता चले कि इस गंगा का पूरा राज़ क्या है? इसलिए मैंने कहा कि सिद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। जिस जगह से वह गंगा बह रही है वह जगह बहुत ही विशिष्ट रूप से निर्मित है। और वहाँ से जो पानी प्रवाहित हो रहा है वह अल्केमिकल है। उस अल्केमिकल धारा के दोनों तरफ हिन्दुओं ने अपने तीर्थ खड़े किये।

आप यह जानकर हैरान होंगे कि हिन्दुओं के सब तीर्थ नदी के किनारे हैं और जैनों के सब तीर्थ पहाड़ों पर हैं। जैन उस पहाड़ पर ही तीर्थ बनायेंगे जो कि बिल्कुल रूखा हो। जिस पर हरियाली भी न हो। हरियाली वाले पहाड़ पर वह न चढ़ेंगे। हिमालय जैसा बढ़िया पहाड़ जैनों ने बिल्कुल छोड़ दिया। अगर पहाड़ ही चुनना था तो हिमालय से बेहतर कुछ भी न था। पर हिमालय को बिल्कुल छोड़ दिया। उन्हें सूखा पहाड़ चाहिए, खुला पहाड़ चाहिए, कम से कम हरियाली हो,

कम से कम पानी हो, क्योंकि जैन जिस अल्केमी के प्रयोग कर रहे थे वह अल्केमी शरीर के भीतर जो अग्नि तत्व है, उससे संबंधित है। और हिन्दू जो प्रयोग कर रहे थे वह अल्केमी शरीर के भीतर जो पानी तत्व है, उससे संबंधित है। दोनों की अपनी कुँजियाँ हैं, और अलग हैं। हिन्दू तो सोच ही नहीं सकता कि नदी के बिना, कैसे तीर्थ हो सकता हैं? नदी के बिना तीर्थ होने का कोई अर्थ हिन्दुओं की समझ में नहीं आ सकता। हरियाली और सौंदर्य, और इन सबके बिना तीर्थ हो सकना, उसकी समझ के बाहर की बात है। वह जिस तत्व पर काम कर रहा था, वह जल है। इसलिये उसके सब तीर्थ जल आधारित हैं, जल से निर्मित हैं। जैन जो मेहनत कर रहा था उसका मूल तत्व अग्नि है, इसलिए तप पर बहुत जोर है। इधर हिन्दू शास्त्र और हिन्दू साधु का जोर बहुत भिन्न है। हिन्दू साधना का सूत्र यह है कि संन्यासी को, योगी को दूध, घी, दही, इनकी पर्याप्त मात्रा का उपयोग करना चाहिए। ताकि भीतर आर्द्रतार हे। सूखापन न आ जाय, भीतर सूखापन आ जायेगा तो उनकी 'की' काम नहीं कर सकेगी। वह आर्द्र रहे। जैन की सारी की सारी चेष्टा यह है कि भीतर सब सूख जाय, आर्द्रता रहे हो नहीं। इसलिए अगर जैन मुनि ने स्नान भी बन्द कर दिया, तो उसके कारण हैं। उतना भी पानी का उपयोग नहीं करना है। अब आज वह सिवाय गन्दगी के कुछ नहीं दिखायी पड़ेगा। यह जैन मुनि भी नहीं बता सकता कि वह किस लिए नहीं नहा रहा है? काहे के लिए परेशान है वह बिना नहाये, या क्यों चोरी से स्पंज कर रहा है? लेकिन जल में उनकी 'की' नहीं है, उनकी कुँजी नहीं है। पंच महाभूतों में उनकी कुँजी है—वह है तप, वह है अग्नि। तो सब तरफ से भीतर अग्नि को जगाना है। ऊपर से पानी डाला तो उस अग्नि को जगाने में बाधा पड़ेगी। इसलिए सूखे पहाड़ पर जहाँ हरियाली नहीं, पानी नहीं, जहाँ सब तप्त है, वहाँ जैन साधक खड़ा है। वह धीरे धीरे पत्थरों में ही खड़ा रहेगा। जहाँ सब बाहर भी सूखा हुआ है।

दुनिया में सब जगह उपवास हैं लेकिन सिर्फ जैनों को छोड़कर उपवास में पानी लेने की मनाही कोई नहीं करेगा। सब दुनिया के उपवास में, सब चीजें बन्द कर दो, पानी जारी रखो। सिर्फ जैन हैं, जो उपवास में पानी का भी निषेध करेंगे, कि पानी भी नहीं! साधारण गृहस्थ के लिए भी कहेंगे कि और नहीं हो सकता तो कम से कम रात का पानी त्याग कर दो। साधारण गृहस्थ यही समझता है कि रात्रि का पानी इसलिए त्याग करवाया जा रहा है कि कहीं पानी में कोई कीड़ा-मकोड़ा न मिल जाय, कोई फर्क न हो जाय। पर उससे कोई लेना-देना नहीं। असल में अग्नितत्व की कुँजी के लिए तैयारी करवायी जा रही है। और बड़े मजे की बात है कि अगर पानी कम लिया जाय,—अगर कम से कम, न्यूनतम, जितना महावीर की चेष्टा है उतना पानी लिया जाय, तो ब्रह्मचर्य के लिए अनूठी सहायता मिलती है। क्योंकि वीर्य

सूखना शुरू हो जाता है। और अंतर अग्नि के जलाने के, जो इसके संयुक्त प्रयोग हैं वह बिल्कुल सुखा डालते हैं। जरा सी भी आर्द्रता वीर्य को प्रवाहित करती है। यह उनकी कुँजी है। जैनों ने सारे के सारे अपने तीर्थों का निर्माण नदियों से दूर किया। फिर नकल में कुछ पीछे के तीर्थ खड़े कर लिये, उनका कोई प्रयोजन नहीं है, वह अथेंटिक नहीं है।

जैन अथेंटिक तीर्थ पहाड़ पर होगा। हिन्दू अथेंटिक तीर्थ नदी के किनारे होगा, हरियाली में होगा, सुन्दर जगह होगा। जैन जो भी पहाड़ चुनेंगे वह कई हिसाब से कुरूप होगा, क्योंकि पहाड़ का सौंदर्य उसकी हरियाली के साथ खो जाता है। वे स्नान नहीं करेंगे, दतुअन नहीं करेंगे। इतना कम पानी का उपयोग करना है कि दतुअन भी नहीं करेंगे। अगर यह पूरी बात समझ ली जाय उनकी, तो फिर उनके जो सूत्र हैं वह कारगर होंगे, नहीं तो नहीं कारगर होंगे। उन सूत्रों की साधना से भीतर की अग्नि भड़कती है, और भीतर की अग्नि के भड़काने का यह निगेटिव उपाय है कि पानी का संतुलन तोड़ दिया जाय। इन सारे तत्वों का, भीतर एक बैलेंस है। इस मात्रा में भीतर पानी, इस मात्रा में अग्नि, इन सबका बैलेंस है। अगर आपको एक तत्व से यात्रा करनी है तो बैलेंस तोड़ देना पड़ेगा और विपरीत से तोड़ना पड़ेगा। तो जो भी अग्नि पर मेहनत करेगा वह पानी का दुश्मन हो जायेगा। क्योंकि पानी जितना कम हो जाय उसके भीतर, उतना उस अग्नि का संचार हो जाय।

गंगा एक अल्केमिक प्रयोग है, एक बहुत गहरा रासायनिक प्रयोग है। इसमें स्नान करके व्यक्ति तीर्थ में प्रवेश करेगा। इसमें स्नान के साथ ही उसके शरीर के भीतर के पानी का जो तत्व है वह रूपांतरित होता है। वह रूपांतरण थोड़ी देर ही टिकेगा। लेकिन उस थोड़ी देर में, अगर ठीक प्रयोग किये जायँ तो गति शुरू हो जायेगी। रूपांतरण तो थोड़ी देर में विदा हो जायेगा लेकिन गति शुरू हो जायेगी। और ध्यान रहे, जिसने एक बार गंगा के पानी को ही पीकर जीना शुरू कर दिया, वह फिर दूसरा पानी नहीं पी सकेगा। फिर बहुत कठिनाई हो जायगी। क्योंकि दूसरा पानी फिर उसके लिए हजार तरह की अड़चनें पैदा करेगा। और भी बहुत जगह इस तरह गंगा जैसी गंगा पैदा करने की कोशिशें की गयीं लेकिन कोई भी सफल नहीं हुई। बहुत नदियों में प्रयोग किये हैं, वह सफल नहीं हो सके। क्योंकि पूरी कुँजियाँ खो गयी हैं। लोगों को थोड़ा ख्याल भले ही होगा कि क्या किया गया होगा। पर मैं नहीं जानता, कितने लोगों को ख्याल है। शायद ही दो-चार आदमी हों, जिनको ख्याल हो कि अल्केमी का इतना बड़ा प्रयोग हो सकता है।

गंगा में स्नान, तत्काल प्रार्थना या पूजा, या मंदिर में प्रवेश, या तीर्थ में प्रवेश, यह पदार्थ का उपयोग है अन्तर-यात्रा के लिए। सब तीर्थ बहुत ख्याल से बनाये गये

हैं। अब जैसे कि मिस्र में पिरामिड हैं। वे मिस्र में पुरानी खो गयी सभ्यता के तीर्थ हैं। और एक बड़ी मजे की बात है कि इन पिरामिड्स के अन्दर। पिरामिड जब बने तब, वैज्ञानिकों का ख्याल है, उस काल में इलेक्ट्रिसिटी हो नहीं सकती। आदमी के पास बिजली नहीं हो सकती। बिजली का आविष्कार उस वक्त कहाँ? कोई दस हजार वर्ष पुराना पिरामिड है, कोई बीस हजार वर्ष पुराना पिरामिड है। तब बिजली का तो कोई उपाय नहीं था। और इनके अन्दर इतना अन्धेरा है कि उस अंधेरे में जाने का कोई उपाय नहीं। अनुमान यह लगाया जा सकता है कि लोग मशाल ले जाते हों, या दिये ले जाते हों। लेकिन धुएँ का एक भी निशान नहीं है इतने पिरामिड्स में कहीं। इसलिए बड़ी मुश्किल है। एक छोटा-सा दिया घर में जला-इए तो पता चल जाता है। अगर लोग मशालें भीतर ले गये हों तो इन पत्थरों पर कहीं न कहीं धुएँ के निशान तो होनें चाहिए। रास्ते इतने लंबे, इतने मोड़ वाले हैं, और गहन अंधकार है! तो दो ही उपाय हैं, या तो हम मानें कि बिजली रही होगी, लेकिन बिजली की किसी तरह की फिटिंग का कहीं कोई निशान नहीं है। बिजली पहुँचाने का कुछ तो इन्तजाम होना चाहिए। दूसरा, आदमी सोच सकता है—तेल, घी के दियों या मशालों का। पर उन सबसे किसी न किसी तरह के धुएँ के निशान पड़ते हैं, जो कहीं भी नहीं हैं। फिर, उनके भीतर आदमी कैसे जाता रहा है? कोई कहे—नहीं जाता रहा होगा, तो इतने रास्ते बनाने की कोई जरूरत नहीं है। पर सीढ़ियाँ हैं, रास्ते हैं, द्वार हैं, दरवाजे हैं। अन्दर चलने-फिरने का बड़ा इन्तजाम है। एक एक पिरामिड में बहुत से लोग प्रवेश कर सकते हैं। बैठने के स्थान हैं अन्दर। यह सब किसलिए होंगे? यह पहेली बनी रह गयी है, और साफ नहीं हो पायेगी कभी भी। क्योंकि पिरामिड की समझ नहीं है साफ, कि ये किसलिए बनाये गये हैं? लोग समझते हैं, किसी सम्राट का फितूर होगा, कुछ और होगा। लेकिन ये तीर्थ हैं। और इन पिरामिड्स में प्रवेश का सूत्र ही यही है कि जब कोई अन्तर-अग्नि पर ठीक से प्रयोग करता है तो उसका शरीर आभा फेंकने लगता है। और तब वह अंधेरे में प्रवेश कर सकता है। तो, न तो यहाँ बिजली उपयोग की गयी हैं, न यहाँ कभी दिये उपयोग किये गये हैं, न कभी मशालें उपयोग की गयी है, सिर्फ शरीर की दीप्ति उप-योग की गयी है। लेकिन वह शरीर की दीप्ति अग्नि के विशेष प्रयोग से ही होती है। इनमें प्रवेश ही वही करेगा, जो इस अंधकार में मजे से चल सके। वह उसकी कसौटी भी है, परीक्षा भी है, और उसको प्रवेश का हक भी है। वह हकदार भी है।

जब पहली दफा १९०५ या १० में एक एक पिरामिड खोजा जा रहा था, तो जो वैज्ञानिक उस पर काम कर रहा था उसका सहयोगी अचानक खो गया। बहुत तलाश की गयी, कुछ पता न चला। यही डर हुआ कि वह किसी गलियारे में, अन्दर है। बहुत प्रकाश और सर्चलाइट ले जाकर खोजा। वह कोई चौबीस घण्टे खोया

रहा। चौबीस घण्टे बाद, कोई रात दो बजे वह भागा हुआ आया करीब करीब पागल हालत में। उसने कहा, मैं टटोल कर अन्दर जा रहा था। कहीं मुझे दरवाजा मालूम पड़ा, मैं अन्दर गया और फिर ऐसा लगा कि पीछे कोई चीज बन्द हो गयी। मैंने लौटकर देखा तो दरवाजा तो बन्द हो चुका था! जब मैं आया तब खुला था, पर दरवाजा भी नहीं था कोई, सिर्फ खुला था। जब मैं अन्दर गया तो जैसे कोई चट्टान सरक कर बन्द हो गयी। फिर मैं बहुत चिल्लाया, लेकिन कोई उपाय नहीं था। फिर इसके सिवाय कोई उपाय नहीं था कि मैं और आगे चला जाऊँ, और मैं ऐसी अद्भुत चीजें देखकर लौटा हूँ, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। वह इतनी देर गुम रहा, यह पक्का है, वह इतना परेशान लौटा है, यह पक्का है; लेकिन जो बातें वह कह रहा है वह भरोसे की नहीं हैं, कि ऐसी चीजें होंगी। बहुत खोज-बीन की गयी उस दरवाजे की, लेकिन दरवाजा दुबारा नहीं मिल सका। न तो वह यह बता पाया कि कहाँ से प्रवेश किया, न वह यह बता पाया कि वह कहाँ से निकला। तो समझा गया कि या तो वह बेहोश हो गया, या उसने कहीं सपना देखा, या वह कहीं सो गया। और कुछ समझने का चारा नहीं था। लेकिन जो चीजें उसने कहीं थीं वह सब नोट कर ली गयीं, —उस साइकिक अवस्था में, स्वप्नवत अवस्था में जो जो उसने वहाँ देखीं। फिर खुदाई में कुछ पुस्तकें मिलीं जिनमें उन चीजों का वर्णन भी मिला, तब बहुत मुसीबत हो गयी। उस वर्णन से लगा कि वह चीजें किसी कमरे में वहाँ बन्द हैं, लेकिन उस कमरे का द्वार किसी विशेष मनोदशा में खुलता है। अब इस बात की सम्भावना है कि वह एक सांयोगिक घटना थी कि इसकी मनोदशा वैसी रही हो। क्योंकि इसे तो कुछ पता नहीं था, लेकिन द्वार खुला अवश्य।

तो जिन गुप्त तीर्थों की मैं बात कर रहा हूँ उनके द्वार हैं, उन तक पहुँचने की व्यवस्थाएँ हैं, लेकिन उन सबके आंतरिक सूत्र हैं। इन तीर्थों में ऐसा सारा इन्तजाम है कि जिनका उपयोग करके चेतना गतिमान हो सके। जैसे कि पिरामिड्स के सारे कमरे, उनका आयतन एक हिसाब में है। कभी आपने ख्याल किया, कहीं छप्पर बहुत नीचा हो, यद्यपि आपके सिर को नहीं छू रहा हो, और यही छप्पर थोड़ा सरक कर नीचे आने लगे। हम को दबायेगा नहीं, हम से अभी दो फीट ऊँचा है, लेकिन हमें भास होगा कि हमारे भीतर कोई चीज दबने लगी। जब नीचे छप्पर में आप प्रवेश करते हैं, तो आपके भीतर कोई चीज सिकुड़ती है। और आप जब एक बड़े छप्पर के नीचे प्रवेश करते हैं तो आपके भीतर कोई चीज फैलती है। कमरे का आयतन इस ढंग से निर्मित किया जा सकता है, ठीक उतना किया जा सकता है जितने में आपको ध्यान आसान हो जाय। सरलतम हो जाय ध्यान आपको, उतना आयतन निर्मित किया जा सकता है, उतना आयतन खोज लिया गया था। उस आयतन का उपयोग किया जा सकता है आपके भीतर सिकुड़ने और फैलने के लिए। उस कमरे

के भीतर रंग, उस कमरे के भीतर गंध, उस कमरे के भीतर ध्वनि इन सबका इन्तजाम किया जा सकता है जो आपके ध्यान के लिए सहयोगी हो जाय।

सब तीर्थों का अपना संगीत था। सच तो यह है कि सब संगीत, तीर्थों में पैदा हुए। और सब संगीत साधकों ने पैदा किये। सब संगीत किसी दिन मन्दिर में पैदा हुए, सब नृत्य किसी दिन मन्दिर में पैदा हुए। सब सुगंध पहली दफा मन्दिर में उपयोग की गयी। एक दफा जब यह बात पता चल गयी कि संगीत के माध्यम से कोई व्यक्ति परमात्मा की तरफ जा सकता है, तो संगीत के माध्यम से परमात्मा के विपरीत भी जा सकता है, यह भी ख्याल में आ गया। और तब बाहर दूसरे संगीत खोजे गये। किसी गंध से जब कि परमात्मा की तरफ जाया जा सकता है, तो विपरीत किसी गंध से कामुकता की तरफ जाया जा सकता है, वे गंधें भी खोज ली गयीं। किसी विशेष आयतन में ध्यानस्थ हो सकता है तो किसी विशेष आयतन में ध्यान से रोका जा सकता है। वह भी खोज लिया गया। जैसे अभी चीन में ब्रेन वाश के लिए जहाँ कैदियों को खड़ा करते हैं, उस कोठरी का एक विशेष आयतन है। उस विशेष आयतन में ही खड़ा करते हैं। और उन्होंने अनुभव किया कि उस आयतन में कमी-बेशी करने से ब्रेन वाश करने में मुसीबत पड़ती है। एक निश्चित आयतन, हजारों प्रयोग करके तय हो गया कि इतनी ऊँची, इतनी चौड़ी, इतने आयतन की कोठरी में कैदी को खड़ा कर दो तो कितनी देर में डिटीरीओरेशन हो जायेगा, कितनी देर में खो देगा वह अपने दिमाग को। फिर उसमें एक विशेष ध्वनि भी पैदा करो तो और जल्दी खो देगा। खास जगह उसके मस्तिष्क पर हेमरिंग करो तो और जल्दी खो देगा। वे कुछ नहीं करते, एक मटका ऊपर रख देते है और एक एक बूँद पानी उसकी खोपड़ी पर टपकता रहता है। उसकी अपनी लय है, रिदिम है। बस टिप-टिप टिप-टिप, वह पानी सिर पर टपकता रहता है। चौबीस घण्टे वह आदमी खड़ा है, बैठ भी नहीं सकता, हिल भी नहीं सकता, आयतन इतना है कोठरी का। वह खड़ा रहेगा और मस्तिष्क में वह टिप-टिप पानी गिरता रहेगा। आधा घण्टा पूरे होते होते, तीस मिनट पूरे होते होते सिवाय टिप-टिप की आवाज के कुछ नहीं बचेगा और तब आवाज इतनी जोर से मालूम होने लगेगी, जैसे पहाड़ गिर रहा हो। अकेली आवाज रह जायेगी उस आयतन में और चौबीस घण्टे में वह आपके दिमाग को अस्त-व्यस्त कर देगी। चौबीस घण्टे के बाद जब आपको बाहर निकालेंगे तो आप वही आदमी नहीं होंगे! उन्होंने आपको सब तरह से तोड़ दिया होगा।

ये सारे के सारे प्रयोग पहली दफा तीर्थों में खोजे गये, मन्दिरों में खोजे गये, जहाँ से आदमी को सहायता पहुँचायी जा सके। मन्दिर के घण्टे हैं, मंदिर की ध्वनियाँ हैं, धूप है, गन्ध है, फूल है, सब नियोजित था। और एक तारतम्य रखने की कोशिश

की गयी। उसकी कंटीन्युटी न टूटे, बीच में कहीं कोई व्यवधान न पड़े, अहर्निश धारा उसकी जारी रखी जाती रही। जैसे सुबह इतने वक्त आरती होगी, इतनी देर चलेगी, इस मंत्र के साथ होगी; दोपहर आरती होगी, इतनी देर चलेंगी, इस मंत्र के साथ होगी। साँझ आरती होगी, इतनी देर होगी, इस मंत्र के साथ चलेगी। यह क्रम ध्वनियों का उस कोठरी में गूंजता रहेगा। पहला क्रम टूटे, उसके पहले दूसरा रिफ्लेक्स हो जाये। ये हजारों साल तक चलेगा। जैसा मैंने कहा, पानी को अगर लाख दफा पुनः पुनः पानी बनाया जाय भाप बनाकर, तो जैसे उसकी क्वालिटी बदलती है अल्केमी के हिसाब से, उसी प्रकार एक ध्वनि को लाखों दफा पैदा किया जाय एक कमरे में, तो उस कमरे की पूरी तरंग, पूरी गुणवत्ता बदल जाती है। उसकी पूरी क्वालिटी बदल जाती है। उसके बीच व्यक्ति को खड़ा कर देना, उसके पास खड़ा कर देना, उसके रूपांतरित होने के लिए आसानी जुटा देगा; और चूंकि हमारा सारा का सारा व्यक्तित्व पदार्थ से निर्मित है—पदार्थ में जो भी फर्क होते हैं वह हमारे व्यक्तित्व को बदलने लगते हैं। आदमी इतना बाहर है कि पहले बाहर से ही फर्क उसको आसान पड़ते हैं, भीतर के फर्क तो पहले बहुत कठिन पड़ते हैं। दूसरा उपाय था पदार्थ के द्वारा सारी ऐसी व्यवस्था दे देना कि आपके शरीर को जो जो सहयोगी हो, वह हो जाय।

तीसरी बात एक और थी। यह हमारा भ्रम ही है आमतौर से कि हम अलग अलग व्यक्ति हैं,— यह बड़ा थोथा भ्रम है। यहाँ हम इतने लोग बैठे हैं, अगर हम शान्त होकर बैठें तो यहाँ इतने लोग नहीं रह जाते, एक ही व्यक्तित्व रह जाता है। एक शांति का व्यक्तित्व रह जाता है। और हम सब की चेतनाएँ एक दूसरे में तरंगित और प्रवाहित होने लगती हैं। तीर्थ 'मास एक्सपेरीमेन्ट' है। एक वर्ष में विशेष दिन, करोड़ों लोग एक तीर्थ पर इकट्ठे हो जायेंगे; एक ही आकांक्षा, एक ही अभीप्सा से सैकड़ों मील की यात्रा करके आ जायेंगे। वे सब एक विशेष घड़ी में, एक विशेष तारे के साथ, एक विशेष नक्षत्र में एक जगह इकट्ठे हो जाते हैं। इसमें पहली बात समझ लेने की यह है, कि यह करोड़ों लोग इकट्ठा होकर एक अभीप्सा, एक आकांक्षा, एक प्रार्थना से, एक धुन करते हुए आ गये हैं, यह एक पूल बन गया है चेतना का। अब यहाँ व्यक्ति नहीं है। अगर कुम्भ में देखें तो व्यक्ति दिखायी नहीं पड़ता। वहाँ भीड़ है, निपट भीड़, जहाँ कोई चेहरा नहीं है। चेहरा बचेगा कहाँ इतनी भीड़ में? फेसलेस एक करोड़ आदमी इकट्ठा हैं। कौन, कौन है? अब कोई अर्थ नहीं रह गया जानने का। कौन राजा है, कौन रंक है? अब कोई मतलब नहीं रह गया। कौन अमीर है, कौन गरीब है? कोई मतलब नहीं रहा, यानी सब फेसलेस हो गया। अब यहाँ इन सबकी चेतनाएँ एक दूसरे के भीतर प्रवाहित होनी शुरू होंगी। अगर एक करोड़ लोगों की चेतना का पूल बन सके, एक इकट्ठा रूप बन जाय, तो इस चेतना के भीतर

परमात्मा का प्रवेश जितना आसान है उतना आसान एक-एक व्यक्ति के भीतर नहीं है।

नीत्से ने कहीं लिखा है: वह सुबह एक बगीचे में गुजर रहा है। एक छोटे से कीड़े पर उसका पैर लग जाता है, तो वह कीड़ा जल्दी से सिकुड़कर गोल घुंडी बनाकर बैठ जाता है। नीत्से बड़ा हैरान हुआ। उसने कई दफा यह बात देखी है कि कीड़ों को जरा चोट लग जाय तो वह तत्काल सिकुड़ के क्यों बैठ जाते हैं? उसने अपनी डायरी में लिखा कि बहुत सोचकर मुझे ख्याल में आया कि वह अपना काण्टेक्ट फील्ड कम कर लेते हैं। बचाव का ज्यादा उपाय हो जाता है। कीड़ा पूरा लम्बा है, तो उस पर कहीं पैर पड़ सकता है, क्योंकि ज्यादा जगह वह घेर रहा है। वह जल्दी से छोटी जगह में सिकुड़ गया, अब उस पर पैर पड़ने की सम्भावना अनुपात में कम हो गयी। वह सुरक्षा कर रहा है अपनी, वह अपना काण्टेक्ट फील्ड छोटा कर रहा है। और जो कीड़ा जितनी जल्दी यह काण्टेक्ट फील्ड छोटा कर लेता है वह उतना बचाव कर लेता है।

आदमी की चेतना जितना बड़ा काण्टेक्ट फील्ड निर्मित करती है, परमात्मा का अवतरण उतना आसान हो जाता है। क्योंकि वह इतनी बड़ी घटना है! एक बड़ी घटना के लिए, हम जितनी बड़ी जगह बना सकें उतनी उपयोगी है। इन्डीवीजुअल प्रेयर, व्यक्तिगत प्रार्थना तो बहुत बाद में पैदा हुई, प्रार्थना का मूलरूप तो समूहगत है। वैयक्तिक प्रार्थना तो तब पैदा हुई जब एक एक आदमी को भारी अहंकार पकड़ना शुरू हो गया। किसी के साथ पूलअप होना मुश्किल हो गया कि किसी के साथ हम एक हो सकें। इसलिए जबसे इन्डीवीजुअल प्रेयर दुनिया में शुरू हुई तब से प्रेयर का फायदा खो गया। असल में प्रेयर इन्डीवीजुअल नहीं हो सकती। हम इतनी बड़ी शक्ति का आह्वान कर रहे हैं—तो हम जितना बड़ा क्षेत्र दे सकें उसके अवतरण के लिए, उतना ही सुगम होगा। तीर्थ इस रूप में एक बड़े क्षेत्र को निर्मित करते हैं। फिर खास घड़ी में करते हैं, खास नक्षत्र में करते हैं, खास दिन पर करते हैं, खास वर्ष में करते है। वह सब सुनिश्चित विधियाँ थीं। इसका अर्थ यह कि उस नक्षत्र में, उस घड़ी में पहले भी काण्टेक्ट हुआ है। और जीवन की सारी व्यवस्था पीरियोडिकल है, इसे भी समझ लेना चाहिए।

जीवन की सारी व्यवस्था कैसे पीरियोडिकल है? जैसे कि वर्षा आती है, एक खास दिन पर आ जाती है। और अगर आज नहीं आती है खास दिन पर, तो उसका कारण यह है कि हमने छेड़छाड़ की है। अन्यथा दिन बिल्कुल तय है, घड़ी तय है। गर्मी आती है खास वक्त, सर्दी आती है खास वक्त, वसन्त आता है खास वक्त। सब बँधा है। शरीर भी बिल्कुल वैसा ही काम करता है। स्त्रियों का मासिक धर्म है, ठीक

चाँद के साथ चलता रहता है। ठीक अट्ठाइस दिन में उसे लौट आना चाहिए, अगर बिल्कुल ठीक है, शरीर स्वस्थ है। वह चाँद के साथ यात्रा करता है। वह अट्ठाइस दिन में नहीं लौटता तो क्रम टूट गया है व्यक्तित्व का, भीतर कहीं कोई गड़बड़ हो गयी है।

सारी घटनाएँ एक क्रम में आवर्तित होती हैं। अगर किसी एक घड़ी में परमात्मा का अवतरण हो गया, तो उस घड़ी को हम अगले वर्ष के लिए फिर नोट कर सकते हैं। अब संभावना उस घड़ी की बढ़ गयी, वह घड़ी ज्यादा पोटेंशियल हो गयी। उस घड़ी में परमात्मा की धारा पुनर्प्रवाहित हो सकती है। इसलिए पुनः पुनः उस घड़ी में तीर्थ पर लोग इकट्ठे होते रहेंगे, सैकड़ों वर्षों तक। अगर यह कई बार हो चुका तो यह घड़ी सुनिश्चित होती जायेगी। वह बिल्कुल तय हो जायेगी। जैसे कि कुम्भ के मेले पर गंगा में कौन पहले उतरे, वह भारी दंगे का कारण होता है। क्योंकि इतने लोग इकट्ठे नहीं उतर सकते एक घड़ी में, और वह घड़ी तो बहुत सुनिश्चित है, बहुत बारीक है। उसमें कौन उतरे, उस पहली घड़ी में? जिन्होंने वह घड़ी खोजी है या जिनकी परम्परा और जिनकी धारा में उस घड़ी का पहले अवतरण हुआ है, वह उसके मालिक हैं। वह उस घड़ी में पहले उतर जायेंगे। और कभी कभी क्षण का फर्क हो जाता है। परमात्मा का अवतरण करीब करीब बिजली की कौंध जैसा है। कौंधा, और खो गया। उस क्षण में आप खुले रहे, जगे रहे तो घटना घट जाय। उस क्षण में आँख बन्द हो गयी, सोये रहे तो घटना खो जाय। तीर्थ का तीसरा महत्व था मास एक्सपेरीमेंट, समह प्रयोग। अधिकतम विराट पैमाने पर उस अनन्त शक्ति को उतारा जा सके। और जब लोग सरल थे तो यह घटना बड़ी आसानी से घटती थी। उन दिनों तीर्थ बड़े सार्थक थे। तीर्थ से कभी कोई खाली नहीं लौटता था। इसलिए तो आज भी खाली लौट आने पर आदमी फिर दोबारा चला जाता है। उन दिनों तो ट्रांसफार्म होकर लौटता ही था। पर वह बहुत सरल और इनोसेंट समाज की घटनायें हैं। क्योंकि जितना सरल समाज हो, जहाँ व्यक्तित्व का बोध जितना कम हो, वहाँ तीर्थ का यह तीसरा प्रयोग काम करेगा, अन्यथा नहीं करेगा। आज भी अगर आदिवासियों में जायें तो पायेंगे कि उनमें व्यक्तित्व का बोध नहीं है। मैं का ख्याल कम है, हम का ख्याल ज्यादा है। कुछ तो भाषाएँ हैं ऐसी जिनमें 'मैं' नहीं है, 'हम' ही है। आदिवासी कबीलों की ढेर भाषाएँ हैं जिनमें 'मैं' शब्द नहीं है। आदिवासी बोलता है, तो बोलता है 'हम'। ऐसा नहीं है कि भाषा ऐसी है, वहाँ मैं का कन्सेप्ट ही पैदा नहीं हुआ। और वह इतना जुड़ा हुआ है आपस में कि कई दफा तो बहुत अनूठे परिणाम उसके निकले हैं।

सिंगापुर के पास एक छोटे से द्वीप पर जब पहली दफा पश्चिमी लोगों ने हमला

किया तो वह बड़े हैरान हुए। जो चीफ था, जो प्रमुख था कबीले का, वह आया किनारे पर, और जो हमलावर थे उनसे उसने कहा कि हम निहत्थे लोग जरूर हैं, पर हम परतन्त्र नहीं हो सकते। पश्चिमी लोगों ने कहा कि वह तो होना ही पड़ेगा। उन कबीले वालों ने कहा, हमारे पास लड़ाई का उपाय तो कुछ नहीं है, लेकिन हम मरना जानते हैं। हम मर जायेंगे। उन्हें भरोसा नहीं आया कि कोई ऐसे कैसे मरता है? लेकिन बड़ी अद्भुत घटना है। ऐतिहासिक घटनाओं में एक घटना घट गयी। जब वे राजी नहीं हुए और उन्होंने कदम रख दिये, द्वीप पर उतर गये, तो पूरा कबीला इकट्ठा हुआ। कोई पाँच सौ लोग तट पर इकट्ठे हुए और वह देखकर दंग रहे गये कि उनका प्रमुख पहले मर कर गिर गया, और फिर दूसरे लोग मर कर गिरने लगे। मर के गिरने लगे बिना किसी हथियार की चोट के। शत्रु घबरा गये, वापस लौट गय, यह देख कर। पहले तो उन्होंने समझा कि लोग डर के ऐसे ही गिर गये होंगे, लेकिन देखा, वह तो खत्म ही हो गये। अभी तक साफ नहीं हो सका कि यह क्या घटना घटी? असल में 'हम' की कांसेसनेस अगर बहुत ज्यादा हो तो मृत्यु ऐसी संक्रामक हो सकती है। एक के मरते ही, फैल सकती है। कई जानवर मर जाते हैं ऐसे। भेड़ें मर जाती हैं। एक भेड़ मरी, कि मरना फैल जाता है। भेड़ के पास 'मैं' का बोध बहुत कम है, 'हम' का बोध है। भेड़ों को चलते हुए देखें तो मालूम पड़ेगा कि 'हम' चल रहा है। सब सटी हुई हैं एक दूसरे से। एक ही जीवन जैसे सरकता हो। एक भेड़ मरी, तो दूसरी भेड़ को मरने जैसा हो जायेगा। मृत्यु फैल जायेगी भीतर। तो जब समाज बहुत 'हम' के बोध से भरा था और 'मैं' का बोध बहुत कम था, तब तीर्थ बड़ा कारगर था। उसकी उपयोगिता उसी मात्रा में कम हो जायेगी, जिस मात्रा में 'मैं' का बोध बढ़ जायेगा।।

आखिरी बात जो तीर्थ के बाबत ख्याल में लेनी चाहिये, वह यह कि सिम्बालिक ऐक्ट का, प्रतीकात्मक कृत्य का भारी मूल्य है। जैसे जीसस के पास कोई आता है और कहता है, मैंने यह यह पाप किये। वह जीसस के सामने कन्फेस कर देता है, सब बता देता है, मैंने यह पाप किये, मैंने यह पाप किये। जीसस सिर पर हाथ रखकर कह देते हैं कि जा तुझे माफ किया। अब इस आदमी ने पाप किये हैं, जीसस के कहने से माफ कैसे हो जायेंगे? जीसस कौन हैं, और उनके हाथ रखने से माफ हो जायेंगे? जिस आदमी ने खून किया, उसका क्या होगा? या हमने कहा, आदमी पाप करे और गंगा में स्नान कर ले, मुक्त हो जायेगा। बिल्कुल पागलपन मालूम हो रहा है। जिसने हत्या की है, चोरी की है, बेईमानी की है, गंगा में स्नान करके मुक्त कैसे हो जायेगा? यहाँ दो बातें समझ लेनी जरूरी है। एक तो यह, कि पाप असली घटना नहीं है, स्मृति असली घटना है—'मेमोरी'। पाप नहीं, ऐक्ट नहीं, असली घटना जो आपमें चिपकी रह जाती है, वह स्मृति है। आपने हत्या की है,

यह उतना बड़ा सवाल नहीं है आखिर में। आपने हत्या की है, यह स्मृति काँटे की तरह पीछा करेगी। जो जानते हैं वह तो जानते हैं कि हत्या की है या नहीं, वह नाटक का हिस्सा है, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। न कभी मरता है कोई, न कभी मार सकता है कोई। मगर यह स्मृति आपका पीछा करेगी कि मैंने हत्या की, मैंने चोरी की। यह पीछा करेगी, और यह पत्थर की तरह आपकी छाती पर पड़ी रहेगी। वह कृत्य हो गया, अनन्त में खो गया। वह कृत्य तो अनन्त ने सम्हाल लिया। सच तो यह है, सब कृत्य अनन्त के हैं, आप नाहक उसमें परेशान हैं। कभी चोरी भी हुई आपसे, तो भी अनन्त के ही द्वारा आपसे हुई है। हत्या भी हुई है तो भी अनन्त के द्वारा आपसे हुई है। आप नाहक बीच में अपनी स्मृति लेकर खड़े हैं कि मैंने किया। अब यह 'मैंने किया', यह स्मृति आपकी छाती पर बोझ है। क्राइस्ट कहते हैं तुम कन्फेस कर दो, मैं तुम्हें माफ किये देता हूँ। और जो क्राइस्ट पर भरोसा करता है वह पवित्र होकर लौटेगा। असल में क्राइस्ट पाप से तो मुक्त नहीं कर सकते, लेकिन स्मृति से मुक्त कर सकते हैं। स्मृति ही असली सवाल है। गंगा पाप से मुक्त नहीं कर सकती, लेकिन स्मृति से मुक्त कर सकती है। अगर कोई भरोसा लेकर गया है कि गंगा में डुबकी लगाने से सारे पाप से बाहर हो जाऊँगा, और ऐसा अगर उसके चित्त में है, उसकी कलेक्टिव अनकांसेस में है, उसके समाज की करोड़ों वर्ष की धारणा है कि गंगा में डुबकी लगाने से पाप से छुटकारा हो जायेगा तो निश्चित ही हो जायगा। पाप से छुटकारा नहीं होगा वैसे, क्योंकि चोरी को अब कुछ और नहीं किया जा सकता, हत्या जो हो गयी हो गयी, लेकिन यह व्यक्ति पानी के बाहर जब निकला तो सिम्बालिक एक्ट हो गया।

क्राइस्ट कितने दिन दुनिया में रहेंगे, कितने पापियों से मिलेंगे, कितने पापी कन्फेस कर पायेंगे? इस के लिए हिन्दुओं ने ज्यादा स्थायी व्यवस्था खोजी है। व्यक्ति से नहीं बाँधा, एक नदी से बाँधा। यह नदी कन्फेशन लेती रहेगी। वह नदी माफ करती रहेगी। ये अनंत तक रहेंगी, और ये धाराएँ स्थायी हो जायेंगी। क्राइस्ट कितने दिन रहेंगे? मुश्किल से क्राइस्ट तीन साल काम कर पाये, कुल तीन साल। तीस से लेकर तैंतीस साल की उम्र तक, तीन साल में कितने पापी कन्फेस करेंगे? कितने पापी उनके पास आयेंगे? कितने लोगों के सिर पर हाथ रखेंगे? यहाँ के मनीषियों ने व्यक्ति से नहीं बाँधा, धारा से बाँध दिया।

तीर्थ है, वहाँ जायेगा कोई वह मुक्त होकर लौटेगा, तो स्मृति से मुक्त होगा, स्मृति ही तो बन्धन है। वह स्वप्न जो आपने देखा आपका पीछा कर रहा है। असली सवाल वही है और निश्चित ही उससे छुटकारा हो सकता है। लेकिन उस छुटकारे में दो बातें जरूरी हैं। बड़ी बात तो यह जरूरी है कि आपकी ऐसी निष्ठा हो कि मुक्ति

हो जायेगी। और आपकी निष्ठा कैसे होगी? आपकी निष्ठा तभी होगी जब आपको ऐसा ख्याल हो कि लाखों वर्ष से ऐसा वहाँ होता रहा है। और कोई उपाय नहीं है। इसलिए कुछ तीर्थ तो बिल्कुल सनातन हैं। जैसे काशी, वह सनातन है। सच बात यह है, पृथ्वी पर कोई ऐसा समय नहीं रहा जब काशी तीर्थ नहीं थी। वह एक अर्थ में सनातन है, बिल्कुल सनातन है। यह आदमी का पुराने से पुराना तीर्थ है। उसका मूल्य बढ़ जाता है। क्योंकि उतनी बड़ी धारा, सजेशन है। वहाँ कितने लोग मुक्त हुए, वहाँ कितने लोग शांत हुए हैं, वहाँ कितने लोगों ने पवित्रता को अनुभव किया है, वहाँ कितने लोगों के पाप झड़ गये,—वह एक लम्बी धारा है। वह सुझाव गहरा होता चला जाता है। वह सरल चित्त में जाकर निष्ठा बन जायेगी। वह निष्ठा बन जाय तो तीर्थ कारगर हो जाता है। वह निष्ठा न बन पाये तो तीर्थ बेकार हो जाता है। तीर्थ आपके बिना कुछ नहीं कर सकता। आपका कोआपरेशन चाहिए। लेकिन आप भी कोआपरेशन तभी देते हैं कि जब तीर्थ की एक धारा हो, एक इतिहास हो।

हिन्दू कहते हैं, काशी इस जमीन का हिस्सा नहीं है, इस पृथ्वी का हिस्सा नहीं है, वह अलग ही टुकड़ा है। वह शिव की नगरी अलग ही है, वह सनातन है। सब नगर बनेंगे, बिगड़ेंगे, काशी बनी रहेगी, इसलिए कई दफा हैरानी होती है। व्यक्ति तो खो जाते हैं—बुद्ध काशी आये, जैनों के तीर्थंकर काशी में पैदा हुए, खो गये। काशी ने सब देखा—शंकराचार्य आये, खो गये। कबीर बसे, खो गये। काशी ने तीर्थंकर देखे, अवतार देखे, संत देखे, सब खो गये। उनका तो कहीं कोई निशान नहीं रह जायगा, लेकिन काशी बनी रहेगी। वह उन सबकी पवित्रता को, उन सारे लोगों के पुण्य को, उन सारे लोगों की जीवन धारा को, उनकी सब सुगन्ध को आत्मसात कर लेती है और बनी रहती है। यह जो स्थिति है, यह निश्चित ही पृथ्वी से अलग हो जाती है,— मेटाफरीकली। यह इसका अपना एक शाश्वत रूप हो गया, इस नगरी का अपना व्यक्तित्व हो गया। इस नगरी पर से बुद्ध गुजरे, इसकी गलियों में बैठ कर कबीर ने चर्चा की है। वह सब कहानी हो गयी, वह सब स्वप्न हो गया। पर यह नगरी उन सबको आत्मसात किये है। और अगर कभी कोई निष्ठा से इस नगरी में प्रवेश करे तो वह फिर से बुद्ध को चलता हुआ देख सकता है, वह फिर से पार्श्वनाथ को गुजरते हुए देख सकता है। वह फिर से देखेगा तुलसीदास को, वह फिर से देखेगा कबीर को। अगर कोई निष्ठा से इस काशी के निकट जाय, तो यह काशी साधारण नगरी न रह जायेगी लन्दन या बम्बई जैसी। एक असाधारण चिन्मय रूप ले लेगी, और इसकी चिन्मयता बड़ी शाश्वत है, बड़ी पुरातन है। इतिहास खो जाते हैं। सभ्यताएँ बनती और बिगड़ती हैं, आती हैं और चली जाती हैं, और यह अपनी एक अन्तःधारा को संजोये हुए चलती है। इसके रास्ते पर खड़ा होना, इसके

घाट पर स्नान करना, इसमें बैठकर ध्यान करने के प्रयोजन हैं। आप भी हिस्सा हो गये हैं एक अंतःधारा के। यह भरोसा कि मैं ही सब कुछ कर लूँगा, खतरनाक है। प्रभु का सहारा लिया जा सकता है, अनेक रूपों में। उसके तीर्थ में, उसके मंदिरों में उसका सहारा लिया जा सकता है। सहारे के लिए वह सारा आयोजन है। यह कुछ बातें जो ठीक से समझ में आ सकें, वह मैंने कहीं। पर यह पर्याप्त नहीं हैं। बहुत सी बातें हैं तीर्थ के साथ, जो समझ में नहीं आ सकेंगी, पर घटित होती हैं। जिनको बुद्धि साफ साफ नहीं दिखा पायेगी, जिनका गणित नहीं बनाया जा सकेगा, लेकिन घटित होती हैं।

दो-तीन बातें सिर्फ उल्लेख कर दूं जो घटित होती हैं। जैसे कि आप कहीं भी जाकर एकांत में बैठ कर साधना करें तो बहुत कम संभावना है कि आपको अपने आस-पास किन्हीं आत्माओं की उपस्थिति का अनुभव हो, लेकिन तीर्थ में करें तो बहुत जोर से होगा। कहीं भी करें वह अनुभव नहीं होगा। लेकिन तीर्थ में आपको प्रेजेंस मालूम पड़ेगी। थोड़ी बहुत नहीं, बहुत गहन। कभी इतनी गहन हो जाती है कि आप स्वयं मालूम पड़ेंगे कि कम हैं, और दूसरे की प्रेजेंस ज्यादा है। जैसे कि कैलाश—कैलाश हिन्दुओं का भी तीर्थ रहा है और तिब्बती बौद्धों का भी। पर कैलाश बिल्कुल निर्जन है। वहाँ कोई आवास नहीं है। कोई पुजारी नहीं है, कोई पण्डा नहीं है, कोई प्रगट आवास नहीं है कैलाश पर। लेकिन जो भी कैलाश पर जाकर ध्यान का प्रयोग करेगा वह कैलाश को पूरी तरह बसा हुआ पायेगा। जैसे ही कैलाश पर पहुँचेगा, अगर थोड़ी भी ध्यान की क्षमता है तो कैलाश से कभी वह खबर लेकर नहीं लौटेगा कि वह निर्जन है। इतना सघन बसा है, इतने लोग हैं और इतने अद्भुत लोग हैं। ऐसे कोई बिना ध्यान के कैलाश जायेगा, तो कैलाश खाली है।

चाँद के सम्बन्ध में जो लोग और तरह से खोज करते हैं, उनका ख्याल नहीं है कि चाँद निर्जन है। और जिन्होंने कैलाश का अनुभव किया है वे कभी नहीं मानेंगे कि चाँद निर्जन है। लेकिन आपके यात्री को चाँद पर कोई नहीं मिलेगा। जरूरी नहीं है इससे कि कोई न हो, पर आपके यात्री को नहीं मिलेगा। जैनों के ग्रन्थों में बहुत वर्णन है कि चाँद में किस किस तरह के देवता हैं, कि क्या हैं, पर अब वे बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। जब पाया गया कि वहाँ कोई नहीं है। उनके साधु-संन्यासी बड़ी मुश्किल में हैं। वे बेचारे एक ही उपाय कर सकते हैं, उन्हें कुछ और तो पता नहीं है; वह यह कह सकते हैं कि तुम असली चाँद पर पहुँचे ही नहीं। वह इसके सिवाय और क्या कहेंगे ? अभी गुजरात में कोई मुझे कह रहा था कि कोई जैन मुनि पैसा इकट्ठा कर रहे हैं यह सिद्ध करने के लिए कि तुम असली चाँद पर नहीं पहुँचे। ये वे कभी सिद्ध न कर पायेंगे। आदमी असली चाँद पर पहुँच गया है। लेकिन उनकी

कठिनाई है कि उनकी किताब में लिखा है कि वहाँ आवास है! वहाँ इस इस तरह के देवता रहते हैं! उनकी किताब में लिखा है, उनको खुद को तो कुछ पता नहीं। किताब तो आवास का कहती है और अब वैज्ञानिक की रिपोर्ट है कि वहाँ कोई भी नहीं है। अब क्या करना है ? तो साधारण बुद्धि जो कर सकती, वह यह है, कि वे लोग चाँद पर नहीं पहुँचे। क्योंकि अगर नहीं सिद्ध कर पाये तो यह मानना पड़ेगा कि हमारा शास्त्र गलत हुआ। तो वे जिद बाँध रखेंगे कि नहीं, तुम उस जगह नहीं पहुँचे। एक जैन मुनि ने तो दावे से यह कहा कि कोई वहाँ पहुँचा ही नहीं। अब इन्कार भी नहीं कर सकते, पहुँचे तो जरूर हैं, तो फिर कहाँ पहुँचे गये हैं ? कभी कभी तो हास्यास्पद, रिडीकुलस हो जाती है बात! उन्होंने कहा, कि वहाँ देवताओं के जो विमान ठहरे रहते हैं चारों तरफ, आप किसी विमान पर उतर गये। वह बड़े विराट विमान हैं। उसी पर उतर कर आप लौट आये हैं, आप ठीक चाँद की भूमि पर नहीं उतर सके। यह सब पागलपन है, लेकिन इस पागलपन के पीछे कुछ कारण है। वह कारण यह है कि एक धारा है, कोई अन्दाजन बीस हजार वर्ष से जैनों की धारा है कि चाँद पर आवास है। पर वह उनके ख्याल में नहीं है कि वह आवास किस तरह का है ? वह आवास कैलाश जैसा आवास है, वह आवास तीर्थों जैसा आवास है। जब आप तीर्थ पर जायेंगे तो एक तीर्थ वह काशी है जो दिखायी पड़ती हैं। जहाँ आप ट्रेन पर से उतर जायेंगे स्टेशन से, एक तो काशी वह है। परन्तु काशी के दो रूप हैं—तीर्थ के दो रूप हैं। एक तो मृण्मय रूप है, वह जो दिखायी पड़ रहा है, जहाँ कोई भी जायेगा सैलानी और घूम कर लौट आयेगा। और एक उसका चिन्मय रूप है, जहाँ वही पहुँच पायेगा जो अंतरस्थ होगा, जो ध्यान में प्रवेश करेगा, तो उसके लिये काशी बिल्कुल और हो जायेगी। उधर काशी के सौंदर्य का इतना वर्णन है, और इस काशी को देखो तो फिर लगता है कि वह कवि की कल्पना है। इससे ज्यादा गन्दी कोई बस्ती नहीं है, यह काशी जिसको हम देखकर आ जाते हैं। पर किस काशी की बातें कर रहे हो तुम ? किस काशी की बात हो रही है, किस काशी के सौंदर्य की जो अपूर्व है, जैसा कोई नजर नहीं आया है इस जगत में। यह सब तुम किसकी बात कर रहे हो ? यही काशी अगर है, तब फिर यह सब कवि कल्पना हो गयी। नहीं, पर वह काशी भी है। और एक कोन्टेक्ट फील्ड है यह काशी, यहाँ उस काशी और इस काशी का मिलन होता है। जो यात्री सिर्फ ट्रेन में बैठकर गया है, वह इस काशी से वापस लौट कर आ जायेगा। वह जो ध्यान में बैठकर गया है वह उस काशी से भी संपर्क साध पाता है। तब इसी काशी के निर्जन घाट पर उनसे भी मिलना हो जाता है जिनसे मिलने की आपको कभी कोई कल्पना नहीं होती।

मैंने अभी बताया, कैलाश पर अलौकिक निवास है। करीब करीब नियमित रूप से, नियम कैलाश का रहा है कि कम से कम पाँच सौ बौद्ध-सिद्ध वहाँ रहें ही, उससे

कम नहीं। पांच सौ बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति कैलास पर रहेंगे ही। और जब भी एक उनमें से विदा होगा किसी और यात्रा पर, तो दूसरा जबतक न हो तब तक वह विदा नहीं हो सकता। पांच सौ की संख्या वहां पूरी रहेगी। उन पांच सौ की मौजूदगी कैलाश को तीर्थ बनाती है, लेकिन यह बुद्धि से समझने की बात नहीं है इसलिए मैंने पीछे छोड़ रखी। काशी का भी नियमित आंकड़ा है कि उतने संत वहाँ रहेंगे ही। उनमें कभी कमी नहीं होगी। उनमें से एक को विदा तभी मिलेगी जब दूसरा उस जगह स्थापित हो जायेगा। असली तीर्थ वही हैं, और उनसे जब मिलन होता है तो तीर्थ में प्रवेश करते हैं। पर उनके मिलन का कोई भौतिक स्थल भी चाहिए। आप उनको कहाँ खोजते फिरेंगे। उस अशरीरी घटना को आप न खोज सकेंगे, इसलिए भौतिक स्थल चाहिए। जहाँ बैठकर आप ध्यान कर सकें और उस अन्तर्जगत में प्रवेश कर सकें, जहाँ संबंध सुनिश्चित है।

तीथ बुद्धि से ख्याल में नहीं आयेगा, बुद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं है तीर्थ का। ठीक तीर्थ का अर्थ, जो दिखायी पड़ जाता है वह नहीं है। छिपा है, उसी स्थान पर छिपा है। दूसरी बात, इस जमीन पर जब भी कोई व्यक्ति परम ज्ञान को उपलब्ध होकर विदा होता है तो उसकी करुणा उसे कुछ चिन्ह छोड़ देने को कहती है। क्योंकि जिनको उसने रास्ता बताया, जो उसकी बात मानकर चले, जिन्होंने संघर्ष किया, जिन्होंने श्रम उठाया, उनमें से बहुत से ऐसे होंगे जो अभी नहीं पहुँच पाये। उनके पास कुछ संकेत तो चाहिए, जिनसे कभी भी जरूरत पड़ने पर वह संपर्क पुनः साध सकें। इस जगत में कोई आत्मा कभी खोती नहीं, पर शरीर तो खो जाते हैं। तो उन आत्माओं से संपर्क साधने के लिए सूत्र चाहिए। उन सूत्रों के लिए तीर्थों ने ठीक वैसे ही काम किया जैसे कि आज हमारे राडार काम करते हैं। जहाँ तक आंखें नहीं पहुँचतीं वहाँ तक राडार पहुँच जाते हैं। जो आँखों से कभी नहीं देखे गये तारे, वह राडार देख लेते हैं। तीर्थ बिल्कुल आध्यात्मिक राडार का इन्तजाम है। जो हमसे छूट गये, जिनसे हम छूट गये, उनसे सबंध स्थापित किये जा सकते हैं। इसलिए प्रत्येक तीर्थ निर्मित किया गया उन लोगों के द्वारा, जो अपने पीछे कुछ लोग छोड़ गये हैं जो अभी रास्ते पर हैं। जो पहुँच नहीं गये, और जो अभी भटक सकते हैं। और जिन्हें बार बार जरूरत पड़जायेगी कि वह कुछ पूछ लें, कुछ जान लें, कुछ आवश्यक हो जाय। थोड़ी जानकारी उन्हें भटका दे सकती है। क्योंकि भविष्य उन्हें बिल्कुल ज्ञात नहीं है, आगे का रास्ता उन्हें बिल्कुल पता नहीं है। तो उन सबने सूत्र छोड़े हैं, और सूत्रों को छोड़ने के लिए विशेष तरह की व्यवस्थाएँ की हैं —तीर्थ खड़े किये, मन्दिर खड़े किये, मंत्र निर्मित किये, मूर्तियाँ बनायीं, सब आयोजन किया। और सबका आयोजन एक सुनिश्चित प्रक्रिया है। जिसे हम 'रिचुअल' कहते हैं, वह एक सुनिश्चित प्रक्रिया है।

अगर एक जंगली आदिवासी को हम ले आयें और वह आकर देखे कि जब भी प्रकाश करना होता है तो आप अपनी कुर्सी से उठते हैं, दस कदम चलकर बायीं दीवाल के पास पहुँचते हैं, वहाँ एक बटन को दबाते हैं, और बिजली जल जाती है। वह आदिवासी किसी भी तरह न सोच पायेगा कि इस बटन में और इस दीवाल के भीतर इस बिजली के बल्ब से कोई तार जुड़ा हुआ है। उसके सोचने का कोई उपाय नहीं है। उसे यह रिचुअल एक मालूम पड़ेगा कि यह कोई तरकीब है। यहाँ से उठना, ठीक जगह पर दीवाल पर जाना फिर नम्बर एक का बटन दबाना। नम्बर दो का दबाते हैं तो पंखा घूमने लगता है, नम्बर तीन का दबाते हैं तो रेडियो बोलने लगता है। वह देखता है कि उसी खास दीवाल के कोने में जाकर आप कुछ तरकीब करते हैं और वहाँ से कुछ होता है। उसे यह सब रिचुअल मालूम पड़ेगा। एक क्रिया-काण्ड लगेगा। और समझ लें किसी दिन आप नहीं हैं घर में और बिजली चली गयी है। वह आदमी उठा और उसने जाकर पूरा रिचुअल किया, लेकिन बिजली नहीं जली, पंखा नहीं चला, रेडियो नहीं चला। अब वह यही समझेगा कि रिचुअल में कोई भूल हो गयी है। अपने क्रिया-काण्ड में कोई भूल हो रही है, शायद अपन ने ठीक कदम न उठाये। कौन से कदम से पहले वह आदमी गया था। पता नहीं, अंदर अंदर कोई मंत्र भी पढ़ता हो मन में, और बटन दबाता हो। क्योंकि हमने बटन वही दबाया है और बिजली नहीं जल रही है। उस आदिवासी को तो बिजली के पूरे फैलाव का कोई अन्दाजा नहीं हो सकता।

करीब करीब धर्म के सम्बन्ध में ऐसा ही है। जिनको भी हम धर्म के क्रिया-काण्ड कहते हैं, वह सब हमारे द्वारा पकड़ लिये गये ऊपरी कृत्य हैं। जो बिल्कुल कुछ नहीं जानते भीतरी व्यवस्था को, उनको हम पूरा भी कर लेते हैं, फिर पाते हैं, कुछ नहीं हो रहा है। या कभी हो जाता है, कभी नहीं होता। तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं। कभी हो जाता है, इससे शक होता है कि शायद होता होगा। फिर कभी नहीं होता तो फिर ये शक होता है कि शायद संयोग से हो गया हो। क्योंकि अगर होना चाहिए तो हमेशा होना चाहिए। हमें भीतरी व्यवस्था का कोई भी पता नहीं है। जिस चीज को आप नहीं जानते उसको ऊपर से देखने पर वह रिचुअल मालूम पड़ेगी। ऐसा छोटे-मोटे आदमियों के साथ होता हो ऐसा नहीं, जिनको हम बहुत बुद्धिमान कहते हैं उनके साथ भी यही होगा, क्योंकि बुद्धि ही बचकानी चीज है। बड़े से बड़ा बुद्धिमान भी एक अर्थ में जुवनाइल है, बचकाना ही होता है। क्योंकि बुद्धि कोई बहुत गहरे ले जाने वाली नहीं है।

जब पहली दफा ग्रामोफोन बना, और फ्रांस के जिस वैज्ञानिक ने ग्रामोफोन बनाया वह लेकर गया, तो बड़ी ऐतिहासिक घटना घटी तीन सौ साल पहले। फ्रेंच

एकेडेमी के सारे बड़े से बड़े वैज्ञानिक सदस्य हाजिर थे। कोई सौ वैज्ञानिक घटना देखने आये थे। उस आदमी ने ग्रामोफोन का रिकार्ड चालू किया, तो जो प्रेसिडेंट था फ्रेंच एकेडेमी का, वह थोड़ी देर तो देखता रहा, फिर उचक कर उसने उस आदमी की गर्दन पकड़ ली, जो ग्रामोफोन लाया था। क्योंकि उसने समझा कि यह कोई ट्रिक कर रहा है गले की। यह हो कैसे सकता है? यह गले में अन्दर कोई हरकत कर रहा है। कोई तरकीब इसने लगायी है। यह ऐतिहासिक घटना बन गयी, क्योंकि एक वैज्ञानिक से ऐसी आशा नहीं हो सकती थी कि वह जाकर उसकी गर्दन पकड़ ले। वह आदमी तो घबराया, उसने कहा कि आप यह क्या करते हैं? उसने कहा, देखो तुम मुझको धोखा न दे पाओगे। वह उसका गला दबाये रहा, लेकिन तब भी उसने देखा कि आवाज आ रही है। तब तो वह बहुत घबड़ाया। उस आदमी को कहा, तुम बाहर आओ। उसको बाहर ले गया, लेकिन तब भी आवाज आ रही थी। वह सौ के सौ वैज्ञानिक सकते में आ गये और उनमें से एक ने खड़े होकर कहा कि यह कोई शैतानी है। इसे छूना-ऊना मत। इसमें कुछ न कुछ डेवल जरूर है, शैतान इसमें हाथ बटा रहा है। यह हो कैसे सकता है? आज हमें हँसी आती है, क्योंकि अब हो गया इसका हमें परिचय। जो नहीं होता तो भी हम वैसी परेशानी में पड़ जाते।

अगर किसी दिन एटम गिरे दुनिया पर, यह सभ्यता हमारी खो जाय, और किसी आदिवासी के पास एक ग्रामोफोन बच जाय, तो उसके गाँव के लोग उसको मार डालें। अगर वह ग्रामोफोन बजा दे तो पूरा गाँव उसकी जान को आ जाय, क्योंकि वह एक्सप्लेन तो कर नहीं पायेगा, वह बता तो नहीं पायेगा कि यह रेकार्ड कैसे बोल रहा है? यह तो आप भी नहीं बता पाओगे। यह बड़े मजे ही बात है, सब सभ्यताएँ बिलीफ से जीती हैं। केवल दो-चार आदमियों के पास कुँजियाँ होती हैं, बाकी तो भरोसा होता है। आप भी न बता पाओगे कि यह कैसे बोल रहा है? सुन लेते हैं, मालूम है कि बोलता है, भर लिया जाता है, बाकी बता आप भी न पाओगे कि कैसे बोल रहा है! बटन दबा देते हैं, बिजली जल जाती है, रोज जला लेते हैं। पर आप भी न बता पाओगे कि कैसे जल गयी? कुँजियाँ तो दो-चार आदमियों के पास होती हैं सभ्यता की, बाकी सारे लोग काम चला लेते हैं, बस। जो काम चलाने वाले हैं, जिस दिन कुंजियाँ खो जायँ, उसी दिन मुश्किल में पड़ जायेंगे। उसी दिन उनका आत्मविश्वास डगमगा जायेगा। उसी दिन वह घबड़ाने लगेंगे। फिर अगर एक दफा बिजली न जली, तो कठिन हो जायेगा।

तीर्थ है, मंदिर है, उनका सारा का सारा विज्ञान है। और उस पूरे विज्ञान की अपनी सूत्रबद्ध प्रक्रिया है। एक कदम उठाने से दूसरा कदम उठता है, दूसरा उठाने से तीसरा उठता है, तीसरा उठता है पीछे चौथा उठता है और परिणाम होता है। यदि एक भी कदम बीच में खो जाय, एक भी सूत्र बीच में खो जाय तो परिणाम

नहीं होता। एक और बात इस सम्बन्ध में ख्याल में ले लेनी चाहिए कि जब भी कोई सभ्यता बहुत विकसित हो जाती है और जब भी कोई विज्ञान बहुत विकसित हो जाता है, तो 'रिचुअल' 'सिम्प्लीफाइड' हो जाता है, कम्प्लेक्स नहीं रह जाता। जब वह कम विकसित होता है तब उसकी प्रक्रिया बहुत जटिल होती है। पर जब पूरी बात पता चल जाती है तो उसके क्रियान्वित करने की जो व्यवस्था है वह बिल्कुल सिम्प्लीफाइड और सरल हो जाती है। अब इससे सरल क्या होगा कि आप बटन दबा देते हैं और बिजली जल जाती है। लेकिन आप सोच सकते हैं कि जिसने बिजली बनायी क्या उसने बटन दबाकर बिजली जला ली होगी? अब इससे सरल क्या होगा कि जो मैं बोल रहा हूँ वह रिकार्ड हो रहा है। कुछ भी तो नहीं करना पड़ रहा है हमें, लेकिन आप सोचते हैं, इतनी आसानी से वह टेपरिकार्डर बन गया? अगर मुझसे कोई पूछे कि क्या करना पड़ता है, तो मैं कहूँगा, बोल दो और रिकार्ड हो जाता है। लेकिन इस तरह वह बन नहीं गया है। जितना विज्ञान विकसित होता है उतना ही सिम्प्लीफाइड प्रोसेस, उतनी ही सरल प्रक्रिया हो जाती है। तभी तो जनता के हाथ में पहुँचती है, नहीं तो जनता के हाथ कभी पहुँच न सकेगी। जनता के हाथ में तो सिर्फ आखिरी नतीजे पहुँचते हैं जिनसे वह काम करना शुरू कर देती है।

धर्म के मामले में भी यही होता है। जब धर्म की कोई खोज होती है, जब महावीर कोई सूत्र खोजते हैं तो आप ऐसा मत सोचना कि सरलता से मिल जाता है। महावीर का तो पूरा जीवन दांव पर लगता है, लेकिन जब आपको मिलता है तब बिल्कुल सरलता से मिल जाता है। तब तो आपको भी बटन दबाने जैसा ही मामला हो जाता है। और यही कठिनाई भी है। क्योंकि आखिर में खोजने वाला तो खो जाता है, बटन आपके हाथ में रह जाता है, जिसको आप एक्सप्लेन नहीं कर पाते। फिर आप नहीं बता पाते कि कैसे करेंगे, इससे काम होगा कैसे?

अभी रूस और अमरीका दोनों के वैज्ञानिक इस बात में उत्सुक हैं कि किसी भी तरह, बिना किसी माध्यम के विचारसंक्रमण के, टेलीपैथी के सूत्र खोज लिये जायं। क्योंकि जब से लूना खो गया है उसके रेडियो के बन्द हो जाने से यह खतरा खड़ा हो गया है कि मशीन पर अंतरिक्ष में भरोसा नहीं किया जा सकता है। अगर रेडियो बन्द हो गया तो हमारे यात्री सदा के लिए खो जायेंगे, फिर उनसे हम कभी संबंध ही न बना पायेंगे। हो सकता है, वह कोई ऐसी चीजें भी जान लें जो हमें बताना चाहें लेकिन हमसे कोई सम्बन्ध न हो पायेगा। तो आल्टरनेट सिस्टम की जरूरत है कि जब मशीन बन्द हो जाय तो भी विचार का संक्रमण हो सके। इसलिए रूस और अमरीका दोनों के वैज्ञानिक टेलीपैथी के लिए भारी रूप से उत्सुक हैं। अमरीका ने

एक छोटा सा कमीशन बनाया है जो तीन साल, चार साल सारी दुनिया में घूमा। उस कमीशन ने जो रिपोर्ट दी वह बहुत घबड़ाने वाली है, लेकिन वह सब रिचुअल मालूम होता है। क्योंकि उसने देखा कि ऐसी घटना घटती है, लेकिन कैसे घटती है यह वह करने वाले भी नहीं बता सकते।

उसने लिखा है कि अमरीका में एक छोटा सा कबीला बड़ी हैरानी का काम करता है। हर गांव में एक छोटा सा वृक्ष होता है एक खास जाति का, जिससे मैसेज भेजने का काम लिया जाता है—वृक्ष से। पति गांव गया हुआ है बाजार में सामान लेने, पत्नी को ख्याल आ गया कि वह फलां सामान तो भूल ही गयी, तो जाकर उस वृक्ष को कह देती हैं कि देखो वह फलां सामान जरूर ले आना। वह मैसेज डिलीवर हो जाती है। वह आदमी सांझ को लौटता है तो वह सामान ले आता है। कमीशन के लोगों ने देखा, वह तो घबड़ा देने जैसी बात थी। हम फोन देखकर नहीं घबड़ाते। हम फोन पर बात करते नहीं घबड़ाते? एक आदिवासी देखकर घबड़ा जाता है कि क्या मामला है, आप किससे बातें कर रहे हैं। हम बात कर रहे हैं, क्योंकि हमें पूरी सिस्टम का ख्याल है इसलिए हम नहीं घबड़ाते। वायरलेस से हम बात करते हैं, तो भी हम नहीं घबड़ाते क्योंकि सिस्टम का हमें पता है और वह परिचित है। पर यह जान कर हैरान होते हैं कि इस वृक्ष से कैसे संवाद हो रहा है? उस कमीशन के लोगों ने दो-चार दिन सब तरह के प्रयोग करके देख लिये। उन स्त्रियों से पूछा, गांव के लोगों से पूछा उन्होंने कहा, यह तो हमें पता नहीं, लेकिन ऐसा सदा होता है। यह वृक्ष साधारण नहीं है। यह वृक्ष बड़ी पूजा से स्थापित किया गया है। इस वृक्ष को हम कभी मरने नहीं देते। इसी वृक्ष की शाखा को लगाते चले जाते हैं, यही एक सनातन नियम है। इसको हमारे बाप-दादों ने और उनके बाप-दादों ने, सबने इसका उपयोग किया। यह सदा से ही काम दे रहा है। ये क्या होता होगा? यह वैज्ञानिक की पकड़ के एकदम बाहर की बात है। और जो कर रहा है, उसको भी पता नहीं है। इस वृक्ष की प्राण ऊर्जा का टेलीपैथी के लिए उपयोग किया जा रहा है। वह कैसे किया गया शुरू, और यह वृक्ष कैसे राजी हुआ, कैसे इस वृक्ष ने काम करना शुरू कर दिया, और हजारों साल से कर रहा है काम, ये उस गांव के लोगों को कुछ पता ही नहीं है। वह 'कुंजी' तो खो गयी है, जिसने आविष्कार किया होगा। उसने किया होगा। पर वह काम ले रहे हैं उस वृक्ष से, उस वृक्ष को लगाये चले जा रहे हैं!

अब बुद्ध के बोधि-वृक्ष को बौद्ध नहीं मरने देते, यह इस वृक्ष की बात समझकर आपको ख्याल में आ सकेगा कि उसका कुछ उपयोग है। जिस बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसको मरने नहीं दिया गया। असली सूख गया, तो उसकी शाखा अशोक ने भेज दी थी लंका में, तो वहां वह वृक्ष था। अभी उसकी शाखा

को फिर लाकर पुनः आरोपित कर दिया। लेकिन वही वृक्ष कन्टीन्यूटी में रखा गया। इस बोध गया के तीर्थ का उपयोग है, वह इस बोधि-वृक्ष पर निर्भर है सब कुछ। इस वृक्ष के नीचे बैठकर बुद्ध ने ज्ञान पाया। और जब बुद्ध जैसे व्यक्ति के ज्ञान की घटना घटती है तो जिस वृक्ष के नीचे बुद्ध बैठे थे वह वृक्ष बुद्ध के बुद्धत्व को पी गया हो तो बहुत हैरानी नहीं है! यह असाधारण घटना है—बुद्ध का बुद्धत्व को प्राप्त होना, अलौकिक हो जाना है इस व्यक्ति का! उस वक्त एक कौंध बिजली पैदा हुई होगी! अगर आकाश से बिजली चमकती है और वृक्ष सूख जाता है तो कोई कारण नहीं है कि बुद्ध में चेतना की बिजली चमके, इतना तेज फैले और वृक्ष किन्हीं नये अर्थों में जीवंत न हो जाय! वैसा कोई दूसरा वृक्ष नहीं है। बुद्ध के गुप्त संदेश थे तभी इस वृक्ष को कभी नष्ट नहीं होने दिया गया। और बुद्ध ने कहा था, मेरी पूजा मत करना, इस वृक्ष की पूजा से काम चल जायगा। इसलिए पांच सौ साल तक बुद्ध की मूर्ति नहीं बनायी गयी। इस बोधि-वृक्ष की मूर्ति बनाकर पूजा चलती थी। पांच सौ साल बाद तक बुद्ध के जितने मंदिर थे वह बोधि-वृक्ष की ही पूजा करते रहे हैं। जो चित्र हैं, उनमें बुद्ध नहीं हैं बीच में सिर्फ आरा है। बुद्ध का प्रकाश है, बोधि-वृक्ष है। असल में यह वृक्ष आत्मसात कर गया है, यह पी गया है उस घटना को। यह चार्ज्ड हो गया। इस वृक्ष का जो उपयोग जानते हैं वह आज भी इस वृक्ष के द्वारा बुद्ध से संबंध स्थापित कर सकते हैं।

तो बोधि गया नहीं है मूल्यवान, मूल्यवान वह बोधि-वृक्ष है। उस बोधि-वृक्ष के नीचे बरसों तक बुद्ध संक्रमण करते रहे। उनके पैर के पूरे निशान बना कर रखे हैं। जब वह ध्यान करते करते थक जाते तो उस वृक्ष के पास घमने लगते। वह घण्टों उस वृक्ष के पास घूमते रहते। बुद्ध किसी के साथ इतने ज्यादा नहीं रहे जितने उस वृक्ष के साथ रहे। उस वृक्ष से ज्यादा बुद्ध के साथ कोई नहीं रहा। और इतनी सरलता से कोई आदमी रह भी नहीं सकता जितनी सरलता से वह वृक्ष रहा। बुद्ध उसके नीचे सोये भी हैं, बुद्ध उसके नीचे उठे भी हैं, बैठे भी हैं, बुद्ध इसके आस-पास चले भी हैं। बुद्ध ने उससे बातें की होंगी, बुद्ध उससे बोले भी होंगे। उस वृक्ष की पूरी जीवन ऊर्जा बुद्ध से आविष्ठ है। जब अशोक ने भेजा अपने बेटे महेन्द्र को लंका, तो उसके बेटे ने कहा, मैं भेंट क्या ले जाऊं? उन्होंने कहा, और तो कोई भेंट हो भी नहीं सकती इस जगत में, एक ही भेंट हमारे पास में है कि तुम इस बोधि-वृक्ष की एक शाखा ले जाओ। तो उस शाखा को लगाया, आरोपित किया और उस शाखा को भेज दिया। दुनिया में कभी किसी सम्राट ने किसी वृक्ष की शाखा किसी को भेंट नहीं दी होगी। यह कोई भेंट है? लेकिन सारा लंका आंदोलित हुआ उस शाखा की वजह से। और लोग समझते हैं, महेंद्र ने लंका को बौद्ध बनाया, वह गलत समझते हैं। उस शाखा ने बनाया। महेन्द्र की कोई हैसियत न थी। महेन्द्र साधारण

हैसियत का आदमी था। अशोक की लड़की भी साथ में थी संघमित्रा, उन दोनों की उतनी बड़ी हैसियत न थी। लंका का कन्वर्शन इस बोधि-वृक्ष की शाखा के द्वारा किया गया कन्वर्शन है। ये बुद्ध के ही सीक्रेट संदेश थे कि लंका में इस वृक्ष की शाखा पहुंचा दी जाय। ठीक समय की प्रतीक्षा की जाय और ठीक व्यक्ति की। और जब ठीक व्यक्ति आ जाय तो इसको पहुंचा दिया गया। क्योंकि इसी से वापस किसी दिन हिन्दुस्तान में फिर इस वृक्ष को लाना पड़ेगा। ये सारी की सारी अन्तर्कथाएं हैं, जिसको कहना चाहिए गुप्त इतिहास है, जो इतिहास के पीछे चलता है। इनके लिये ठीक व्यक्तियों का उपयोग करना पड़ता है। संघमित्रा और महेन्द्र दोनों बौद्ध भिक्षु थे। बुद्ध के जीवन में थे। हर किसी के साथ नहीं भेजी जा सकती थी वह शाखा। जो बुद्ध के पास जिया हो, जिसने जाना हो, और जो इस शाखा को वृक्ष की शाखा मानकर न ले जाय, जीवंत बुद्ध मानकर ले जाय, उसके ही हाथ में दी जा सकती थी। फिर लौटने की भी प्रतीक्षा करनी जरूरी है। उस वृक्ष को ठीक लोगों के हाथ से वापस आना चाहिए। ठीक लोगों के द्वारा वापस आना चाहिए। इस इतिहास के पीछे जो इतिहास है वह बात करने जैसा है। असली इतिहास वही है, जहां घटनाओं के मूल स्रोत घटित होते हैं, जहां जड़ें होती हैं, फिर तो घटनाओं का एक जाल है, जो ऊपर चलता है। वह असली इतिहास नहीं है। जो अखबार में छपता है और किताब में लिखा जाता है, वह असली इतिहास नहीं है। कभी असली इतिहास पर हमारी दृष्टि हो जाय तो फिर इन सारी चीजों का राज समझ में आता है।

●

तिलक-टीके

तिलक-टीके के संबंध में समझने के पहले दो छोटी सी घटनाएं आपसे कहूं, फिर आसान हो सकेगी बात। दो ऐतिहासिक तथ्य हैं।

१८८८ ई० में दक्षिण के एक छोटे से परिवार में एक व्यक्ति पैदा हुआ। पीछे तो वह विश्वविख्यात हुआ। उसका नाम था रामानुजम, जो बहुत गरीब ब्राह्मण घर का था और बहुत थोड़ी उसे शिक्षा मिली थी। लेकिन उस छोटे से गांव में बिना किसी विशेष शिक्षा के रामानुजम की प्रतिभा गणित के साथ अनूठी रही। जो लोग गणित मानते हैं, उनका कहना है कि मनुष्य जाति के इतिहास में रामानुजम से बड़ा और विशिष्ट गणितज्ञ नहीं हुआ। बड़े बड़े गणितज्ञ हुए, पर वे सब सुशिक्षित थे। उन्हें गणित का प्रशिक्षण मिला था। बड़े गणितज्ञों का साथ-सत्संग उन्हें मिला था। वर्षों की उनकी तैयारी रही थी। लेकिन रामानुजम की न कोई तैयारी थी, न कोई साथ मिला, न कोई शिक्षा मिली। मैट्रिक भी रामानुजम पास नहीं हुआ। इस छोटे बच्चे को मुश्किल से क्लर्की का काम मिला। लेकिन अचानक लोगों में खबर फैलने लगी कि इसकी गणित के संबंध में कुशलता अद्भुत है। किसी ने उसको सुझाव दिया कि कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी के उस समय के बड़े से बड़े गणितज्ञों में एक प्रोफेसर हार्डी थे, उनको लिखो। उसने पत्र तो नहीं लिखा, ज्योमिट्रि की दो सौ थ्योरम बनाकर

भेज दीं। हार्डी तो चकित रह गया। इतनी कम उम्र के व्यक्ति से, इस तरह के ज्यॉमिट्रि के सिद्धांतों का कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था। इसलिए तत्काल रामानुजम को यूरोप बुलाया गया। जब रामानुजम कैम्ब्रिज पहुंचा तो हार्डी, जो कि बड़े से बड़ा गणितज्ञ था उस समय विश्व का, अपने को बिल्कुल बच्चा समझने लगा रामानुजम के सामने। रामानुजम की क्षमता ऐसी थी, जिसका मस्तिष्क से संबंध नहीं मालूम पड़ता। अगर आपको कोई गणित करने को कहा जाय तो समय लगेगा। बुद्धि ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकती जिसमें समय न लगे। बुद्धि सोचेगी, हल करेगी, समय व्यतीत होगा। लेकिन रामानुजम को समय ही नहीं लगता था। यहां आप तख्ते पर सवाल लिखेंगे वहां रामानुजम उत्तर देना शुरू कर देगा। आप बोल भी न पायेंगे पूरा, और उत्तर आ जायेगा। बीच में समय का कोई व्यवधान नहीं होता। बड़ी कठिनाई खड़ी हो गयी, क्योंकि जिस सवाल को हल करने में बड़े से बड़े गणितज्ञ को छः घंटे लगेंगे ही, फिर भी जरूरी नहीं है कि सही हो, उसे सिर्फ जांचने में ही छः घण्टे गुजारने पड़ेंगे। ऐसा सवाल इधर रामानुजम को दिया और उधर उत्तर मिला। जैसे सवाल में और उत्तर में कोई समय का क्षण भी व्यतीत नहीं होता।

इससे एक बात तो सिद्ध हो गयी कि रामानुजम बुद्धि के माध्यम से उत्तर नहीं दे रहा है। बुद्धि बहुत बड़ी नहीं है उसके पास, मैट्रिक में वह फेल हुआ था। कोई बुद्धिमत्ता का और लक्षण भी न था। सामान्य जीवन में किसी चीज में भी कोई ऐसी बुद्धिमत्ता नहीं मालूम पड़ती थी। लेकिन गणित के सम्बन्ध में वह एकदम अतिमानवीय था, मनुष्य से बहुत पार की घटना उसके जीवन में होती थी। वैसे जल्दी मर गया रामानुजम। उसे क्षय रोग हो गया, वह छत्तीस साल की उम्र में मर गया। जब वह बीमार होकर अस्पताल में पड़ा था तो हार्डी अपने दो-तीन गणितज्ञ मित्रों के साथ उसे देखने गया था। दरवाजे पर हार्डी ने कार रोकी और भीतर गया। कार के पीछे का नम्बर रामानुजम को दिखायी पड़ा। उसने हार्डी से कहा, आपकी कार का जो नम्बर है, ऐसा कोई आंकड़ा ही नहीं है। नहीं किसी गणित की व्यवस्था में है। यह आंकड़ा बड़ा खूबी का है। उसने चार विशेषताएं उस आंकड़े की बतायीं। रामानुजम तो मर गया। हार्डी को छः महीने लगे वह पूरी विशेषता सिद्ध करने में। रामानुजम की तो आकस्मिक नजर पड़ गयी थी। हार्डी को छः महीने लगे, तब भी वह तीन ही सिद्ध कर पाया। चौथी विशेषता तो असिद्ध ही रह गयी। हार्डी वसीयत छोड़कर मरा कि मेरे मरने के बाद उस चौथी की खोज जारी रखी जाय। क्योंकि रामानुजम ने कहा है तो वह ठीक होगी ही। हार्डी के मर जाने के बाईस साल बाद वह चौथी घटना सही सिद्ध हो पायी कि उसने ठीक कहा था। उस आंकड़े में यह खूबी है!

रामानुजम को जब भी यह गणित की स्थिति घटती थी, तब उसकी दोनों आंखों के बीच में कुछ होना शुरू हो जाता। उसकी दोनों आंखों की पुतलियां ऊपर चढ़ जाती थीं। जिस जगह रामानुजम की आंखें चढ़ जाती थीं, योग उसको तृतीय नेत्र कहता है। उसको तीसरी आंख कहता है। अगर वह तीसरी आंख आरंभ हो जाय, तीसरी आंख सिर्फ उपमा की दृष्टि से कहता हूं, सिर्फ इस ख्याल से कि वहां से कुछ दिखायी पड़ना शुरू होता है, कोई दूसरे ही जगत का दृश्य शुरू हो जाता है। जैसे कि किसी आदमी के मकान में एक छोटा सा छेद हो, वह खुल जाय, और आकाश दिखायी पड़ने लगे। जब तक वह छेद न खुला था तो आकाश दिखायी न पड़ रहा था। करीब करीब हमारी दोनों आंखों के बीच जो भ्रू-मध्य जगह है, वहां वह छेद है जहां से हम इस लोक के बाहर देखना शुरू कर देते हैं। एक बात तय थी कि जब भी रामानुजम को कुछ ऐसा होता था, उसकी दोनों पुतलियां चढ़ जाती थीं। हार्डी नहीं समझ पाया, पश्चिम के गणितज्ञ नहीं समझ पाये, और अभी गणितज्ञ आगे भी नहीं समझ पायेंगे।

एक दूसरी घटना, और तब मैं आपको तिलक-टीके के संबंध में कुछ कहूं तो आपकी समझ में आना आसान होगा; क्योंकि तिलक का संबंध उस तीसरी आंख से है।

१९४५ में एक आदमी मरा अमरीका में, एडगर कायसी। चालीस साल पहले १९०५ में वह बीमार पड़ा और बेहोश हो गया। तीन दिन कोमा में पड़ा रहा। चिकित्सकों ने आशा छोड़ दी, और कहा कि हमें इसे कोमा के बाहर, बेहोशी के बाहर लाने का कोई उपाय नहीं सूझता। और बेहोशी इतनी गहन है कि अब यह शायद ही वापस लौट सके। सारी आशा छोड़ दी गयी; सब दवाइयां, सब इलाज कर लिये गये लेकिन होश का कोई लक्षण नहीं उभरा। तीसरे दिन शाम को चिकित्सकों ने कहा, अब हम विदा होते हैं, अब हमारे वश के बाहर है। चार-छः घंटों में यह युवक मर जायेगा, और अगर बच गया तो सदा के लिए पागल हो जायेगा, जो कि मरने से भी बुरा सिद्ध होगा। क्योंकि जितनी देर हो रही है उस बीच इसके मस्तिष्क के जो सूक्ष्म तंतु हैं, वह विसर्जित हो रहे हैं, डिसइंटीग्रेट हो रहे हैं। पर अचानक चिकित्सक हैरान हुए। कायसी जो बेहोश पड़ा था बोला, जैसे कि कोई गहरी नींद से अचानक बोले। हैरानी और ज्यादा हो गयी, क्योंकि उसका कोमा जारी था। उसका शरीर अभी भी पूरी तरह कोमा में था। लेकिन वाणी आ गयी, और कायसी ने कहा कि शीघ्रता करो, मैं एक वृक्ष से गिर पड़ा था, मेरी रीढ़ में पीछे चोट लग गयी है और उसी चोट के कारण मैं बेहोश हूं। अगर छः घंटे में मुझे ठीक नहीं किया गया तो बीमारी का जहर मेरे मस्तिष्क तक पहुंच जायेगा, फिर मेरा जिन्दा बचना असंभव हो जायगा। तुम इस नाम की जड़ी-बूटियां ले आओ और उनको इस तरह से

तैयार करके मुझे पिला दो, मैं बारह घंटे के भीतर ठीक हो जाऊंगा। इतना कह कर कायसी फिर बेहोश हो गया। जो नाम उसने लिये थे जड़ी-बूटियों के, आशा भी नहीं हो सकती थी कि कायसी को उनका पता हो, क्योंकि चिकित्सा से कभी कोई उसका संबंध नहीं था। चिकित्सकों ने कहा, यह निपट पागलपन मालूम पड़ता है, क्योंकि ये जड़ी-बूटियां इस तरह का काम करेंगी ये हमको भी पता नहीं है। लेकिन जब कोई उपाय न था, तो हर्ज भी कुछ नहीं था। वे जड़ी-बूटियां खोजी गयीं। जैसा बताया था कायसी ने, वैसा बनाकर उसे दिया गया। बारह घण्टे में वह होश में आ गया, और बिल्कुल ठीक हो गया। होश में आकर वह न बता सका कि उसने ऐसी कोई बात कही थी। वह उन दवाइयों के नाम भी न पहचान सका, वे जड़ी-बूटियां, जो उसने कही थीं। उसने कहा, यह हो ही कैसे सकता है? मुझे तो कुछ पता नहीं है। तब एक बहुत अनूठी घटना की शुरुआत हुई। फिर तो कायसी उसमें कुशल हो गया, और उसने अमरीका में तीस हजार लोगों को अपने पूरे जीवन में ठीक किया। जो भी निदान उसने किया वह सदा ठीक निकला। और जिस मरीज ने उससे निदान लिया वह सदा ठीक हुआ, निरपवाद रूप से। लेकिन कायसी खुद भी नहीं समझा सकता था कि उसे होता क्या है? इतना ही कह सकता था कि जब भी मैं आंख बन्द करता हूं कोई निदान खोजने के लिए, मेरी दोनों आंखें ऊपर चढ़ जाती हैं। मुझे ऐसा लगता है कि कोई मेरी पुतलियों को ऊपर खींचे जा रहा है। फिर मेरी दोनों आंखें भ्रू-मध्य में ठहर जाती हैं। तब मैं इस लोक को भूल जाता हूं। फिर मुझे पता नहीं क्या होता है। इसे मैं भूलता हूं, यहां तक मुझे पता है। फिर क्या होता है, इसका मुझे कोई पता नहीं। लेकिन जब तक मैं इसको नहीं भूल जाता, तब तक वह निदान जो मैं लेता हूं वह नहीं आता है। निदान उसने ऐसे ऐसे दिये कि एक-दो निदान सोच लेने जैसे हैं।

रथचाइल्ड अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति, अरबपति परिवार है। उस परिवार की एक महिला बीमार थी जिस पर करने को कोई इलाज नहीं बचा था, सब इलाज हो गये थे। फिर कायसी के पास उसको लाया गया। कायसी ने एक दवा का नाम दिया अपनी बेहोशी में। हमारी तरफ से हम उसे कहेंगे बेहोशी ही। लेकिन जो जानते हैं इस रहस्य के बारे में उनकी तरफ से तो वह बड़े होश में है, उनके लिहाज से हम बेहोश हैं। सच तो यह है कि जब तक तीसरी आंख तक ज्ञान न पहुंचे, तब तक बेहोशी जारी रहती है। रथचाइल्ड तो अरबपति परिवार था। सारे अमरीका में खोजबीन की गयी उस दवा की. पर वह दवा कहीं मिली नहीं। कोई यह भी नहीं बता सका कि इस तरह की कोई दवा है भी। सारी दुनिया के अखबारों में विज्ञापन दिया गया कि कहीं से भी कोई इस नाम की दवा की सूचना भेजे। कोई बीस दिन बाद स्वीडन से एक आदमी ने जवाब दिया कि इस नाम की दवा है नहीं। बीस

साल पहले मेरे पिता ने इस नाम की दवा पेटेंट करवाई थी, लेकिन फिर कभी बनायी नहीं। वह सिर्फ पेटेंट है। कभी बाजार में आयी नहीं। दवा भी हमारे पास नहीं है, पिता मर चुके हैं, और वह प्रयोग कभी सफल हुआ नहीं। सिर्फ फार्मूला हमारे पास है, वह हम पहुंचा देते हैं। वह फार्मूला पहुंचाया गया, वह दवा बनी और वह स्त्री ठीक हो गयी। लेकिन वह दवा कह[illegible] थी नहीं दुनिया के बाजार में, जिसका कायसी को पता हो सके। दूसरी एक घटना म[illegible] एक दवा का नाम लिया। उसकी बहुत खोजबीन की गयी, वह दवा नहीं मिल सकी। साल भर बाद अखबारों में उस दवा का विज्ञापन निकला। वह दवा उस वक्त बन रही थी किसी प्रयोगशाला में जब उसने कहा। तब तक उसका नाम भी तय नहीं हुआ था। जो नाम उसने साल भर पहले लिया था उस नाम की दवा साल भर बाद बाहर आयी। और उसी दवा से वह मरीज ठीक हुआ। कई बार उसने दवाएं बतायीं जो खोजी न जा सकीं और मरीज मर गये। वह भी कहता था, मैं कुछ कर नहीं सकता, मेरे हाथ की बात नहीं है। मुझे पता नहीं कि जब मैं बेहोश होता हूं तब कौन बोलता है, कौन देखता है, मुझे कुछ पता नहीं। मुझमें और उस व्यक्तित्व में कोई भी संबंध नहीं है। पर एक बात तय थी कि कायसी जब भी बोलता तब उसकी दोनों आंखें चढ़ गयी होती थीं। आप भी जब गहरी नींद में सोते हैं तो आपकी भी दोनों आंखें जितनी गहरी नींद होती है, उतनी ऊपर चली जाती हैं।

अभी तो मनोवैज्ञानिक नींद पर बहुत से प्रयोग कर रहे हैं। आपकी आंख की पुतली कितनी ऊपर गयी है उससे ही तय किया जाता है कि आप कितनी गहरी नींद में हैं। जितनी आंख की पुतली नीचे होती है उतनी गतिमान होती है, ज्यादा। उतना ज्यादा मूवमेंट होता है। और आंख की पुतलियों में जितनी गति होती है उतनी तेजी से आप सपना देख रहे होते हैं। यह सब सिद्ध हो चुका है वैज्ञानिक परीक्षणों से। उसको वैज्ञानिक कहते हैं आर. ई. एम.–'रैम', रैपिड आई मूवमेंट। रैम की कितनी मात्रा है इससे तय होता है कि आप कितनी गति का सपना देख रहे हैं। और आंख की पुतली जितनी नीची होती है, रैम की मात्रा उतनी ही ज्यादा होती है; जितनी ऊपर चढ़ने लगती है, रैम कम होने लगती है। और जब बिल्कुल स्थिर हो जाती है आंख वहां जाकर, जहां कि दोनों आंखें मध्य में देखती हैं ऐसी प्रतीति होती है, वहां जाकर रैम बिल्कुल ही बन्द हो जाता है, बिल्कुल ही। पुतली में कोई तरह की गति नहीं रह जाती। वह जो अगति है पुतली की वही गहन से गहन निद्रा है। योग कहता है कि गहरी सुषुप्ति में हम वहीं पहुंच जाते हैं जहां समाधि में होते हैं। फर्क इतना ही होता है, सुषुप्ति में हमें पता नहीं होता है, समाधि में हमें पता होता है। गहरी सुषुप्ति में आंख जहां ठहरती है वहीं गहरी समाधि में भी ठहरती है।

ये दोनों घटनाएं मैंने आपसे कही हैं यह इंगित करने को कि आपकी दोनों

आंखों के बीच म एक बिन्दु है जहां से यह संसार नीचे छूट जाता है और दूसरा संसार शुरू होता है। वह बिन्दु द्वार है। उसके इस पार वह जगत है जिस जगत से हम परिचित हैं, उसके उस पार एक अपरिचित और अलौकिक जगत है। उस अलौकिक जगत के प्रतीक की तरह सबसे पहले तिलक खोजा गया। और तिलक हर कहीं लगा देने की बात नहीं है। जो व्यक्ति हाथ रखकर आपका वह बिन्दु खोज सकता है वही आपको बता सकता है कि तिलक कहां लगाना है। हर कहीं तिलक लगाने से कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। फिर प्रत्येक व्यक्ति का बिन्दु भी एक ही जगह नहीं होता। यह जो दोनों आंखों के बीच तीसरी आंख है, यह प्रत्येक व्यक्ति की बिल्कुल एक जगह नहीं होती। अन्दाजन दोनों आंखों के बीच में, ऊपर होती है। पर फर्क होते हैं। अगर किसी व्यक्ति ने पिछले जन्मों में बहुत साधना की है और समाधि के छोटे मोटे अनुभव पाये हैं तो उसी हिसाब से वह बिन्दु नीचे आता जाता है। अगर इस तरह की कोई सावना नहीं होती है तो वह बिन्दु काफी ऊपर होता है। उस बिन्दु की अनुभूति से यह भी जाना जाता है कि आपके पिछले जन्मों की साधना क्या कुछ है; समाधि की दिशा में? आपने तीसरी आंख से दुनिया को कभी देखा है? क्या कभी आपके किसी जन्म में ऐसी कोई घटना घटी है? आपका वह बिन्दु, वह स्थान बतायेगा कि ऐसी घटना घटी है या नहीं घटी है। अगर ऐसी घटना बहुत घटी है तो वह बिन्दु बहुत नीचे आ जायेगा। वह करीब करीब दोनों आंखों के समतल भी आ जाता है। उससे नीचे नहीं आ सकता। अगर बिल्कुल समतल बिन्दु हो, दोनों आंखों के बिल्कुल बीच में आ गया हो, तो जरा से इशारे से आप समाधि में प्रवेश कर सकते हैं। इतने छोटे इशारे से कि जिसको हम कह सकते हैं, इशारा बिल्कुल असंगत है। इसलिए बहुत दफा जब कुछ लोग बिल्कुल ही अकारण समाधि में प्रवेश कर जाते हैं तो हमें बड़ी अजीब सी बात मालूम पड़ती है। जैसे कि ज़ेन साध्वी के जीवन में कथा है:

वह लौटती थी कुएं से पानी भर कर। घड़ा गिर गया। और घड़े के गिरने के साथ उसकी समाधि लग गयी। और पूर्ण ज्ञान उपलब्ध हुआ। कैसी फिज़ूल की बात लगती है, घड़े का गिरना या घड़े का फूट जाना और समाधि का लगना। कोई संगति नहीं है। लाओ-त्से के जीवन में उल्लेख है कि वृक्ष के नीचे बैठा था, पतझड़ के दिन थे, वृक्ष के पत्ते नीचे गिरने लगे, और लाओ-त्से परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। अब वृक्ष से गिरते हुए पत्ते का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह घटना तब घट सकती है जब कि पिछले जन्मों में यात्रा इतनी हो चुकी हो कि वह तीसरा बिन्दु दोनों आंखों के बिल्कुल बीच में आ गया हो। क्योंकि तब शायद आखिरी तिनके की जरूरत है और तराजू बैठ जाय। आखिरी तिनका कोई भी चीज बन सकती है। तो तिलक अगर ठीक ठीक लगाया जाय, तो वह कई अर्थों का सूचक था। वे सारे अर्थ समझने पड़ेंगे।

पहला तो, वह इस बात का सूचक था कि जब एक बार गुरु ने बता दिया कि तिलक यहां लगाना है ठीक जगह, तो आपको भी उस ठीक जगह का अनुभव होने लगे, तिलक लगाने का पहला प्रयोजन यही है। आपने कभी ख्याल नहीं किया होगा कि आप आंख बन्द करके बैठ जायं, और कोई व्यक्ति आपकी दोनों आंखों के बीच में सिर के पास उंगली ले जाय तो बन्द आंख में भी आपके भीतर एहसास होना शुरू हो जायेगा कि कोई आंख की तरफ उंगली किये हुए है। वह तीसरी आंख की प्रतीति है।

अगर ठीक तीसरी आंख पर तिलक लगा दिया जाय, उसी मात्रा, उतने ही अनुपात का तिलक लगा दिया जाय, ठीक जितनी बड़ी तीसरी आंख की स्थिति है, तो आपको पूरे शरीर को छोड़कर उसी का स्मरण चौबीस घण्टे रहने लगेगा। वह स्मरण पहला तो यह काम करेगा कि आपका शरीर-बोध कम होता जायेगा, और तिलक-बोध बढ़ता जायेगा। एक क्षण ऐसा आ जाता है जब कि पूरे शरीर में सिर्फ तिलक ही स्मरण रह जाता है, बाकी सारा शरीर भूल जाता है। और जिस दिन ऐसा हो जाय, उसी दिन आप तीसरी आंख को खोलने में समर्थ हो सकते हैं। तिलक के साथ जुड़ी हुई साधनाएं थीं कि पूरे शरीर को भूल जाओ। सिर्फ तिलक मात्र की जगह याद रह जाय। इसका अर्थ यह हुआ कि सारी चेतना सिकुड़कर फोकस्ड हो जाय तीसरी आंख पर। तीसरी आंख के खोलने की जो कुंजी है वह फोकस्ड कांसेसनेस है। उससे चेतना पूरी की पूरी इकट्ठी हो जाय और सारे शरीर से सिकुड़कर उस छोटे से स्थान पर लग जाय। बस, उसकी मौजूदगी से काम हो जायगा। जैसे हम सूरज की किरणों को एक छोटे से लेंस के द्वारा एक कागज पर गिरा लें, तो इकट्ठी हो गयी किरणें आग पैदा कर देंगी। वे ही किरणें सिर्फ धूप पैदा कर रही थीं उनसे आग पैदा नहीं होती थी। वे ही किरणें आग पैदा कर सकती हैं, संग्रहीत होने पर। चेतना शरीर पर जब बंटी रहती है तो सिर्फ जीवन का काम-चलाऊ उपयोग उससे होता है। चेतना अगर तीसरे नेत्र के पास पूरी इकट्ठी हो जाय तो जो तीसरे नेत्र की बाधा, जो द्वार, जो बन्दपन है वह टूट जाता है, जल जाता है, राख हो जाता है, और हम उस आकाश को देखने में समर्थ हो जाते हैं जो हमारे ऊपर फैला है।

तिलक का पहला उपयोग यह था कि आपको ठीक ठीक जगह बता दी जाय शरीर में कि चौबीस घण्टे इस जगह का स्मरण रखना है। सब तरफ से चेतना को सिकोड़कर इस जगह ले आना है। दूसरा यह कि गुरु को रोज रोज देखने की जरूरत न पड़े, रोज आपके माथे पर हाथ रखने की भी जरूरत न पड़े; क्योंकि जैसे जैसे वह बिन्दु नीचे सरकेगा वैसे वैसे आपको एहसास होगा, और आपका तिलक भी नीचा होता जायगा। आपको रोज तिलक लगाते वक्त ठीक वहीं तिलक लगाना

है जहां उस बिन्दु का आपको एहसास होता हो। हजार शिष्य हैं एक गुरु के। एक शिष्य आता है, झुकता है, तभी गुरु देख लेता है कि तिलक कहां है? इसकी बात करने की जरूरत नहीं रह जाती। वह देख लेता है कि तिलक नीचे सरक रहा है कि नहीं सरक रहा है। तिलक उसी जगह है कि तिलक में कोई अन्तर पड़ रहा है। वह कोड है। दिन में दो-चार दफा शिष्य आयेगा और गुरु देख लेगा कि तिलक गतिमान है कि नहीं? वह आगे गति कर रहा है, रुका हुआ है या ठहरा हुआ है? किसी दिन स्वयं शिष्य के माथे पर हाथ रखकर पुनः देख पायेगा। अगर शिष्य को पता नहीं चल रहा है तिलक के हटने का, तो उसका मतलब है कि चेतना पूरी की पूरी इकट्ठी नहीं की जा रही है। अगर वह तिलक गलत जगह लगाये हुए है और बिन्दु दूसरी जगह है तो इसका मतलब है कि उसकी कांसेसनेस, उसकी रिमेंबरिंग, उसकी स्मृति ठीक बिन्दु को नहीं पकड़ पा रही है। वह भी गुरु को पता चल जायगा। जैसे जैसे यह तिलक नीचे आता जायेगा वैसे वैसे प्रयोग बदलने पड़ेंगे साधना के। यह तिलक करीब करीब वैसा ही काम करेगा जैसे एक अस्पताल में एक मरीज के पास लटका हुआ चार्ट काम करता है। नर्स चार्ट पर लिख जाती है, कितना है ताप, कितना है ब्लड प्रेशर, क्या है, क्या नहीं? डाक्टर को आकर सिर्फ देखने की जरूरत नहीं होती है, वह चार्ट पर एक क्षण नजर डाल लेता हैं, बात पूरी हो जाती है। पर इससे भी अद्भुत था यह प्रयोग कि माथे पर पूरा का पूरा इंगित लगा था, जो सब तरह की खबर देता। अगर ठीक-ठीक इसका प्रयोग किया जाता तो गुरु को पूछने की कभी जरूरत न पड़ती कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। वह जानता है, क्या हो रहा है। क्या सहायता पहुंचानी है, वह यह भी जानता है। क्या प्रयोग बदलना है, कौन सी विधि रूपांतरित करनी है, वह भी जानता है। तो साधना की दृष्टि से तिलक का ऐसा मूल्य था।

दूसरा, जो हमारी तीसरी आंख का बिन्दु है, वह हमारे संकल्प का भी बिन्दु है। उसको योग में आज्ञाचक्र कहते हैं। आज्ञाचक्र इसीलिए कहते हैं कि हमारे जीवन में जो कुछ भी अनुशासन है वह उसी चक्र से पैदा होता है। हमारे जीवन में जो भी व्यवस्था है, जो भी आर्डर है, जो भी संगति है, वह उसी बिन्दु से पैदा होती है। इसे ऐसा समझें––हम सबके शरीर में सेक्स का सेंटर है। सेक्स से समझना आसान पड़ जायेगा। क्योंकि वह हम सबका परिचित है, यह आज्ञा का चक्र हम सबका परिचित नहीं है। हमारे जीवन की सारी वासना और कामना सेक्स के चक्र से पैदा होती है। जब तक यह चक्र सक्रिय नहीं होता तब तक काम-वासना पैदा नहीं होती। काम-वासना लेकर बच्चा पैदा होता है। काम-वासना का पूरा यंत्र लेकर पैदा होता है। कोई कमी नहीं होती। कुछ मामले में तो बहुत हैरानी की बात है। स्त्रियां तो अपने जीवन के सारे रजकण भी लेकर पैदा होती हैं। फिर कोई नया रजकण पैदा

नहीं होता। प्रत्येक स्त्री कितने बच्चों को जन्म दे सकती है, वह सब अण्डे लेकर पैदा होती है––करोड़ों। पहले दिन की बच्ची भी, जब मां के पेट से पैदा होती है तो अपने जीवन के समस्त अण्डों की संख्या अपने भीतर लिये हुए पैदा होती है। हर महीने एक अण्डा उसके कोष से निकल कर सक्रिय हो जायगा। अगर वह अण्डा पुरुष वीर्य से मिल जाय, संयुक्त हो जाय, तो बच्चे का जन्म होता है। एक भी नया अण्डा फिर स्त्री में पैदा नहीं होता। लेकिन काम-वासना नहीं पैदा होती है तब तक, जब तक कि काम-वासना का चक्र शुरू न हो जाय। वह चक्र जब तक अगति में पड़ा है, ठहरा हुआ है, तब तक काम का पूरा यंत्र, काम की पूरी आयोजना, शरीर के पास काम की पूरी शक्ति होने के बावजूद भी काम-वासना पैदा नहीं होगी। काम-वासना पैदा होगी, जैसे ही काम का सेन्टर गतिमान होगा, गत्यात्मक होगा। चौदह वर्ष की उम्र में या तेरह वर्ष की उम्र में वह गतिमान हो जायगा। गतिमान होते ही जो यंत्र पड़ा था बन्द बिल्कुल, वह पूरी सक्रियता ले लेगा। इस एक ही चक्र से, आमतौर से हम परिचित हैं। वह भी इसीलिए परिचित हैं कि उसे हम शुरू नहीं करते, उसे प्रकृति शुरू करती है। अगर हमें ही उसे शुरू करना हो, तो इस जगत में थोड़े ही से लोग काम-वासना से परिचित हो पायेंगे। वह तो प्रकृति शुरू करती है, इसलिए हमें पता चलता है, कि वह है। कभी आपने सोचा है कि जरा सा विचार वासना का, और जननेंद्रिय का पूरा यंत्र सक्रिय हो जाता है। विचार चलता है मस्तिष्क में, यंत्र होता है बहुत दूर। परन्तु तत्काल चक्र सक्रिय हो जाता है। असल में आपके चित्त में काम-वासना का कोई भी विचार उठे, तत्काल सेक्स का सेन्टर उसे अपनी ओर खींच लेता है। उसे उस ओर जाना ही पड़ेगा। जाने की और कोई जगह नहीं है। जैसे पानी गड्ढे में चला जाता है, वैसा प्रत्येक संबंधित विचार अपने चक्र पर चला जाता है। तो दोनों आंखों के बीच में जो तीसरे नेत्र की मैं बात कर रहा हूँ, वही जगह आज्ञाचक्र की है। इस आज्ञा के सम्बन्ध में थोड़ी बात समझ लेनी जरूरी है।

जिन लोगों के भी जीवन में यह चक्र प्रारंभ नहीं होगा वह हजार तरह की गुलामियों में बंधे रहेंगे। वे गुलाम ही रहेंगे। इस चक्र के बिना स्वतंत्रता कोई है नहीं है। यह बहुत हैरानी की बात मालूम पड़ेगी। हमने बहुत तरह की स्वतंत्रता सुनी हैं––राजनीतिक, आर्थिक। ये स्वतंत्रताएं वास्तविक नहीं हैं। क्योंकि जिस व्यक्ति का आज्ञाचक्र सक्रिय नहीं है, वह किसी न किसी तरह की गुलामी में रहेगा। एक गुलामी से छूटेगा दूसरी में पड़ेगा, दूसरी से छूटेगा तीसरी में पड़ेगा। वह गुलाम रहेगा ही। उसके पास मालिक होने का तो अभी चक्र ही नहीं है जहां से मालकियत की किरणें पैदा होती हैं। उसके पास संकल्प जैसी, 'विल' जैसी कोई चीज ही नहीं है। वह अपने को आज्ञा दे सके ऐसी उसकी सामर्थ्य नहीं है, बल्कि उसके शरीर और उसकी

इंद्रिया ही उसको आज्ञा दिये चली जाती हैं। पेट कहता है भूख लगी है, तो उसको भूख लगती है। काम-वासना का बिन्दु कहता है वासना जगो, तो उसे वासना जगती है। शरीर कहता है बीमार हूं, तो वह बीमार हो जाता है। शरीर कहता है बूढ़ा हो गया, तो वह बूढ़ा हो गया। शरीर आज्ञा देता है, आदमी आज्ञा मानकर चलता रहता है। लेकिन यह जो आज्ञाचक्र है, इसके जगते ही शरीर आज्ञा देना बन्द कर देता है और आज्ञा लेना शुरू कर देता है। पूरा का पूरा आयोजन बदल जाता है और उल्टा हो जाता है। वैसा आदमी अगर बहते हुए खून को कह दे रुक जाओ, तो वह बहता हुआ खून रुक जायेगा। वैसा आदमी अगर कह दे हृदय की धड़कन को कि ठहर जा, तो हृदय की धड़कन ठहर जायेगी। वैसा आदमी कहे अपनी नब्ज से कि मत चल, तो नब्ज चल न सकेगी। वैसा आदमी अपने शरीर, अपने मन, अपनी इंद्रियों का मालिक हो जाता है। पर इस चक्र के बिना शुरू हुए मालिक नहीं होता। इस चक्र का स्मरण जितना ज्यादा रहे, उतनी ही ज्यादा आपके भीतर, स्वयं की मालिकी पैदा होनी शुरू होती है। आप गुलाम की जगह मालिक बनना शुरू होते हैं।

योग ने उस चक्र को जगाने के बहुत बहुत प्रयोग किये हैं। उस में तिलक भी एक प्रयोग है। स्मरणपूर्वक, अगर कोई चौबीस घण्टे उस चक्र पर बार बार ध्यान को ले जाता रहे तो बड़े परिणाम आते हैं। अगर तिलक लगा हुआ है तो बार बार ध्यान जायेगा। तिलक के लगते ही वह स्थान पृथक हो जाता है। वह बहुत सेंसिटिव स्थान है। अगर तिलक ठीक जगह लगा है तो आप हैरान होंगे, आपको उसकी याद करनी ही पड़ेगी। संभवतः शरीर में वह सर्वाधिक संवेदनशील जगह है। उसकी संवेदनशीलता का स्पर्श करना, और वह भी खास चीजों से स्पर्श करने की विधि है —जैसे चंदन का तिलक लगाना। सैकड़ों और हजारों प्रयोगों के बाद तय किया था कि चन्दन का क्यों प्रयोग करना है? एक तरह की रेंजोनेंस है चन्दन में, और उस स्थान की संवेदनशीलता में। चंदन का तिलक उस बिन्दु की संवेदनशीलता को और गहन करता है, और घना कर जाता है। हर कोई तिलक नहीं करेगा। कुछ चीजों के तिलक तो उसकी संवेदनशीलता को मार देंगे, बुरी तरह मार देंगे। जैसे आज स्त्रियां टीका लगा रही हैं। बहुत से बाजारू टीके हैं वे, उनकी कोई वैज्ञानिकता नहीं है। उनका योग से कोई लेना-देना नहीं है। वे बाजारू टीके नुकसान कर रहे हैं। वह नुकसान करेंगे। सवाल यह है कि वह संवेदनशीलता को बढ़ाते हैं या घटाते हैं? अगर घटाते हैं संवेदनशीलता को तो नुकसान करेंगे। अगर बढ़ाते हैं तो फायदा करेंगे। और प्रत्येक चीज के अलग अलग परिणाम हैं। इस जगत में छोटे से फर्क से सारा फर्क पड़ता है। इसको ध्यान में रखते हुए कुछ विशेष चीजें खोजी गयी थीं, जिनका ही उपयोग किया जाय। यदि आज्ञा का चक्र संवेदनशील हो सके, सक्रिय

हो सके तो आपके व्यक्तित्व में एक गरिमा और इन्टीग्रीटी आनी शुरू होगी, एक समग्रता पैदा होगी। आप एक जूट होने लगते हैं। कोई चीज आपके भीतर इकट्ठी हो जाती है, खण्ड खण्ड नहीं, अखण्ड हो जाती है।

इस सम्बन्ध में टीके के लिए भी पूछा है तो वह भी ख्याल में ले लेना चाहिए। तिलक से थोड़ा हटकर टीके का प्रयोग शुरू हुआ। विशेषकर स्त्रियों के लिए शुरू हुआ। उसका कारण वही था, योग का अनुभव काम कर रहा था। असल में स्त्रियों का आज्ञाचक्र बहुत कमजोर चक्र है--होगा ही। क्योंकि स्त्री का सारा व्यक्तित्व निर्मित किया गया समर्पण के लिए। उसके सारे व्यक्तित्व की खूबी समर्पण की है। आज्ञाचक्र अगर उसका बहुत मजबूत हो तो समर्पण करना मुश्किल हो जायगा। स्त्री के पास आज्ञा का चक्र बहुत कमजोर है, असाधारण रूप से कमजोर है। इस-लिए स्त्री सदा ही किसी न किसी का सहारा मांगती रहेगी, चाहे वह किसी रूप में हो। अपने पर खड़े होने का पूरा साहस नहीं जुटा पायेगी। कोई सहारा, किसी के कन्धे पर हाथ, कोई आगे हो जाय, कोई आज्ञा दे और वह मान ले, इसमें उसे सुख मालूम पड़ेगा। स्त्री के आज्ञाचक्र को सक्रिय बनाने के लिए अकेली कोशिश इस मुल्क में हुई है, और कहीं भी नहीं हुई। और वह कोशिश इसलिए थी कि अगर स्त्री का आज्ञाचक्र सक्रिय नहीं होता तो परलोक में उसकी कोई गति नहीं होती। साधना में उसकी कोई गति नहीं होती। उसके आज्ञाचक्र को तो स्थिर रूप से मजबूत करने की जरूरत है। लेकिन अगर यह आज्ञाचक्र साधारण रूप से मजबूत किया जाय तो उसके स्त्रैण होने में कमी पड़ेगी और उसमें पुरुषत्व के गुण आने शुरू हो जायेंगे। इसलिए इस टीके को अनिवार्य रूप से उसके पति से जोड़ने की चेष्टा की गयी। उसके जोड़ने का कारण है। इस टीके को सीधा नहीं रख दिया गया उसके माथे पर, नहीं तो उसमें स्त्रीत्व कम होगा। वह जितनी स्वनिर्भर होने लगेगी, उतनी ही उसकी कमनीयता, उसका कौमार्य, नष्ट हो जायेगा। वह दूसरे का सहारा खोजती है इससे उसमें एक तरह की कोमलता है। पर जब वह अपने सहारे खड़ी होगी तो एक तरह की कठोरता अनिवार्य हो जायेगी। तब बड़ी बारीकी से ख्याल किया गया कि उसको सीधा टीका लगा दिया जाय तो नुकसान पहुंचेगा उसके व्यक्तित्व में। उसके मां होने में बाधा पड़ेगी। उसके समर्पण में बाधा पड़ेगी। इसलिए उसकी आज्ञा को उसके पति से ही जोड़ने का समग्र प्रयास किया गया। इस तरह दोहरे फायदे होंगे। उसके स्त्रैण होने में अन्तर नहीं पड़ेगा बल्कि अपने पति के प्रति ज्यादा अनुगत हो पायेगी, और फिर भी उसकी आज्ञा का चक्र सक्रिय हो सकेगा।

इसे ऐसा समझिये, आज्ञा का चक्र जिससे भी संबंधित कर दिया जाय, उसके विपरीत कभी नहीं जाता। चाहे गुरु से संबंधित कर दिया जाय तो गुरु के विपरीत

कभी नहीं जाता। चाहे पति से संबंधित कर दिया जाय तो पति से विपरीत कभी नहीं जाता। जिससे भी संबंधित कर दिया जाय उसके विपरीत व्यक्तित्व नहीं जाता। अगर उस स्त्री के माथे पर ठीक जगह पर टीका है तो वह सिर्फ पति के प्रति तो अनुगत हो सकेगी, शेष सारे जगत के प्रति वह सबल हो जायेगी। यह करीब करीब स्थिति वैसी है, अगर आप सम्मोहन के संबंध में कुछ समझते हैं तो इसे जल्दी समझ जायेंगे। अगर आपने किसी सम्मोहक को लोगों को सम्मोहित करते, हिप्नोटाइज करते देखा तो आप एक चीज देखकर जरूर ही चौंके होंगे। वह चीज यह कि अगर सम्मोहन करने वाला व्यक्ति किसी को सम्मोहित कर दें, या आप खुद किसी को सम्मोहित कर दें तो आपके सम्मोहित कर देने के बाद वह व्यक्ति किसी दूसरे की आवाज नहीं सुनेगा, सिर्फ आपकी सुन सकेगा। बहुत मजे की घटना घटती है। सम्मोहित कर देने के बाद सारे हाल में हजारों लोग चिल्लाते रहें, बात करते रहें, वह बेहोश पड़ा हुआ आदमी कुछ सुनेगा नहीं। लेकिन जिसने सम्मोहित किया है वह धीमे से भी बोले, तो भी सुनेगा। यह करीब करीब, जो मैं आपको टीके के बारे में समझा रहा हूं, उससे जुड़ी हुई घटना है। वह व्यक्ति जैसे ही सम्मोहित किया गया वैसे ही सम्मोहित करने वाले के प्रति ही सिर्फ उसकी ओपनिंग और खुलापन रह गया है, बाकी सबके लिए क्लोज हो गया। आप उसको कुछ नहीं कह सकते। आप उसके कान के पास कितना ही चिल्लायें, वह बिल्कुल नहीं सुनेगा, नगाड़े बजायें तो नहीं सुनेगा। और जिसने सम्मोहित किया है वह धीमे से भी आवाज दे, कि खड़े हो जाओ, वह तत्काल खड़ा हो जायेगा। उसकी चेतना में सिर्फ एक द्वार रह गया है, बाकी सब तरफ से बन्द हो गयी है। जिसने सम्मोहित किया है, आज्ञाचक्र उससे बंध गया है।

ठीक इसी सजेस्टीब्लीटी का, इसी मंत्र का उपयोग स्त्री के टीके में किया गया है। उसको उसके पति के साथ जोड़ देना है। एक ही तरफ उसका अनुगत भाव रह जायेगा, एक ही तरफ वह समर्पित हो पायेगी। शेष सारे जगत के प्रति वह मुक्त और स्वतंत्र हो जायेगी। अब उसके स्त्री तत्व पर कोई बाधा नहीं पड़ेगी। इसीलिए जैसे ही पति मर जाय टीका हटा देना है, वह इसीलिए हटा देना है कि अब उसका किसी के प्रति भी अनुगत होने का कोई सवाल नहीं रहा। लोगों को इस बात का कतई ख्याल नहीं है, उनको तो ख्याल है कि टीका पोंछ दिया, क्योंकि विधवा हो गयी। पोंछने का प्रयोजन है। अब उसके अनुगत होने का कोई सवाल नहीं रहा। सच तो यह है कि अब उसको पुरुष की भांति ही जीना पड़ेगा। अब उसमें जितनी स्वतंत्रता आ जाय, उतनी उसके जीवन के लिए हितकर होगी। जरा सा भी छिद्र वल्नरेब्लिटी का, जरा सा भी छेद जहां से वह अनुगत हो सके, वह हट जाय।

टीके का प्रयोग एक बहुत ही गहरा प्रयोग है। लेकिन ठीक जगह पर हो, ठीक वस्तु का हो, ठीक नियोजित ढंग से लगाया गया हो तो ही कारगर है अन्यथा बेमानी है। सजावट हो, श्रृंगार हो, उसका कोई मूल्य नहीं है, उसका कोई अर्थ नहीं है। तब वह सिर्फ एक औपचारिक घटना है। इसलिए पहली बार जब टीका लगाया जाय तो उसका पूरा अनुष्ठान है। और पहली दफा जब गुरु तिलक दे तब उसका पूरा अनुष्ठान है। वह पूरे अनुष्ठान से ही लगाया जाय तो ही परिणामकारी होगा, अन्यथा परिणामकारी नहीं होगा। आज सारी चीजें हमें व्यर्थ मालूम पड़ने लगी हैं, उसका कारण है। आज तो व्यर्थ हैं। क्योंकि उनके पीछे का कोई भी वैज्ञानिक रूप नहीं है। सिर्फ उसकी खोल रह गयी है, जिसको हम घसीट रहे हैं। जिसको हम खींच रहे हैं बेमन, जिसके पीछे मन का कोई लगाव नहीं रह गया है, आत्मा का कोई भाव नहीं रह गया है, और उसके पीछे की पूरी वैज्ञानिकता का कोई सूत्र भी मौजूद नहीं है। यह जो आज्ञाचक्र है, इस संबंध में दो-तीन बातें और समझ लेनी चाहिए। क्योंकि यह काम आ सकता है। इसका उपयोग किया जा सकता है।

आज्ञाचक्र की जो रेखा है, उस रेखा से ही जुड़ा हुआ हमारे मस्तिष्क का भाग है। इससे ही हमारा मस्तिष्क शुरू होता है। लेकिन अभी भी हमारे मस्तिष्क का आधा हिस्सा बेकार पड़ा हुआ है साधारणतः। हमारा जो प्रतिभाशाली से प्रतिभाशाली व्यक्ति होता है, जिसको हम जीनियस कहें, उसका भी केवल आधा ही मस्तिष्क काम करता है, आधा काम नहीं करता। वैज्ञानिक बहुत परेशान हैं, फिजियोलोजिस्ट बहुत परेशान हैं कि यह आधी खोपड़ी का जो हिस्सा है, यह किसी भी काम में नहीं आता। अगर आपके इस आधे हिस्से को काटकर निकाल दिया जाय तो आपको पता भी नहीं चलेगा। आपको पता ही नहीं चलेगा कि कहीं कोई चीज कम हो गयी है। क्योंकि उसका तो कभी उपयोग ही नहीं हुआ है। वह न होने के बराबर है। लेकिन वैज्ञानिक जानते हैं कि प्रकृति कोई भी चीज व्यर्थ निर्मित नहीं करती। भूल होती है, एकाध आदमी के साथ हो सकती है। यह तो हर आदमी के साथ आधा मस्तिष्क खाली पड़ा हुआ है। बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा हुआ है, उसमें कहीं कोई चहल-पहल भी नहीं हुई है। योग का कहना है, कि वह जो आधा मस्तिष्क है वह आज्ञाचक्र के चलने के बाद शुरू होता है। आधा मस्तिष्क आज्ञाचक्र के नीचे के चक्रों से जुड़ा हुआ है, और आधा मस्तिष्क आज्ञाचक्र के ऊपर के चक्रों से जुड़ा हुआ है। नीचे के चक्र शुरू होते हैं तो आधा मस्तिष्क काम करता है, और जब आज्ञा के ऊपर काम शुरू होता है तब शेष आधा मस्तिष्क काम शुरू करता है।

इस संबंध में, हमें ख्याल भी नहीं आता, जब तक कोई चीज सक्रिय न हो जाय। हम सोच भी नहीं सकते। सोचने का भी कोई उपाय नहीं है। जब कोई चीज

सक्रिय होती है तभी हम पता चलता है। स्वीडन में एक आदमी गिर पड़ा ट्रेन से। गिरने के बाद जब वह अस्पताल में भर्ती किया गया तो उसे दस मील के क्षेत्र की रेडियो की आवाजें पकड़ने लगीं, उसके कान में। पहले तो वह समझा कि उसका दिमाग कुछ खराब हो रहा है। पहले तो साफ भी नहीं था, उसे गुनगुनाहट मालूम होती थी। लेकिन दो-तीन सप्ताह में चीजें साफ होने लगीं तब उसने घबड़ाकर डाक्टर से कहा, यह मामला क्या है? मुझे तो ऐसा सुनायी पड़ता हैं जैसे कोई रेडियो मेरे कान के पास लगाये हुए है। डाक्टर ने पूछा, तुम्हें क्या सुनायी पड़ रहा है? उसने जो गीत की कड़ी बतायी वह डाक्टर अभी अपने रेडियो से सुन कर आ रहा है। उसने कहा, यह मुझे अभी थोड़ी देर पहले सुनायी पड़ी। और फिर तो स्टेशन बन्द हो गया टाइम बताकर, कि इतना टाइम है। तब तो रेडियो लाकर, लगाकर, जांच-पड़ताल की गयी और पाया गया कि उस आदमी का कान ठीक रेडियो की तरह रिसेप्टिव का काम कर रहा है, उतना ही आग्राहक हो गया है। अन्त में उसका आपरेशन करना पड़ा। नहीं तो यह आदमी पागल हो जाय। क्योंकि ऑन-ऑफ का तो कोई उपाय नहीं था। वह चौबीस घंटे चल रहा था, जब तक वह स्टेशन चलेगा तब तक वह आदमी चल रहा था। लेकिन एक बात जाहिर हो गयी कि कान की एक यह भी संभावना हो सकती है। और यह भी तय हो गया उसी दिन कि इस सदी के पूरे होते होते हम कान का ही उपयोग करेंगे रेडियो के लिए। इतने इतने बड़े यंत्रों को बनाने की और ढोने की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। लेकिन तब एक छोटी सी व्यवस्था, जो कान पर लगायी जा सके और जिसे ऑन-ऑफ किया जाय सके पर्याप्त होगी। सिर्फ ऑन-ऑफ किया जा सके, उतनी व्यवस्था! उस आदमी की आकस्मिक घटना से यह एक ख्याल जन्मा, बिल्कुल आकस्मिक! इस जगत में जो जो नयी घटनाएँ घटती हैं या नये दृष्टिकोण खुलते हैं, वह हमेशा एक्सिडेंटल और आकस्मिक होते हैं। क्योंकि हम अपने पिछले ज्ञान से तो उनका कोई अनुमान नहीं लगा सकते। हम कभी सोच ही नहीं सकते कि कान भी कभी रेडियो का काम कर सकता है। लेकिन क्यों नहीं कर सकता है? कान सुनने का काम करता है, रेडियो सुनने का काम करता है। कान रिसेप्टिविटी है पूरी, रेडियो रिसेप्टिविटी है पूरी। सच तो यह है कि रेडियो कान के ही आधार पर निर्मित है। माडल का काम तो कान ने ही किया है। कान की ओर क्या क्या सम्भावनाएँ हो सकती हैं, ये जब तक अचानक उद्घाटित न हो जायें तबतक पता भी नहीं चल सकता।

ठीक वैसी घटना दूसरे महायुद्ध में घटी। एक आदमी घायल हुआ, बेहोश हो गया और जब होश में आया तो उसे दिन में आकाश के तारे दिखायी पड़ने लगे। तारे तो आकाश में होते ही हैं। सिर्फ सूरज की रोशनी की वजह से दिखायी पड़ने बन्द हो जाते हैं। सूरज की रोशनी बीच में आ जाती है, तारे पीछे पड़ जाते हैं।

सूरज की रोशनी बहुत तेज है, सूरज से तारे बहुत दूर हैं, उनकी टिमटिमाती रोशनी खो जाती है। यद्यपि वे सूरज से छोटे नहीं हैं, उनमें से कोई सूरज से हजार गुना बड़ा है, कोई दस हजार गुना बड़ा है, कोई लाख गुना बड़ा है। पर फासला बहुत है। सूरज से किरण हम तक आती है तो उसे नौ मिनट लगते हैं। और जो सबसे करीब का तारा है, उससे जो किरण आती हैं उसे चालीस साल लगते हैं। फासला बहुत है। नौ मिनट और चालीस साल, और किरण बहुत तेज चलती है, एक लाख छियासी हजार मील चलती है एक सेकेंड में। सूरज से पहुँचने में नौ मिनट लगते हैं, निकट-तम तारे से पहुँचने में चालीस साल लगते हैं। और ऐसे तारे हैं, जिनसे चार हजार साल भी लगते हैं, चार लाख साल भी लगते हैं, चार करोड़ साल भी लगते हैं, चार अरब साल भी लगते हैं। चार अरब साल के ऊपर का हम हिसाब नहीं रख सकते हैं क्योंकि हमारी पृथ्वी को बने चार अरब साल हुए। वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हमारी पृथ्वी नहीं बनी थी, तब जो किरणें चली होंगी, एक दिन जब हमारी पृथ्वी समाप्त हो चुकी होगी तब पार होंगी। उन किरणों को कभी पता नहीं चलेगा कि बीच में किसी पृथ्वी के होने की घटना घट गयी। जब पृथ्वी नहीं थी तब वे चलीं और जब पृथ्वी नहीं हो चुकी होगी तब वे पार हो गयी होंगी। उन किरणों पर कोई यात्री सवार होकर चले तो पृथ्वी कभी थी, इसका कोई भी अन्दाजा नहीं लगेगा।

दिन में वे तारे हैं अपनी जगह। उस आदमी को दिन में भी दिखायी पड़ने शुरू हो गये। उसकी आँख को क्या हो गया? उसकी आँख ने एक नया सिलसिला शुरू किया। आपरेशन करना पड़ा उसकी आँख का, क्योंकि वह आदमी सामान्य नहीं रह गया। वह आदमी बेचैनी में पड़ गया। वह आदमी कठिनाई में पड़ गया। तब एक बात साफ हुई कि आँख दिन में भी तारों को देख सकती है। अगर आँख दिन में भी तारों को देख सकती है तो आँख की बहुत सी संभावनाएँ हैं, जो सुप्त हैं। हमारी प्रत्येक इंद्रिय की बहुत सी संभावनाएँ हैं, जो सब सुप्त पड़ी हैं। इस जगत में जो हमें चमत्कार दिखायी पड़ते हैं वह सुप्त पड़ी संभावनाओं का कहीं से टूट पड़ना है, बस। कोई सुप्त संभावना कहीं से प्रगट हो जाती है, हम चमत्कृत हो जाते हैं। वह मिरे-कल नहीं है। उतना ही चमत्कार हमारे भीतर भी दबा पड़ा है। पर अप्रगट है, वह प्रगट नहीं होता। वह खुल नहीं पाता। कहीं कोई दरवाजे पर ताला पड़ा है, वह नहीं टूट पा रहा है। अभी मैंने आधे मस्तिष्क के सक्रिय होने की बात की वह योग की दृष्टि है। और योग की दृष्टि कोई एक-दो दिन, वर्ष दो वर्ष की धारणा नहीं है। कम से कम बीस हजार साल से योग की यह परिपुष्ट दृष्टि है। विज्ञान की किसी दृष्टि पर तो भरोसा नहीं किया जा सकता बहुत, क्योंकि जो विज्ञान छः महीने पहले कह रहा था, छः महीने बाद बदलेगा। लेकिन योग की एक परिपुष्ट दृष्टि है, बीस हजार साल की कम से कम। क्योंकि हम जिस सभ्यता में रह रहे हैं वह सभ्यता

किसी भी हालत में बीस हजार साल से पुरानी नहीं है। यद्यपि यह हमारा भ्रम है कि हमारी सभ्यता पृथ्वी पर पहली सभ्यता है। हमसे पहले सभ्यताएँ हो चुकी हैं और नष्ट हो चुकी हैं और हमसे पहले आदमी करीब करीब हमारी ही ऊँचाइयों पर और कभी कभी हमसे भी ज्यादा ऊँचाइयों पर पहुँच गया और खो गया !

१९२४ में एक घटना घटी। १९२४ में जर्मनी में अणु विज्ञान के सम्बन्ध में शोध का पहला संस्थान निर्मित हुआ। अचानक एक दिन सुबह एक आदमी, जिसने अपना नाम फल्कानेली बताया, एक कागज में लिख कर कुछ दे गया। उस कागज में एक छोटी सी सूचना थी कि मुझे कुछ बातें ज्ञात हैं, कुछ और लोगों को भी ज्ञात हैं, जिनके आधार पर मैं यह खबर देता हूँ कि अणु के साथ खोज में मत पड़ना। क्योंकि हमारी सभ्यता के पहले और भी सभ्यताएँ इस खोज में पड़ कर नष्ट हो चुकी हैं। इस खोज को बन्द ही कर दें। बहुत खोज-बीन की गयी उस आदमी की, कुछ पता नहीं चला। १९४० में हैसिनबर्ग, एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक था जर्मनी का, जिसने बड़े से बड़ा काम अणु की खोज में किया। उस आदमी के घर फिर एक आदमी उपस्थित हुआ, जिसने फिर उसको एक चिट्ठी दी, उसमें भी फल्कानेली के ही दस्तखत थे। वह नौकर को चिट्ठी देकर बाहर ही चला गया। उस चिट्ठी में उसने हैसिनबर्ग को सूचना दी कि तुम पापी होने का जिम्मा मत लो। क्योंकि यह सभ्यता पहली नहीं है जो अणु-उपद्रव में पड़ी है। इसके पहले सभ्यताएँ बहुत बार अणु के खेल में पड़ीं और नष्ट हो गयीं। मगर उस आदमी का पता नहीं चला। १९४५ में जब पहली दफा हिरोशिमा पर एटम गिरा तो दुनिया के बारह बड़े वैज्ञानिको को, जिनका कि हाथ था एटम के बनाने में, फल्कानेली के दस्तखत के पत्र मिले जिसमें उसने कहा था कि देखो, अभी भी रुक जाओ। हालाँकि तुमने पहला कदम उठा लिया है। और पहला कदम उठाने के बाद आखिरी कदम बहुत दूर नहीं रहता। ओपिनहिमर जो अमरीका का सबसे बड़ा अणुशास्त्री था, जिसने कि अणु बनाने में बड़े से बड़ा भाग बँटाया है, उसने तत्काल उस पत्र के मिलते ही अणु आयोग से इस्तीफा दिया और उसने एक वक्तव्य दिया कि 'वी हैव सिन्ड' हमने पाप किया है। और यह आदमी हर वक्त खबर देता रहा पर यह आदमी कौन है, इसका कोई पता नहीं है। यह आदमी कौन है ? इस बात की पूरी संभावना है कि वह जो कह रहा है ठीक कह रहा है। अणु के साथ खिलवाड़ सभ्यताएँ पहले भी कर चुकी हैं। हमने भी महाभारत में अणु के साथ खिलवाड़ कर लिया। उसके साथ हम बर्बाद हुए। असल में करीब करीब ऐसा है, जैसे कि एक व्यक्ति बच्चा होता है, जवान होता है, और जवानी में वही भूलें करता है जो उसके बाप ने की थीं। हालाँकि बाप बूढ़ा होकर उसको समझाता है कि इन भूलों में मत पड़ना, ये सब गड़बड़ हैं। लेकिन उसके बाप ने भी इस बूढ़े को समझायी थी यही बात। और ऐसा नहीं है कि उस बूढ़े के बूढ़े बाप को समझाने

वाला बाप नहीं था। उसने भी समझाया था। पर जवानी में वही भूलें होती हैं, फिर बुढ़ापे में वही समझावट होती है। बच्चा होता है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है—जैसे व्यक्ति एक चक्र में दौड़ कर आदी हो जाता है ऐसे ही हर सभ्यता भी करीब करीब एक से स्टेप उठाकर नष्ट होती है। सभ्यताएँ भी बचपन में होती हैं, जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं और मरती हैं।

यह जो योग की बीस हजार साल की दृष्टि की बात की, बीस हजार साल की मैं इसलिए कहता हूँ कि बीस हजार साल का हिसाब थोड़ा साफ है। वैसे इसे और भी साफ करना हो तो बीस हजार साल के पहले की जो सभ्यताएँ रही हैं, उनको बिना जाने साफ नहीं किया जा सकता। एक आदमी की जवानी ठीक से समझनी हो तो दस आदमियों की जवानी समझनी जरूरी है। अकेली नहीं समझी जा सकती। क्योंकि अकेले का कोई रिफरेंस नहीं होता, कोई सन्दर्भ नहीं होता है। कैसे समझा जाय, वह क्या कर रहा है? ठीक कर रहा है कि गलत कर रहा है ? एक आदमी का बुढ़ापा समझना हो तो पच्चीस बूढ़ों पर नजर डालनी ज़रूरी है, नहीं तो सब अधूरा-अधूरा होगा। एक एक व्यक्ति अपने आप में कुछ भी नहीं बता पाता है। एक एक घटना अलग कुछ नहीं कहती। इसलिये मैंने कहा कि बीस हजार साल का इतिहास साफ है। बीस हजार साल में योग निरन्तर एक बात कहता रहा है कि आज्ञाचक्र के साथ जुड़ा हुआ आधा मस्तिष्क है जो बन्द पड़ा है, अगर तुम्हें संसार के पार कुछ जानना है तो उस आधे मस्तिष्क को सक्रिय करना जरूरी है। अगर परमात्मा के संबंध में कोई यात्रा करनी है तो वह आधा मस्तिष्क सक्रिय होना जरूरी है। अगर पदार्थ के पार देखना है तो वह आधा मस्तिष्क सक्रिय होना जरूरी है। उसका द्वार है आज्ञा, जहाँ आप तिलक लगाते हैं। वह तो करस्पोंडिंग हिस्सा है, आपकी चमड़ी के ऊपर। बस अन्दाजन डेढ़ इंच भीतर—अन्दाजन कहता हूँ, क्योंकि किसी का थोड़ा ज्यादा, किसी का थोड़ा कम होता है। अन्दाजन डेढ़ इंच भीतर वह बिन्दु है जो द्वार का काम करता है पदार्थ अतीत, या भावातीत जगत के लिए।

तिब्बत ने तो, जैसा हमने तिलक आविष्कृत किया, वैसे ही ठीक आपरेशन्स भी आविष्कृत किये। ऐसा तिब्बत ही कर सकता था। क्योंकि तिब्बत ने जितनी मेहनत की है मनुष्य के तीसरे नेत्र पर, 'थर्ड आई' पर, उतनी किसी और सभ्यता ने नहीं की है। सच तो यह है कि तिब्बत का पूरा का पूरा विज्ञान और पूरी समझ जीवन के अनेक आयामों की समझ है जो उस तीसरे नेत्र की ही समझ पर आधारित है। जैसा मैंने कायसी का आपके लिए उदाहरण दिया, कायसी तो एक व्यक्ति है। तिब्बत में तो सैकड़ों साल से व्यक्ति जब तक समाधि में न जाए तब तक दवा का कोई पता ही नहीं लगता था। यह पूरी सभ्यता ही वह काम करती रही

है। वे समाधिस्थ व्यक्ति से ही दवा पूछेंगे। उसकी दवा का ही उपयोग है। बाकी तो सब अन्धेरे में टटोलना है। उन्होंने तो आपरेशन्स भी विकसित किये। ठीक इस डेढ़ इंच के भीतर जो जगह है, उस पर आपरेशन्स करने के भी प्रयोग किये। उस जगह को बाहर से भी तोड़ने की कोशिश की । वह टूट जाती है, बाहर से टूट जाती है। लेकिन बाहर से टूटने में और भीतर से टूटने में एक फर्क है, इसलिए भारत ने कभी उसको बाहर से तोड़ने की कोशिश नहीं की। यह मैं आपको ख्याल में दे दूं।

उसे भीतर से तोड़ने पर ही आधा मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है। बहुत सम्भावना यह है कि बाहर का आपरेशन नये आधे मस्तिष्क की सक्रियता का दुरुपयोग करेगा। । क्योंकि आदमी वही का वही है। उसकी चेतना में कोई साधनागत अन्तर तो हुए नहीं हैं। और उसके मस्तिष्क में नये काम शुरू हो गये। अगर वह आदमी आज दीवाल के पार देख सकता है, तो इस बात की बहुत कम संभावना है कि वह कुएँ में किसी गिरे आदमी को देख कर निकालेगा। इस बात की ज्यादा सम्भावना है कि किसी के गड़े हुए खजाने को खोदने जायगा। अगर वह आदमी यह देख सकता है कि उसके भीतरी इशारे से आपको आज्ञा दी जा सकती है, तो इस बात की बहुत कम संभावना है कि आपसे वह कोई अच्छा काम करवायेगा, इस बात की ज्यादा संभावना है कि आपसे अवश्य वह कोई बुरा काम करवायेगा। आपरेशन यहाँ भी हो सकता था। भारत को भी उसके सूत्र पता थे, पर भारत ने उसका कभी प्रयोग नहीं किया। नहीं प्रयोग किया इसीलिए कि जब तक व्यक्ति की चेतना भीतर से भी इतनी विकसित न हो कि नयी शक्तियों का उपयोग करने में समर्थ हो जाय, तब तक उसे नयी शक्तियाँ देना खतरनाक है। वह ऐसा है जैसे बच्चे के हाथ में हम तलवार दे दें। बहुत डर तो यह है कि वह दो-चार को काटेगा, लेकिन डर यह भी है कि वह अपने को भी काटेगा। और बच्चे के हाथ में दी गयी तलवार से किसी का भी मंगल हो सकेगा, इसकी आशा करना दुराशा मात्र है। चेतना के तल पर, अगर व्यक्ति के भीतर की चेतना विकसित न हो तो उसके हाथ में नयी शक्तियाँ देना खतरनाक है।

तिब्बत ने, जहाँ हम तिलक लगाते रहे हैं, वहाँ ठीक भीतर तक भी छेद करने की कोशिश की है, भौतिक उपकरणों से। इसलिए तिब्बत बहुत सी बातें जान पाया, बहुत से अनुभव कर पाया, लेकिन फिर भी तिब्बत कोई नैतिक अर्थों में महान देश नहीं बन पाया। यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। तिब्बत बहुत काम कर पाया है, लेकिन फिर भी नैतिक अर्थों में वह एक बुद्ध भी पैदा नहीं कर पाया। उसकी जानकारी बढ़ी, उसकी शक्ति बढ़ी, अनूठी बातों का उसे पता चला; लेकिन उन सबका उपयोग बहुत छोटी बातों में हुआ। उनका बहुत बड़ी बातों में उपयोग नहीं हो सका।

भारत ने कोई सीधा भौतिक प्रयोग करने की कभी चेष्टा नहीं की। चेष्टा यह की कि भीतर की चेतना को इकट्ठा करके इतना कन्सन्ट्रेट, इतना एकाग्र किया जाय कि चेतना की शक्ति से ही वह तीसरा नेत्र खुल जाय, उसके ही प्रवाह में खुल जाय। क्योंकि चेतना के प्रवाह को तीसरे नेत्र तक लाना एक बड़ा नैतिक उपक्रम है। मन इतना ऊपर चढ़ाना है! क्योंकि साधारणतः हमारा मन नीचे की तरफ जाता है। सच तो यह है कि हमारा मन सेक्स सेन्टर की तरफ ही बढ़ता रहता है। हम कुछ भी करते हों, हम चाहे धन कमाते हों, चाहे पद की चेष्टा करते हों, चाहे कुछ भी करते हों, यह सब करने के पीछे कहीं गहरे में काम-वासना हमें खींचती रहती है। धन भी हम कमाते हैं तो इसी आशा म कि उससे काम खरीदा जा सके; और पद की भी हम इच्छा करते हैं इसी आशा में कि पद पर बैठकर हम ज्यादा शक्तिशाली हो जायेंगे, काम को खरीद लेंगे। इसलिए पुराने दिनों में राजा की इज्जत का पता इससे चलता था कि कितनी रानियाँ थीं उसके पास? वह ठीक मेजरमेंट है, क्योंकि पद का और कोई मूल्य है क्या? पद का करोगे क्या? कितनी स्त्रियाँ तुम्हारे हरम में हैं, उससे पता चल जायगा कि तुम कितने बड़े पद पर हो। पद का भी उपयोग, धन का भी उपयोग घूमकर तो काम-वासना के लिए ही होना है। हम जो भी करेंगे हमारी सारी शक्ति काम के केन्द्र की तरफ दौड़ती रहेगी। और जब तक शक्ति काम के केन्द्र की तरफ दौड़ रही है तब तक, व्यक्ति अनैतिक हो सकता है। अगर शक्ति को ऊपर की तरफ दौड़ाना है तो काम की यात्रा रूपांतरित करनी पड़ेगी। अगर आज्ञाचक्र की तरफ शक्ति को ले चलना है तो काम की यात्रा को बदलना पड़ेगा—उसका पूरा रुख, पूरा ध्यान बदलना पड़ेगा, पीठ ही फेर लेनी पड़ेगी नीचे की तरफ से, और मुँह करना पड़ेगा ऊपर की तरफ। ऊर्ध्वमुखी होना पड़ेगा। इस ऊर्ध्वगमन की यात्रा बड़ी नैतिक होगी। इसलिए इंच इंच संघर्ष होगा, इसमें एक एक कदम कुर्बानी होगी। इसमें जो क्षुद्र है उसे खोने की तैयारी दिखायी पड़ेगी, ताकि विराट मिल सके। इसमें कीमत चुकानी पड़ेगी। और इतनी सारी कीमत चुकाकर जो व्यक्ति आज्ञाचक्र तक पहुँचता है उसे जो विराट शक्ति उपलब्ध होती है, वह उसका दुरुपयोग कैसे कर पायेगा? दुरुपयोग का कोई सवाल नहीं उठता। दुरुपयोग करने वाला तो इस मंजिल तक पहुँचने के पहले समाप्त हो गया होता है। इसलिए तिब्बत में ब्लैक मैजिक पैदा हुआ, इन आपरेशन्स की वजह से। तिब्बत में अध्यात्म कम पैदा हुआ, और जिसको हम कहें कि शैतानी ढंग का उपद्रव, वह ज्यादा पैदा हुआ। इस तरह की ग़लत ताकत हाथ में आनी शुरू हो गयी।

सूफियों में एक कहानी है, जीसस के बाबत। ईसाइयों में उसका कोई उल्लेख नहीं है, इसलिए मैं सूफियों में कहता हूँ। जीसस की बहुत सी कहानियाँ सूफियों के पास हैं, ईसाइयों के पास नहीं हैं। कई बार तो बहुत महत्वपूर्ण घटनाएँ मुसल-

मानों के पास हैं, ईसाइयों के पास नहीं हैं, जीसस के जीवन की। यह घटना भी उनमें से है। जीसस के तीन शिष्य जीसस के पीछे पड़े। वे उनसे कहते हैं कि हमने सुना है और देखा भी, कि आप मुर्दे को कहते हैं उठ जाओ, और वह उठ जाता है। हमें तुम्हारा मोक्ष नहीं चाहिए, हमें तुम्हारा स्वर्ग नहीं चाहिए, हमें तो सिर्फ यह तरकीब सिखा दो। यह मरा हुआ आदमी कैसे जिन्दा होता है? जीसस उनसे कहते हैं कि इस मंत्र का उपयोग तुम स्वयं पर कभी न कर पाओगे। क्योंकि तुम मर चुके होगे तो मंत्र का उपयोग कैसे करोगे? और दूसरे के जिलाने से तुम्हें क्या फायदा होगा? मैं तुम्हें वह तरकीब बताता हूँ जिससे कि तुम मरो ही न! वह कहते हैं, हमें इससे कोई मतलब नहीं। आप हमें बहलायें मत, हमें तो यह मुर्दे की बात बताइए, यह चीज जानने जैसी है। वे इतने पीछे पड़े कि जीसस ने कहा, कि ठीक है। जीसस ने उन्हें सूत्र बता दिया, जिस सूत्र के उपयोग से मरा हुआ, जिन्दा हो जाता है। अब वे तोनों भागे। वे उसी दिन जीसस को छोड़कर भाग गये, मुर्दे की तलाश में। उन्होंने कहा कि अब देर करना उचित नहीं, मंत्र में कोई शब्द भूल जाय, कोई गड़बड़ हो जाय, इसका जल्दी प्रयोग करके देख लें। दुर्भाग्य, कि गाँव में गये तो मुर्दा नहीं! दूसरे गाँव की तरफ निकले तो बीच में कोई अस्थि-पंजर पड़ा हुआ मिल गया। मुर्दा नहीं मिला, तो उन्होंने कहा कि अब चलो यही सही। मंत्र पढ़ा, जल्दी थी बहुत, वह शेर के अस्थि-पंजर थे। शेर उठकर खड़ा हो गया। वह उन तीनों को खा गया। सूफी कहते हैं कि यही होगा। अनैतिक चित्त का कुतूहल खतरे में ले जाता है। बहुत बार बहुत से सूत्र जानकर भी छिपा लिये गये बार बार, कि वह गलत आदमी के हाथ में न पड़ जायें। सामान्य आदमी को जब भी कुछ दिया गया तो उसे इस ढंग से दिया गया कि जब वह योग्य हो जाय, तभी उसे पता चलता है।

सोचेंगे आप, तिलक के संबंध में मैं यह क्यों कह रहा हूँ। हर बच्चे के माथे पर तिलक लगा दिया, जब कि उसे कुछ पता नहीं है। कभी उसे पता होगा। कभी उसे पता चलेगा तब वह इस तिलक के राज को समझ पायेगा। इशारा कर दिया गया है, ठीक जगह पर निशान बना दिया गया है। कभी जब उसकी चेतना इतनी समर्थ होगी, तब वह इस निशान का उपयोग कर पायेगा। कोई चिन्ता नहीं कि सौ आदमियों पर लगाया गया निशान, और निन्यानवे के काम नहीं पड़ा। कोई फिक्र नहीं, एक को भी काम पड़ जाय तो कम नहीं है। इस आशा में सौ पे लगा दिया गया कि कभी किसी क्षण में उसका स्मरण आ जायेगा तो पता चल जायेगा।

तिलक के लिए इतना मूल्य, इतना सम्मान, कि जब भी कुछ विशेष घटना हो, शादी हो रही हो तो तिलक हो, कोई जीत कर लौट आये तो तिलक हो! कभी आपने सोचा, कि हर सम्मान की घटना के साथ तिलक, यह सिर्फ 'ला आफ एसोसि-

एशन' का उपयोग है। क्योंकि हमारे चित्त में एक बड़े मजे का मामला है। हमारा चित्त दुख को भूलना चाहता है और सुख को याद रखना चाहता है। हमारा चित्त लम्बे अर्से में दुख को भूल जाता है और सुख को याद रखता है। इसीलिए तो हमें पीछे के दिन अच्छे मालूम पड़ते हैं। बूढ़ा कहता है, बचपन बहुत सुखद था। कोई और बात नहीं है, दुख को ड्राप कर देता है मन हमारा और सुख की श्रृंखला को कायम रखता है। जब लौटकर पीछे देखता है तो सुख ही सुख दिखायी पड़ता। बीच बीच के जो दुख थे, उनको गिरा आये हम रास्ते में। कोई बच्चा नहीं कहता, कि बचपन सुखद है। बच्चे जल्दी से जल्दी बड़े होना चाहते हैं। और सब बूढ़े कहते हैं, बचपन बहुत सुखद है। जरूर कहीं न कहीं भूल हो गयी है। ये जितने बच्चे हैं, उनको खड़े करके पूछें, तुम क्या होना चाहते हो? वे कहेंगे, हम बड़े होना चाहते हैं। और जितने बूढ़े हैं उनको पूछें कि क्या होना चाहते हो, वे कहेंगे कि हम बच्चे होना चाहते हैं। मगर एक बच्चा गवाही नहीं देता तुम्हारे साथ। बच्चा तो चाहता है कितना जल्दी बड़ा हो जाय, इसलिए कई दफा ऐसी कोशिश करता है बड़े होने की, कि जिसका कोई हिसाब नहीं। सिगरेट पीने लगता है, इसलिए कि वह देखता है कि सिगरेट सिम्बल है बड़े आदमी का। कोई और कारण से नहीं, मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चों में, सौ में से सत्तर प्रतिशत बच्चे इसलिए सिगरेट पीते हैं कि सिगरेट प्रेस्टीज का प्रतीक है। सिगरेट ताकतवर, बड़े लोग, प्रतिष्ठा वाले लोग पीते हैं। वह भी उसे पोकर धुआँ जब उड़ाता है, तो भीतर उसकी रीढ़ सीधी हो जाती है। 'समबडी', उसको मालूम पड़ता है कि मैं भी कोई ऐसा-वैसा नहीं हूँ। किसी फिल्म पर लिख दें, इसको सिर्फ 'अडल्ट' देख सकते हैं, तो बच्चे सब नकली मूँछ लगाकर फिल्म में प्रवेश करेंगे। क्यों? बड़ा होने की बड़ी तीव्र आकांक्षा है, जल्दी। मगर सब बूढ़े कहते हैं कि बचपन बड़ा सुखद था। क्या बात है ऐसी? बात कुल इतनी ही है कि मन दुख को भुला देता है, गिरा देता है। दुख याद रखने जैसी चीज नहीं है।

एक बहुत हैरानी का सूत्र पियॉगेट नाम के वैज्ञानिक ने बताया है, चालीस साल तक बच्चों पर मेहनत करके। उसका कहना है कि पाँच साल से पहले की किसी बच्चे को स्मृति नहीं रहती। उसका कुल कारण यह है कि पांच साल की जिन्दगी इतनी दुखद है कि उसे याद नहीं रखा जा सकता। यह हम सोच न सकेंगे। और पियॉगेट ठीक कहता है, अनुभव से कहता है, भारी अनुभव से कहता है। आपको अगर कहा जाय कि आपको कबतक की याद है तो आप ज्यादा से ज्यादा पाँच साल, चार साल लौट पाते हैं। फिर क्यों नहीं लौटते पीछे की ओर? क्या उस वक्त मेमोरी नहीं बनती थी? बनती थी। क्या उस वक्त घटना नहीं घटती थी? घटती थी। क्या उस वक्त किसी ने गाली नहीं दी, और किसी ने प्रेम नहीं किया? सब हुआ है। पर मामला क्या है? चार साल के पहले की स्मृति का कोई रेकार्ड, कोई हिसाब क्यों नहीं है आपके

पास ? पियागेट कहता है कि वह दिन इतने दुख में बीतते हैं, क्योंकि बच्चा अपने को इतना दीन, इतना कमजोर, इतना हीन, सबसे दबा हुआ, इतना असहाय अनुभव करता है कि उसका कुछ भी याद रखना उसको पसन्द नहीं। वह उसको ड्राप कर देता है। भूल ही जाता है। वह कहता है, चार साल से पहले का मुझे कुछ याद ही नहीं। क्योंकि बाप ने कहा बैठ, तो उसको बैठना पड़ा। माँ ने कहा उठो, तो उसको उठना पड़ा। सब बड़े से बड़े शक्तिशाली थे, उसकी अपनी कोई सामर्थ्य न थी, वह बिल्कुल हवा में उड़ता हुआ पत्ता जैसा था। जो कोई कुछ कह दे उसे मानना पड़ता था। सब पर निर्भर था। जरा सी आँख का इशारा और उसको डर जाना पड़ेगा। उसके हाथ में कुछ भी सामर्थ्य न थी। उसने इसको बन्द कर दिया, वह ख्याल ही छोड़ दिया कि म कभी था, बात खत्म हो गयी। वह चार साल के पहले की याद नहीं करता। मजे की बात है, —हिप्नोटाइज करके आपको याद करवायी जा सकती है! चार साल के पहले की ही नहीं, माँ के पेट में भी जब आप थे, तब की भी स्मृति बनती है। अगर माँ गिर पड़ी हो आपकी, तो बच्चे को उसके पेट में स्मृति बनती है कि चोट पहुँची, वह भी याद करवायी जा सकती है। लेकिन साधारणतः होश में वह स्मृति नहीं रहती।

तो इस तिलक को सुख के साथ जोड़ने का उपाय कारणपूर्वक है। जब भी सुख की कोई घटना घटे, तिलक कर दो। सुख याद रहेगा, साथ में तिलक भी याद रहेगा। और धीरे धीरे सुख अगर तीसरी आँख से संयुक्त हो जाय, —यहाँ लॉ आफ एसोसिएशन को थोड़ा समझ लें। पावलफ ने बहुत से प्रयोग किये। इस सदी में रूसी वैज्ञानिक पावलफ ने एसोसिएशन के ऊपर सर्वाधिक काम किया है। उसका कहना है, कोई भी चीज जोड़ी जा सकती है। सब जोड़ सहयोग के हैं। जैसे कि एक प्रयोग सबको पता है, कि पावलफ एक कुत्ते को खाना देगा। रोटी सामने रखेगा तो लार टपकेगी। तब वह घण्टी बजाता रहेगा। घण्टी से लार टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। कितनी ही घण्टी बजाइए, लार कैसे टपकेगी ? लेकिन रोटी रखी, लार टपकी, तब घण्टी बजायी। पन्द्रह दिन वह रोटी के साथ घण्टी बजाएगा, सोलहवें दिन रोटी हटा ली, सिर्फ घण्टी बजायी—लार टपकने लगी। हुआ क्या कुत्ते को? घण्टी से लार का कोई भी नैसर्गिक संबंध नहीं है। लेकिन अब संबंध जुड़ गया। रोटी के साथ घण्टी एक हो गयी। घण्टी का बजना रोटी की याद बन गयी। रोटी की याद, चक्र शुरू हो गया उसके मन में रोटी का। लार टपकनी शुरू हो गयी। घण्टी प्रतीक की तरह आ गयी। वह रोटी का सिम्बल हो गयी। इसी कानून का उपयोग इस तिलक में किया गया है।

आपके सुख के साथ तिलक को सदा जोड़ा है। जब भी सुख की कोई घटना

घटी कि तिलक और सुख को एक किया। धीरे धीरे तिलक और सुख इतने एक हो जायें कि तिलक को कभी भूला न जा सके, वह आपके स्मरण में टिक जाय, बैठ जाय; और जब भी सुख की याद आये, तब आज्ञाचक्र की याद आये। जब भी सुख की याद आये तब जो पहली याद आये, वह आज्ञाचक्र की याद आये। और सुख की हमें बहुत याद आती है। सुख, चाहे हुआ हो या न हुआ हो, उसकी याद में तो हम जीते हैं। जितना होता है उससे ज्यादा बड़ा करके याद करते रहते हैं पीछे। धीरे धीरे उसको इतना बड़ा कर लेते हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। सुख को हम बड़ा करते रहते हैं, मैग्नीफाई करते रहते हैं। दुख को छोटा करते रहते हैं, एक ही नियम के अनुसार। आपकी प्रेयसी मिली थी, कितना सुख आया था ! आज सोचेंगे तो बहुत बड़ा मालूम पड़ेगा। अभी मिल जाय तो पता चले! एक दम छोटा हो जाय, सिकुड़ जाय। और हो सकता है फिर चौबीस घण्टे बाद आप मैग्नीफाई करें, आहा, कितना आनन्द है ! असल में इतना दुख है जीवन में कि अगर हम सुख को बड़ा न कर पायें तो जीना बहुत मुश्किल है। इसको बड़ा करके, रस ले-ले कर चलाते हैं। इधर पीछे बड़ा कर लेते हैं, उधर आगे आशा में बड़ा कर लेते हैं, और चलते हैं। तिलक के साथ सुख को जोड़ने का प्रयोजन है कि जब सुख बड़ा हो तो तिलक भी बड़ा हो जाय। इधर सुख की याद आये तो तिलक की भी याद आये। याद की इस चोट से धीरे धीरे सुख आज्ञाचक्र से जुड़ जाय, और यह हो जाता है। जब यह हो जाता है तो समझिये कि आपने सुख का उपयोग किया तीसरी आँख को जगाने के लिए। सब सुख की स्मृतियाँ आज्ञा के चक्र से जुड़ गयीं। हम सुख की धारा का उपयोग कर रहे हैं, उसको चोट करने के लिए। यह चोट जितने मार्गों से पड़ सके, उतनी उपयोगी है।

जिन मुल्कों में तिलक का उपयोग नहीं हुआ वे ऐसे मुल्क हैं जिनको 'थर्ड आई' का कोई पता नहीं है, यह आपको ख्याल होना चाहिए। जिन जिन मुल्कों को तीसरी आँख का थोड़ा भी अनुमान हुआ उन्होंने तिलक का उपयोग किया। जिन मुल्कों को कोई पता नहीं है, वे तिलक नहीं खोज पाये। तिलक खोजने का कोई आधार नहीं था। इसे समझ लें थोड़ा। यह आकस्मिक नहीं है कि कोई समाज उठे और एकदम से टीका लगाकर बैठ जाय। वह पागल नहीं है। अकारण, माथे के इस बिन्दु पर ही तिलक लगाने की सूझ का कोई कारण भी तो नहीं है, यह कहीं और भी तो लगाया जा सकता है। इसलिये आकस्मिक नहीं है, इसके पीछे कारण हो तो टिक सकता है।

और भी दो-तीन बातें आपसे इस संबंध में कहूँ। आपने कभी ख्याल न किया होगा, जब भी आप चिन्ता में होते हैं तब आपकी तीसरी आँख पर जोर पड़ता है, इसलिए माथा पूरा का पूरा सिकुड़ता है। उसी जगह जोर पड़ता है, जहाँ तिलक है।

बहुत चिन्ता करने वाले, बहुत विचार करने वाले लोग, बहुत मननशील लोग, अनिवार्य रूप से माथे पर बल डालकर उस जगह की खबर देते हैं। और जिन लोगों ने, जैसा मैंने पीछे कहा, पिछले जन्मों में कुछ भी तीसरी आँख पर जोर किया है, उनके जन्म के साथ ही उनके माथे पर अगर आप हाथ फेरें तो आपको तिलक की प्रतीति होगी। उतना हिस्सा थोड़ा सा धँसा हुआ होगा। थोड़ा सा, किंचित, ठीक तिलक जैसा धँसा हुआ होगा। दोनों तरफ के हिस्से थोड़े उभरे हुए होंगे, ठीक उस जगह पर जहाँ पिछले जन्मों में मेहनत की गयी है। और वह आप, अंगूठा लगाकर, आँख बन्द कर के भी पहचान सकते हैं। वह जगह आपको अलग मालूम पड़ जायेगी। तिलक हो या टीका--टीका तिलक का ही विशेष उपयोग है। लेकिन दोनों के पीछे तीसरी आँख छिपी हुई है।

हिप्नोटिस्ट एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। चारकाट फ्रांस में एक बहुत बड़ा मनस्विद हुआ है जिसने इस बात पर बहुत काम किये। आप भी छोटा सा प्रयोग करेंगे तो आपको भी चारकाट की बात ठीक से समझ में आ जायेगी। अगर आप किसी के सामने, उसके माथे पर दोनों आँखें गड़ाकर देखें, तो वह आदमी आपको गड़ाने न देगा। अगर आप किसी के माथे पर दोनों आँखें गड़ाकर देखें तो वह आदमी जितना क्रुद्ध होगा उतना और किसी चीज से नहीं होगा – पर वह अशिष्ट व्यवहार है, वह आप कर नहीं पायेंगे। सामने से तो वह स्थान बहुत निकट है, वह सिर्फ डेढ़ इंच के फासले पर है। अगर आप किसी के माथे पर, पीछे से भी दृष्टि रखें तो भी आप हैरान हो जायेंगे। रास्ते पर आप चल रहे हैं, कोई आदमी आपके आगे चल रहा है, आप ठीक जहाँ माथे पर यह बिन्दु है तिलक का, ठीक उसके आर-पार अगर हम एक छेद करें तो पीछे जहाँ से छेद निकलता हुआ मालूम पड़े, अनुमान करके, उस जगह दोनों आँखें गड़ा लें। और आप कुछ ही सेकेंड आँख गड़ा पायेंगे कि वह आदमी लौटकर आपको देखेगा।

अगर आप ठीक से थोड़े दिन अभ्यास करें और उस आदमी को सुझाव दें तो सुझाव भी वह आदमी मानेगा। समझ लें, आप उस आदमी के माथे पर गड़ाकर आँख, कुछ सेकेंड बिना पलक झंपे देखें, वह आदमी पीछे लौटकर देखेगा। अगर वह आदमी लौटकर देखता है तब आप उसको आज्ञा भी दे सकते हैं। फिर दोबारा उस आदमी को आप कहें कि बायें घूम जाओ तो वह आदमी बायें घूमेगा, और बड़ी बेचैनी अनुभव करेगा। हो सकता है उसको दायें जाना हो। यह आप थोड़ा प्रयोग कर के देखेंगे तो हैरान हो जायेंगे। यह तो पीछे से है जहाँ से कि फासला बहुत ज्यादा है, सामने से तो बहुत हैरानी के परिणाम होते हैं। जितने लोग भी हल्के किस्म का शक्तिपात करते रहते हैं वह आपके इसी चक्र के कारण करते हैं और कुछ कारण

नहीं है। कोई साधु, कोई संन्यासी अगर शक्तिपात के प्रयोग करते रहते हैं लोगों पर, तो वह यही कि आपको आँख बन्द करके सामने बिठा लिया है। आप समझ रहे हैं, वह कुछ कर रहे हैं। वह कुछ नहीं कर रहे हैं। वह सिर्फ आपके ही माथे के इस बिन्दु पर दोनों आँखें गड़ाकर बैठे हैं, लेकिन आप तो आँख बन्द किये बैठे हैं। और इस बिन्दु पर जो भी आपको सुझाव दिया जायगा, आपको फौरन भ्रांति की प्रतीति हो जायेगी। अगर कहा जाय, भीतर प्रकाश ही प्रकाश है तो आपके भीतर प्रकाश ही प्रकाश हो जायेगा। इधर से आप गये कि वह विदा हो जायेगा। दो-चार दिन उसकी हल्की झलक रह सकती है, फिर समाप्त हो जाती है। वह कोई शक्तिपात वगैरह नहीं है। वह सिर्फ आपके आज्ञाचक्र का थोड़ा सा उपयोग है।

तृतीय नेत्र की अनूठी संपदा है, और इसके अपरिसीम उपयोग हैं। उसका सिर्फ सिम्बोलिक रूप तिलक है। जब यहां दक्षिण में पहली दफा ईसाई फकीर आये तो कुछ ईसाई फकीरों ने तो आकर तिलक लगाना शुरू कर दिया। आज से एक हजार साल पहले वेटिकन की अदालत में मुकदमे की हालत आ गयी। क्योंकि यहां जिन ईसाई फकीरों को भेजा था उन्होंने यहां आकर जनेऊ पहन लिया, तिलक भी लगाया और खड़ाऊं भी डाल ली। वह हिन्दू संन्यासी की तरह रहने लगे। वेटिकन की अदालत तक मामला गया कि यह तो बात गलत है। जिन फकीरों ने यह किया था, उन्होंने उत्तर दिये, उन्होंने कहा, यह गलत नहीं है। तिलक लगाने से हम हिन्दू नहीं हो रहे हैं। तिलक लगाने से तो सिर्फ हमें एक रहस्य का पता चला है, जिसका आपको पता नहीं है। खड़ाऊं को पहनकर हम हिन्दू नहीं हो गये। यह तो हमें पहली दफा हिन्दुओं की समझ का पता चला है कि ध्यान करते वक्त अगर लकड़ी पैर के नीचे हो तो, बिना लकड़ी के जो काम महीने में होगा, वह लकड़ी के साथ दिनों में हो सकता है। हम हिन्दू नहीं हो गये हैं, लेकिन अगर हिन्दू कुछ जानते हैं तो हम नासमझ होंगे कि उसका उपयोग न करें। और निश्चित ही हिन्दू कुछ जानते हैं। कोई भी कौम जब बीस हजार साल से निरंतर धर्म के संबंध में खोज कर रही हो और कुछ भी न जानती हो, तो यह चमत्कार की बात होगी! बीस हजार साल जिसके मनस्वी पूरे जीवन को लगाकर एक ही दिशा में काम करते रहे हैं,- जिसके सारे मनीषी, सारे बुद्धिमान लोग हजार हजार साल तक एक ही दिशा में लगे रहे, एक ही जिनकी आकांक्षा रही हो कि किस भांति संसार में जो छिपा हुआ सत्य है, उसका पता चल जाय! वह जो अदृश्य है, वह दिखायी पड़ जाय, वह तो अरूप है उससे पहचान हो जाय, वह जो निराकार है उसमें प्रवेश हो जाय! बीस हजार साल तक जिनकी सारी मेधा ने, सारी प्रतिभा ने एक ही चेष्टा की हो, उनको कुछ भी पता न हो, यही बात आश्चर्य की है! कुछ पता हो यह बात बहुत आश्चर्य की नहीं है। क्योंकि यह पता होना बिल्कुल स्वाभाविक है। लेकिन पिछले दो सौ साल में एक घटना घटी, जिससे हमको परेशानी हुई।

पिछले दो सौ साल में जो घटना घटी वह घटना हमारे ख्याल में न आये तो वह परेशानी जारी रहेगी। इस देश के ऊपर सैकड़ों बार हमले हुए हैं लेकिन कोई हमलावर ठीक जगह पर हमला नहीं कर पाया। किसी ने धन लूट लिया, किसी ने जमीन पर कब्जा कर लिया, किसी ने मकान और महल ले लिये। लेकिन ठीक जो हमारा अन्तस्थल था, उस पर कोई हमला नहीं कर पाया। उसकी तरफ किसी का ध्यान ही नहीं गया। पहली बार पश्चिमी सभ्यता ने इस मुल्क के अन्तस्थल पर चोट करनी शुरू की। और वह चोट करने का जो सुगमतम उपाय था वह यह था कि आपके पूरे इतिहास को आपसे विच्छिन्न कर दिया जाय। आपके इतिहास में और आपके बीच में एक खाई पैदा हो जाय। बस फिर आप बिना जड़ के हो जायेंगे, अपरूटेड हो जायेंगे। फिर आपकी कोई ताकत न रह जायेगी। अगर आज पश्चिम की सभ्यता को नष्ट करना हो तो सारे पश्चिम के मकान गिराने की जरूरत नहीं है, और न सिनेमा घर गिराने की जरूरत है। और न पश्चिम की होटलें गिराने की जरूरत है। सिर्फ पश्चिम की पांच युनिवर्सिटीज को नष्ट कर दिया जाय, पश्चिम का कल्चर नष्ट हो जायेगा। पश्चिम की जो संस्कृति है, वह सिनेमा घर में, होटल में, और कोई नाइट क्लब में नहीं है। वे चलते रहें, इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। सिर्फ पश्चिम की पांच केन्द्रीय बड़ी युनिवर्सिटियां नष्ट कर दी जायं, पश्चिम एकदम खो जायगा। दुनिया में असली जो आधार होता है संस्कृति का, वह उसके ज्ञान के सूत्र होते हैं। उसकी जड़ें होती हैं उन ज्ञान के सूत्रों की श्रृंखला में। ज्यादा देर की जरूरत नहीं है, सिर्फ दो पीढ़ी के इतिहास से वंचित कर दिया जाय तो आगे का मामला टूट जायेगा। आदमी और जानवर में वही फर्क है। जानवर कोई विकास नहीं कर पाते। क्या बात है? कुल इतनी सी बात है कि जानवरों के पास कोई स्कूल नहीं है। जानवर के पास कोई उपाय नहीं है कि अपनी नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी का ज्ञान दे सके, बस और कोई बात नहीं है। जानवर का बच्चा जब पैदा होता है तो उसको वहीं से जिन्दगी शुरू करनी पड़ती है जहां से उसके बाप ने शुरू की थी। जब उसका बच्चा पैदा होगा, वह भी वहीं शुरू करेगा जहां उसके बाप ने शुरू की थी। आदमी शिक्षा के माध्यम से अपने बच्चे को वहां से जिन्दगी शुरू करवा देता है जहां खुद समाप्त करता है। इसलिए विकास होता है। सारा विकास पुरानी पीढ़ी के द्वारा नयी पीढ़ी को अपना संचित अनुभव देने में निर्भर है। सोचें, अगर बीस साल के लिए बूढ़े तय कर लें कि हम बच्चों को कुछ न बतायेंगे तो वह, बीस साल का नुकसान नहीं होगा, बीस हजार साल में जो इकट्ठा हुआ है, उसका नुकसान हो जायेगा। अगर बीस साल के लिए बूढ़े तय कर लें, पिछली पीढ़ी तय कर ले कि नयी पीढ़ी को कुछ भी नहीं बताना है तो आप यह मत सोचना कि बीस साल का ही नुकसान होगा और उसको बीस साल में पूरा किया जा सकेगा।

नहीं, बीस साल में जो नुकसान होगा उसको पूरा करने में बीस हजार साल लगेंगे। क्योंकि गैप खड़ा हो गया है। पुरानी पीढ़ियों का सब का सब डूब जायेगा।

इन दो सौ साल में भारत के लिए भारी गैप पैदा हुआ। जिसमें उसकी जो भी जानकारी थी उससे उसके सारे संबंध टूट गये। और उसके सारे संबंध एक नयी जानकारी से जोड़े गये जिसका पुरानी जानकारी से कोई संबंध नहीं था। सिर्फ हम सोचते ही हैं आज, कि हम बहुत पुरानी कौम हैं। सच बात यह है, हम दो सौ साल से ज्यादा पुरानी कौम नहीं हैं, अब हमसे अंग्रेज ज्यादा पुराने हैं। अब हमारे पास जो जानकारी है वह कचरा है, उच्छिष्ट है वह भी। जो पश्चिम हमको दे दे वह हमारी जानकारी है। दो सौ साल के पहले हम जो भी जानते थे वह सब का सब एकबारगी खो गया। और जब किसी चीज के सूत्र खो जायं तो मूढ़ता मालूम पड़ने लगती है। अब आप अगर ऐसे टीका लगा के निकल जायं तो शर्म लगती है। कोई भी पूछ ले कि क्या किया ये, कैसे टीका लगाये हो? तो कहेंगे ऐसे ही, कुछ नहीं पिताजी नहीं माने। या क्या किया जाय फिर? किसी तरह चलाना पड़ता है। आज आनंद और प्रफुल्लता से टीका लगाना बहुत मुश्किल है। हां, बुद्धि बिल्कुल न हो तो लगा सकते हैं। फिर कोई डर ही नहीं है। पर उसका भी कारण यह नहीं है कि आपको पता है इसलिए लगा रहे हैं।

ज्ञान के सूत्र जब गिर जाते हैं और उनका ऊपरी ढांचा रह जाता है तब ढोना बड़ा कठिन हो जाता है। और तब एक दुर्घटना घटती है कि जो सबसे कम बुद्धिमान होते हैं वह उसको ढोते हैं और जो बुद्धिमान होते हैं, वह दूर खड़े रहते हैं। यह दुर्घटना घटती है! बुद्धिमान ही जब तक किसी चीज को लेकर चलता है, तभी तक वह सार्थक रहती है। और यह बड़े मजे की बात है कि जब भी दुर्घटना घटती है और ज्ञान के सूत्र खोते हैं तो बुद्धिमान सबसे पहले छँटकर अलग हो जाते हैं, क्योंकि वह बुद्धू बनने को राजी नहीं हैं। हां, जो बुद्धू है वह जारी रखता है, मगर वह उस ज्ञान को बचा नहीं सकता। उसका कोई उपाय नहीं है। वह कुछ दिन खींचेगा और समाप्त हो जायेगा। तो कई बार ऐसी घटना घटती है कि बड़ी कीमत की चीजें, जो नासमझ हैं, वह बचाये रखते हैं। और जो समझदार हैं पहले छोड़कर खड़े हो जाते हैं। जिन्दगी में बड़े दांव-पेंच हैं। अगर ठीक से हमें भारत के यह दो सौ साल का जो अन्तराल पड़ गया है वह पूरा करना हो, तो भारत में आज जो जो काम बुद्धिहीन कर रहे हैं उसको वापस सोचने की जरूरत है—एक एक बिन्दु को। क्योंकि वह अकारण नहीं कर रहे हैं। उनके साथ बीस हजार साल की लंबी घटना है। वह नहीं बता सकते हैं कि क्यों कर रहे हैं? इसलिए उन पर नाराज होने की कोई जरूरत नहीं है। किसी दिन हमको उन्हें धन्यवाद भी देना पड़ सकता है कि

कम से कम तुमने प्रतीक तो बचाया था, जिसकी पुनः खोज की जा सकती है। तो आज भारत में जो बिल्कुल ग्रामीण और नासमझ, जिसको कुछ समझ नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है, जिसको हम मूढ़ कह सकते हैं, वह जो जो कर रहा हो उसको फिर से उठाकर दो सौ साल के पहले के सूत्रों से जोड़ने की, और बीस हजार साल की समझ के साथ पुनरुज्जीवित करने की जरूरत है। और तब आप चकित हो जायेंगे। तब आप बिल्कुल हैरान हो जायेंगे कि हम बड़े आतमघात में लगे हैं!

मूर्ति-पूजा

डाक्टर फ्रेंक रोडाल्फ ने अपना पूरा जीवन एक बहुत ही अनूठी प्रक्रिया की खोज में लगाया। उस प्रक्रिया के संबंध में थोड़ा आपसे कहूं तो मूर्ति-पूजा को समझना आसान हो जायगा। पृथ्वी पर जितनी भी जंगली जातियां हैं, आदिवासी हैं, वे सब एक छोटे से प्रयोग से सदा से परिचित रहे हैं। उस प्रयोग की खबरें कभी कभी तथाकथित सभ्य लोगों तक भी पहुंच जाती हैं। रेडाल्फ ने उसी संबंध में अपना पूरा जीवन लगाया और जिन नतीजों पर वह खोजी पहुंचा है वे बड़े अद्भुत हैं।

आदिवासियों में प्रचलित है यह बात कि किसी भी व्यक्ति की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उस व्यक्ति को कोई भी बीमारी भेजी जा सकती है। बीमारी ही नहीं, उसकी मृत्यु भी उसे भेजी जा सकती है। फ्रेंक रोडाल्फ ने अपने जीवन के तीस वर्ष इस खोज में लगाये कि इस बात में कितनी सचाई है। क्या यह हो सकता है कि एक व्यक्ति की मिट्टी की प्रतिमा बनायी जाय और उसे कोई भी बीमारी भेजी जा सके? या उसकी मौत भी भेजी जा सके? अत्यंत संदेह से भरा चित्त लेकर, वैज्ञानिक की बुद्धि लेकर यह व्यक्ति अमेजान के आदिवासियों के बीच वर्षों तक रहा। बड़ी कठिनाई में पड़ गया वह, क्योंकि उसने घटना को सैकड़ों बार सामने घटते देखा। हजारों मील दूर भी कोई व्यक्ति हो, तो उसकी मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उस तक

विशेष बीमारियां, और उसकी मौत भेजी जा सकती है! वर्षों के अध्ययन के बाद यह तय हो गया कि यह घटना घटती है। लेकिन कैसे घटती है, इसके पीछे राज क्या है, इसके पीछे प्रक्रिया क्या है? रोडाल्फ ने लिखा है कि प्रक्रिया के संबंध में जो बातें मुझे पता चल सकी हैं और जिन पर मैंने स्वयं प्रयोग करके देख लिया है, वे तीन हैं—एक, मिट्टी की प्रतिमा जरूरी नहीं है कि उस व्यक्ति की शक्ल से बिल्कुल मिलती-जुलती बने। बनाना भी कठिन है, अति मुश्किल है। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि उस शक्ल से मिले, महत्वपूर्ण यह है कि उस मिट्टी की प्रतिमा में उस व्यक्ति की शक्ल को प्रतिष्ठित किया जा सके। कोई मिट्टी की प्रतिमा बनाये आपकी, कोई बहुत बड़ा मूर्तिकार हो तब आप की शक्ल से मिला पाये, तब भी शायद पूरी न मिला पाये। लेकिन एक साधारण आदमी मिट्टी की प्रतिमा आपकी बनायेगा, तो वह सिर्फ प्रतीक होगी। चेहरा तो नहीं होगा—सिर होगा, हाथ-पैर होंगे, एक दूर का प्रतीक भर होगा। लेकिन रोडाल्फ का कहना है कि अगर वह व्यक्ति आंख बन्द करके आपकी पूरी की पूरी प्रतिमा को मन में स्मरण कर सके और उसको इस मिट्टी की प्रतिमा पर आरोपित कर सके, तो यह प्रतिमा आपका प्रतीक बनकर सक्रिय हो जायेगी। उसे प्रतिस्थापित करने की भी व्यवस्था है।

मैंने पीछे तिलक के संबंध में आपसे कहा था कि दोनों आंखों के बीच में, तीसरी आंख की संभावना के संबंध में योग का निष्कर्ष है। वह जो तीसरी आंख है आपकी, वह बहुत बड़ी आज्ञा की शक्ति रखती है अपने में। ऐसा समझ सकते हैं कि बहुत बड़ा ट्रांसमीशन का केन्द्र है। अगर आप अपने बेटे को या अपने नौकर को या किसी को कोई आज्ञा देते हैं, बाप अपने बेटे को कहता है फलां काम कर लाओ, और बेटा इन्कार करता है तो आप थोड़ा प्रयोग करके देखना। अगर आप दोनों आंखों के बीच में अपने ध्यान को केन्द्रित करके बेटे को कहें कि फलां काम कर लो, तब आप देखना कि दस में से नौ मौकों पर उसका इन्कार करना असंभव हो जायेगा। इससे उल्टा भी करके आप देखना कि आंखों के बीच में ध्यान को केन्द्रित मत करना, तो दस में से नौ मौकों पर इन्कार करना संभव हो जायेगा। अगर आप अपनी दोनों आंखों के बीच में ध्यान को केन्द्रित करके कोई भी बात फेंकें, तो वह साधारण शक्ति नहीं, असाधारण शक्ति लेकर गतिमान हो जाती है। किसी व्यक्ति की प्रतिमा को मन में रखकर, उसकी छोटी प्रतिमा को ध्यान में लेकर आज्ञा के चक्र से, अगर गीली मिट्टी के बनाये हुए लोंदे पर फेंक दिया जाय, तो वह गीली मिट्टी का लोंदा साधारण मिट्टी का लोंदा नहीं रह जाता। वह आप की आज्ञा से संक्रामित और आविष्ठ हो जाता है। अगर उस मिट्टी की प्रतिमा की दोनों आंखों के बीच में आप ध्यान करके कोई भी बीमारी का स्मरण कर सकें, सिर्फ एक मिनट, तो वह व्यक्ति उस बीमारी

से संक्रामित हो जायेगा। वह कितनी ही दूर हो, इसका कोई सवाल नहीं उठता। उसकी मृत्यु तक घटित हो सकती है।

रोडाल्फ ने अपने पूरे जीवन के अध्ययन के बाद यह लिखा है कि यह बात सुनने में हैरानी की लगती थी, लेकिन जब मैंने इसके प्रयोग देखे तो चकित रह गया। वृक्षों की प्रतिमा बनाकर, आदिवासियों ने उसके सामने वृक्षों को तत्काल सूखने पर मजबूर कर दिया। वह वृक्ष, जो अभी हराभरा था, उसके पत्ते कुम्हला गये। वह वृक्ष जो अभी जीवित मालूम पड़ता था, इस प्रक्रिया पर रुग्ण हो गया। पानी डालते रहे, पानी सींचते रहे, किसी तरह का नुकसान वृक्ष को बाहर से नहीं पहुंचने दिया गया; लेकिन महीने भर में वृक्ष सूखकर नष्ट हो गया। जो वृक्ष पर हो सकता है, वह व्यक्ति पर भी हो सकता है। रोडाल्फ की इस प्रक्रिया की इस-लिए मैं बात करना चाहता हूं कि मूर्ति-पूजा भी इसी प्रक्रिया का एक विराट आयाम में प्रयोग है। अगर हम व्यक्तियों को बीमार कर सकते हैं, व्यक्तियों की मृत्यु ला सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि हम उन व्यक्तियों से, जो मृत्यु के पार जा चुके हैं, उनसे पुनः संबंध स्थापित न कर सकें। और संभव है कि इस जगत में जो विराट व्याप्त है उस विराट के निकट पहुंचने के लिए हम कोई छलांग मूर्ति से ले सकें!

मूर्ति-पूजा का सारा आधार इस बात पर है कि आपके मस्तिष्क में और विराट परमात्मा के मस्तिष्क में संबंध हैं। दोनों के संबंध को जोड़ने वाला बीच में एक सेतु चाहिए। संबंधित हैं आप, सिर्फ एक सेतु चाहिए। वह सेतु निर्मित हो सकता है। उसके निर्माण का प्रयोग ही मूर्ति है। और निश्चित ही वह सेतु मूर्ति ही होगी, क्योंकि आप अमूर्त से सीधा कोई संबंध स्थापित न कर पायेंगे। आपको अमूर्त का तो कोई पता ही नहीं है। चाहे कोई कितनी ही बात करता हो निराकार परमात्मा की, अमूर्त परमात्मा की, वह बात ही रह जाती है, आपको कुछ ख्याल में नहीं आता। असल में आपके मस्तिष्क के पास जितने अनुभव हैं वे सभी मूर्त के अनुभव हैं, आकार के अनुभव हैं। निराकार का आपको एक भी अनुभव नहीं है। और जिसका कोई भी अनुभव नहीं है उस संबंध में कोई भी शब्द आपको कोई स्मरण न दिला पायेगा। निराकार की बात आप करते रहेंगे और आकार में जीते रहेंगे। अगर उस निराकार से कोई संबंध स्थापित करना हो, तो कोई ऐसी चीज बनानी पड़ेगी जो एक तरफ से आकार वाली और दूसरी तरफ से निराकार वाली हो। यही मूर्ति का रहस्य है। इसे मैं फिर से समझा दूं आपको। कोई ऐसा सेतु बनाना पड़ेगा जो हमारी तरफ आकार वाला हो, परमात्मा की तरफ निराकार हो जाय। हम जहां खड़े हैं वहां एक छोर उसका मूर्त हो, और जहां परमात्मा है उधर दूसरा छोर उसका अमूर्त हो जाय, तो सेतु बन सकता है। अगर वह मूर्ति बिल्कुल मूर्ति है

तो फिर सेतु नहीं बनेगा। अगर वह मूर्ति बिल्कुल अमूर्त है तो भी सेतु नहीं बनेगा। मूर्ति को दोहरा काम करना पड़ेगा। हम जहां खड़े हैं वहां उसका छोर दिखायी पड़, और जहां परमात्मा है वहां निराकार में खो जाय। इसलिए यह मूर्ति-पूजा शब्द बहुत अद्भुत है, इसका जो अर्थ मैं आपसे कहूंगा, वह आपके ख्याल में कभी भी नहीं आया होगा।

अगर मैं ऐसा कहूं कि मूर्ति-पूजा शब्द बड़ा गलत है, तो आपको बड़ी कठिनाई होगी। असल में मूर्ति-पूजा शब्द बिल्कुल ही गलत है। गलत इसलिए है कि जो व्यक्ति पूजा करना जानता है, उसके लिए मूर्ति मिट जाती है। और जिसके लिए मूर्ति दिखायी पड़ती है उसने कभी पूजा की नहीं है, उसे पूजा का कोई पता नहीं है। मूर्ति-पूजा शब्द में हम दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं—एक पूजा का और एक मूर्ति का। ये दोनों एक ही व्यक्ति के अनुभव में कभी नहीं आते। इनमें मूर्ति शब्द तो उन लोगों का है जिन्होंने कभी पूजा नहीं की; और पूजा उनका है जिन्होंने कभी मूर्ति नहीं देखी। अगर इसे दूसरी तरह से कहा जाय तो ऐसा कहा जा सकता है कि पूजा, मूर्ति को मिटाने की कला है। जो मूर्ति है, आकार वाली, उसको मिटाने की कला का नाम पूजा है। उसके मूर्त हिस्से को गिराते जाना है, गिराते जाना है! थोड़ी ही देर में वह अमूर्त हो जाता है। थोड़ी ही देर में इस तरफ जो मूर्त हिस्सा था, वहां से शुरुआत होती है पूजा की, और जब पूजा पकड़ लेती है साधक को, तो थोड़ी ही देर में वह छोर खो जाता है और अमूर्त प्रगट हो जाता है। मूर्ति-पूजा शब्द 'सेल्फ कण्ट्राडिक्टरी' है। इसलिए जो पूजा करता है, वह हैरान होता है कि मूर्ति कहां है? और जिसन कभी पूजा नहीं की वह कहता है कि इस पत्थर को रखकर क्या होगा? इस मूर्ति को रखकर क्या होगा? यह दो तरह के लोगों के अनुभव हैं, जिनका कहीं तालमेल नहीं हुआ। इसलिए दुनिया में बड़ी तकलीफें हुईं।

आप मंदिर के पास से गुजरेंगे तो मूर्ति दिखायी पड़ेगी, क्योंकि पूजा के पास से गुजरना आसान नहीं है। आप कहेंगे कि पत्थर की मूर्तियों से क्या होगा? लेकिन उस मंदिर के भीतर कोई एक मीरा अपनी पूजा में लीन हो गयी है, उसके लिए वहां कोई मूर्ति नहीं बची। पूजा घटित होती है, मूर्ति विदा हो जाती है। मूर्ति सिर्फ प्रारंभ है। जैसे ही पूजा शुरू होती है, मूर्ति खो जाती है। वह जो हमें दिखायी पड़ती है वह इसीलिए दिखायी पड़ती है कि हमें पूजा का कोई पता नहीं है। दुनिया में जैसे जैसे पूजा कम होती जायगी, वैसे वैसे मूर्तियां बहुत दिखायी पड़ेंगी; और जब बहुत मूर्तियां दिखायी पड़ेंगी, तो पूजा कम हो जायगी और मूर्तियों को हटाना पड़ेगा, क्योंकि इन पत्थरों को रख कर क्या करियेगा? उनका कोई प्रयोजन नहीं है। साधारणतः लोग सोचते हैं कि जितना पुराना आदमी होता है, जितना आदिम, उतना

मूर्तिपूजक होता है। जितना आदमी बुद्धिमान होता चला जाता है, उतना मूर्ति को छोड़ता चला जाता है। सच नहीं है यह बात। असल में पूजा का अपना विज्ञान है। जितना ही हम उससे अपरिचित होते चले जाते हैं, उतनी ही कठिनाई होती चली जाती है।

इस संबंध में एक बात और कह देना आपको उचित होगा। हमारी यह दृष्टि नितांत ही भ्रांत और गलत है कि आदमी ने सभी दिशाओं में विकास कर लिया है। इवोल्यूशन हो गया है। आदमी की जिन्दगी इतनी बड़ी चीज है कि अगर आप एकाध चीज में विकास कर लेते हैं तो आपको पता ही नहीं चलता कि आप किसी दूसरी चीज में बहुत पीछे छूट जाते हैं। अगर आज विज्ञान पूरी तरह विकसित है, तो धर्म के मामले में हम बहुत पीछे छूट गये हैं। कभी धर्म विकसित होता है, तो विज्ञान के मामले में पीछे छूट जाते हैं। कभी ऐसा होता है कि एक आयाम में अगर हम कुछ जान लेते हैं, तो दूसरे आयाम को भूल जाते हैं। १८८० में यूरोप में अल्टामीरा की गुफाएं मिलीं। उन गुफाओं में बीस हजार साल पुराने चित्र थे और रंग ऐसा कि जैसे कल सांझ को चित्रकार ने किया हो। डॉन मार्सिलानो, जिसने वह गुफाएं खोजीं, सारे यूरोप में बदनामी हुई उसकी। लोगों ने यह शक किया कि अभी इसने पोतवाकर रंग तैयार करवा लिये हैं, अभी गुफा में रंग पोते गये हैं। जो भी चित्रकार देखने गया उसी ने कहा कि यह मार्सिलानो की धोखाधड़ी है। इतने ताजे रंग पुराने तो हो ही नहीं सकते। उन चित्रकारों का कहना भी ठीक ही था, क्योंकि वान गॉग के चित्र सौ साल पुराने नहीं हैं, लेकिन वे सब फीके पड़ गये हैं। पिकासो ने अपनी जवानी में जो चित्र रंगे थे, उसके बूढ़े होने के साथ वे चित्र भी बूढ़े हो गये। आज सारी दुनिया के किसी भी कोने में, चित्रकार जिन रंगों का प्रयोग करते हैं, उनकी उम्र सौ साल से ज्यादा नहीं है। सौ साल में वे फीके हो ही जाने वाले हैं। लेकिन जब मार्सिलानो की खोज पूरी तरह सिद्ध हुई, और उन गुफाओं का निर्णायक रूप से निष्कर्ष निकल गया कि वे बीस हजार साल से पुरानी हैं, तो बड़ी मुश्किल हो गयी। क्योंकि जिन लोगों ने वे रंग बनाये होंगे, निश्चित ही रंग बनाने के संबंध में वे हमसे बहुत विकसित रहे होंगे। हम आज चांद पर पहुंच सकते हैं, लेकिन सौ साल से ज्यादा चलने वाला रंग बनाने में हम अभी समर्थ नहीं हैं। यह थोड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है। और बीस हजार साल पहले जिन लोगों ने वे रंग बनाये होंगे, वे कुछ कीमिया जानते थे, जिसका हमें बिल्कुल पता नहीं है।

इजिप्ट की ममीज हैं, कोई दस हजार साल पुरानी! वह आदमी के शरीर हैं। वह जरा भी नहीं खराब हुए हैं। वह ऐसे ही रखे हैं, जैसे कल रखे गये हों। और आज तक भी राज नहीं खोला जा सका है कि किस रासायनिक द्रव्यों का उप-

योग किया गया था जिससे लाशें इतनी सुरक्षित, दस हजार साल तक रह सकीं। वैज्ञानिक कहते हैं, वह ठीक वैसी ही हैं, जैसे कल आदमी मरा हो। किसी तरह का डिटीरिओरेशन, किसी तरह का उनमें ह्रास नहीं हुआ है। पर हम साफ नहीं कर पाये अभी तक, कि कौन से द्रव्यों का उपयोग हुआ है। इजिप्ट के पिरामिडों पर जो पत्थर चढ़ाये गये हैं, अभी भी हमारे पास कोई क्रेन नहीं हैं जिनसे हम उन्हें चढ़ा सकें। आदमी के तो वश की बात ही नहीं है, लेकिन जिन लोगों ने वे पत्थर चढ़ाये थे उनके पास क्रेन रही होगी, इसकी संभावना कम मालूम होती है। जरूर उनके पास कोई और टेकनीक, कोई तरकीबें रही होंगी, जिनसे वह पत्थर चढ़ाये गये हैं और जिनका हमें कोई अन्दाज नहीं है। जीवन के सत्य बहु आयामी हैं। एक ही काम बहुत तरह से किया जा सकता है। एक ही काम तक पहुंचने की बहुत सी टेकनीक और बहुत सी विधियां हो सकती हैं। फिर जीवन इतना बड़ा है कि जब हम एक दिशा में लग जाते हैं तो हम दूसरी दिशाओं को भूल जाते हैं।

मूर्ति बहुत विकसित लोगों ने पैदा की थी। यह सोचने जैसा है। क्योंकि मूर्ति, जो काज्मिक फोर्स है, हमारे चारों तरफ, जो ब्रह्म शक्ति है, उससे संबंधित होने का सेतु है। जिन लोगों ने भी मूर्ति विकसित की होगी, उन लोगों ने जीवन के परम रहस्य के प्रति सेतु बनाया था। हम कहते हैं कि हमने बिजली खोज ली है। निश्चित ही हम उन कौमों से ज्यादा सभ्य हैं जो बिजली नहीं खोज सकीं। निश्चित ही हमने रेडियो वेव्ज खोज लिये हैं और हम क्षणों में एक खबर को दूसरे मुल्क में पहुंचा पाते हैं। निश्चित ही जो लोग सिर्फ अपनी आवाज पर निर्भर करते हैं और चिल्लाकर फर्लांग दो फर्लांग तक आवाज पहुंचा पाते हैं, उनसे हम ज्यादा विकसित हैं। लेकिन जिन लोगों ने जीवन की परम सत्ता के साथ संबंध जोड़ने का सेतु खोज लिया था, उनके सामने हम बहुत बच्चे हैं। हमारी बिजली, हमारा रेडियो और हमारे अन्य आविष्कार सब खिलौने हैं। जीवन के परम रहस्य से जुड़ने की जो कला है, उसकी खोज, किसी एक दिशा में जिन लोगों ने बहुत मेहनत की थी, उसका परिणाम थी।

जैसा मैंने अभी कहा, मूर्ति का प्रयोजन है। मनुष्य की तरफ आकार हो उसमें, और उस आकार में से कहीं एक द्वार खुलता हो जो निराकार में ले जाता हो। जैसे मेरे घर की खिड़की है। घर की खिड़की तो आकार वाली ही होगी। जब घर ही आकार वाला है, तब खिड़की निराकार नहीं हो सकती। लेकिन खिड़की खोल कर जब आकाश में झांकने कोई जाये तो निराकार में प्रवेश हो जाता है। और अगर मैं किसी को कहूं कि मैं अपने घर की खिड़की को खोलकर निराकार के दर्शन कर लेता हूं और यदि दूसरे आदमी ने कभी खिड़की से झांककर आकाश को न देखा हो तो वह कहेगा, कैसी पागलपन की बात है! इतनी छोटी सी खिड़की से

निराकार का दर्शन कैसे होता होगा? इतनी छोटी सी खिड़की से जिसका दर्शन होता होगा वह ज्यादा से ज्यादा खिड़की के बराबर ही हो सकता है, उससे बड़ा कैसे होगा? उसकी बात तर्कयुक्त है। अगर उसने खिड़की से झांक कर कभी आकाश नहीं देखा है तो उसको राजी करना कठिन होगा। हम उसे समझा न पायेंगे कि छोटी सी खिड़की भी निराकार आकाश में खुल सकती है। खिड़की का कोई बन्धन उस पर नहीं लगता, जिस पर वह खुलती है। मूर्ति का कोई बंधन अमूर्त के ऊपर नहीं है। मूर्ति तो सिर्फ द्वार बन जाती है अमूर्त के लिए। जिन लोगों ने भी समझा कि मूर्ति, अमूर्त के लिए बाधा है उन्होंने दुनिया में बड़ी नासमझी पैदा करवायी। और जिन्होंने यह सोचा कि हम खिड़की को तोड़कर आकाश को तोड़ देंगे, वह तो फिर निपट ही पागल हैं। मूर्ति को तोड़कर हम अमूर्त को तोड़ देंगे, तो फिर उनके पागलपन का कोई हिसाब ही नहीं! लेकिन मूर्ति को तोड़ने का ख्याल उठेगा, अगर पूजा की कला और कीमिया का पता न हो।

दूसरी बात, पूजा कुछ ऐसी चीज है, सब्जेक्टिव, आंतरिक, निजी कि उसकी कोई अभिव्यक्ति और कोई प्रदर्शन नहीं हो सकता। जो भी निजी है इस जगत में, और आंतरिक है, उसका कोई प्रदर्शन संभव नहीं है। मेरे हृदय को काट कर देखा जा सकता है तो प्रेम उसमें नहीं मिलेगा। क्रोध भी नहीं मिलेगा, घृणा भी नहीं मिलेगी, क्षमा भी नहीं मिलेगी, करुणा भी नहीं मिलेगी। फेफड़ा मिलेगा, सिर्फ फुफ्फुस मिलेगा, जो हवा को पम्प करने का काम करता है। और अगर आपरेशन की टेबल पर रखकर मेरे हृदय की सब जांच पड़ताल करके डाक्टर यह सर्टिफिकेट दे दें कि इस आदमी ने कभी प्रेम का अनुभव नहीं किया, घृणा का अनुभव नहीं किया, क्योंकि हमने आपरेशन की टेबल पर सब जांच पड़ताल कर ली हैं, सिवाय हवा को फेंकने के पम्प के और कुछ भी नहीं है भीतर, तो क्या मेरे पास कोई उपाय होगा कि मैं सिद्ध कर सकूं कि मैंने प्रेम किया? या मेरी बात वह टेबल के आस-पास खड़े हुए डाक्टर मानने को राजी होंगे? कठिन है मामला। डाक्टर इतना ही कह सकते हैं कि आपको भ्रम पैदा हुआ होगा। मैं उनसे यह जरूर पूछ सकता हूं कि आपको कभी प्रेम और घृणा का अनुभव हुआ है? अगर वे तर्कयुक्त हैं तो वे कहेंगे कि हमें भी इस तरह के भ्रम हुए हैं, इल्यूजंस हुए हैं। बाकी टेबल पर जो रखा है वह वास्तविक तथ्य है। यहां सिर्फ हवा को फेंकने का फुफ्फुस है भीतर, हृदय जैसी कोई भी चीज नहीं है।

आंख का आपरेशन करके सारा उपाय कर लिया जाय तो भी इसका कोई पता नहीं चलता कि भीतर सपने देखे गये होंगे। अगर हम एक आदमी की आँख का पूरा यंत्र खोलकर टेबल पर रख लें, तो भी हमें अनंतकाल तक खोज करने पर भी

इसका पता नहीं चलेगा कि इस आँख ने रात को बन्द हालत में कोई सपने भी देखे होंगे। लेकिन हम सबने सपने देखे हैं। उन सपनों का अस्तित्व कहां है ? या तो हमने झूठे सपने देखे, लेकिन झूठे सपने कहने का क्या मतलब होता है ? झूठे हैं, तो भी देखे तो हैं ही। वह घटे तो हैं ही। कितने ही असत्य रहे हों, तो भी वह घटना तो हमारे भीतर हुई है। और कितना ही झूठा सपना रहा हो, अगर जोर से घबराहट पैदा हो गयी है, और जागकर पाया है तो हृदय धड़कता हुआ पाया है। और कितना ही झूठा सपना रहा हो, अगर उसमें रोये हैं और आंख खोलकर देखी है तो आंख में आंसू पाये हैं। कुछ भीतर घटा तो है ही। लेकिन आंख के कण कण को भी तोड़कर देख लें पर इसका कोई पता नहीं चलता कि भीतर सपने जैसी कोई घटना घटती है। सब सब्जेक्टिव है, आंतरिक है, कोई बाह्य प्रदर्शन संभव नहीं है।

मूर्ति तो दिखायी पड़ती है, उसका बाह्य प्रदर्शन हो सकता है, वह आंख की तरह है। वह फेफड़े की तरह है। पूजा दिखायी नहीं पड़ सकती। वह प्रेम की तरह है, वह भीतर देखे गये स्वप्न की तरह है। इसलिए जब आप मंदिर के पास से जाते हैं तो आपको मूर्ति दिखायी पड़ती है, पूजा तो कभी दिखायी नहीं पड़ती। इसलिए अगर मीरा को आपने किसी मूर्ति के आगे नाचते देखा है तो सोचा होगा, पागल है। स्वभावतः, क्योंकि पूजा तो दिखायी नहीं पड़ती है उसकी इसलिए किसी भ्रम में वह है, पत्थर के सामने नाचती है, पागल है !

रामकृष्ण को पहली दफा जब दक्षिणेश्वर के मंदिर में पुजारी की तरह रखा गया तो दो-चार, आठ दिन में ही बड़ी बड़ी चर्चाएं कलकत्ते में फैलनी शुरू हो गयीं। कमेटी के पास लोग गये, ट्रस्टियों के पास लोग गये और कहा कि इस आदमी को अलग कर दो। क्योंकि हमने गलत बातें सुनी हैं। हमने सुना है कि वह फूल को पहले सूंघ लेता है, फिर मूर्ति को चढ़ाता है। और हमने यह भी सुना है कि प्रसाद को पहले चख लेता है और फिर प्रसाद चढ़ाता है। यह तो पूजा भ्रष्ट हो गयी। रामकृष्ण को कमेटी ने बुलाया और कहा कि यह क्या कर रहे हैं आप ? हमने सुना है कि फूल आप पहले सूंघ लेते हैं, फिर परमात्मा को चढ़ाते हैं। और भोग आप पहले खुद लगा लेते हैं, फिर परमात्मा को चढ़ाते हैं ? रामकृष्ण ने कहा, हां, क्योंकि मैंने मेरी मां को देखा है। वह खाना बनाती थी तो पहले खुद चख लेती थी तब मुझे देती थी। वह कहती थी कि पता नहीं, तुझे देने योग्य बना भी कि नहीं। तो मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकूंगा। और फूल जब तक मैं न सूंघ लूं तो मैं कैसे चढ़ाऊं ? पता नहीं, सुगंधित है भी या नहीं। पर उन्होंने कहा, तब तो सारी पूजा का विधान टूट जायेगा ? रामकृष्ण ने कहा, कैसी बात करते हैं, पूजा का कोई विधान होता है, प्रेम का कोई विधान होता है ? कोई कांस्टीट्यूशन होता

है ? कोई विधि होती है ? जहां विधि होती है, वहीं पूजा मर जाती है। जहां विधान हो जाता है, वहीं प्रेम मर जाता है। यह तो आंतरिक उद्‌भाव है, अत्यंत निजी, अत्यंत वैयक्तिक ! फिर भी उसमें एक युनिवर्सल, एक सार्वभौम तथ्य है जो पहचाना जा सकता है। जब एक प्रेमी प्रेम करता है और जब दूसरा प्रेमी प्रेम करता है तो दोनों ही प्रेम करते हैं, फिर भी दो ढंग से करते हैं। उनमें बड़े गहरे फर्क होते हैं और फिर भी गहराई में एक समानता होती है। उन दोनों के प्रेम की अपनी निजता, इंडीवीजुएलिटी होती है, फिर भी दोनों के प्रेम के भीतर कहीं एक ही आत्मा का वास होता है।

मैं कह रहा था, पूजा तो दिखायी नहीं पड़ेगी, मूर्ति दिखायी पड़ेगी। और हम एक शब्द बनाये हैं, मूर्ति-पूजा, जो बिल्कुल ही गलत है। पूजा है मूर्ति को मिटाने का ढंग ! अब यह बात बड़ी अजीब लगती है। क्योंकि भक्त पहले मूर्ति बनाता है। फिर भक्त मूर्ति मिटाता है। मिटाता है बड़े चिन्मय अर्थों में, बनाता है बड़े मृण्यम अर्थों में। बनाता है मिट्टी में और मिटाता है परम सत्ता में। इसलिए एक और बात का आपको ख्याल दिला दूं।

इस देश में हजारों साल तक हमने मूर्तियां बनायीं और विसर्जित कीं। अब भी हम मूर्तियां बनाते और विसर्जित करते हैं। कई दफा तो मन को बड़ी हैरानी होती है। न मालूम कितने लोगों ने मुझे आकर कहा होगा। इतनी सुन्दर काली की प्रतिमा बनाते हैं और फिर इसको पानी में डाल आते हैं। गणेश को बिठाते हैं, बनाते हैं, सजाते हैं, इतना प्रेम प्रगट करते हैं और एक दिन उठा कर तालाब में डुबा देते हैं। पागलपन ही हुआ न निपट ? पर इस विसर्जन के पीछे एक बड़ा ख्याल है। असल में पूजा का रहस्य ही यह है कि बनाओ और विसर्जित करो। इधर बनाओ मूर्ति आकार में, और मिटाओ निराकार में। यह तो प्रतीक है सिर्फ। काली को बनाया है, पूजा है, फिर नदी में डाल आते हैं। आज हमें तकलीफ होती है डाल आने में। क्योंकि हमें पता ही नहीं है इस बात का कि बनाकर अगर हमने पूजा की होती, तो हमने एक और गहरे अर्थों में पहले ही विसर्जन कर दिया होता। लेकिन वह तो हमने किया नहीं। मर्ति बनाकर रखी, सजायी, बहुत सुन्दर बनायी, फिर पीड़ा होती है उसको डुबाने जब जाते हैं; क्योंकि बीच में जो असली काम था वह तो हुआ नहीं। नहीं, अगर बीच में पूजा की घटना घट जाती तो मूर्ति बनी रहती और हमारे हृदय ने उसे विसर्जित कर दिया होता—परमात्मा में ! और तब, जब हम उसे डुबाने जाते नदी में तो वह चली हुई कारतूस की तरह होती; उसके भीतर कुछ न होता। काम तो उसका हो चुका होता। लेकिन आज जब आप मूर्ति को डुबाने जाते हैं तो वह चली हुई कारतूस नहीं होती है, भरी हुई कारतूस होती है।

कुछ नहीं गया उसका । सिर्फ भरकर रख ली थी कारतूस, और डुबाने जा रहे हैं, तो पीड़ा होनी स्वाभाविक है । जो लोग उसको डुबा आये थे इक्कीस दिन के बाद, उन्होंने इक्कीस दिन में कारतूस चला ली थी । वह इक्कीस दिन में उसको विसर्जित कर चुके थे । पूजा है विसर्जन । मूर्ति का छोर तो हमारी तरफ है, जहां से हम यात्रा शुरू करेंगे । और पूजा वह विधि है, जहां से हम आगे बढ़ेंगे । मूर्ति पीछे छूट जायेगी फिर शेष पूजा ही रह जायेगी । मूर्ति पर जो रुक गया उसने पूजा नहीं जानी । पूजा पर जो चला गया, उसने मूर्ति को पहचाना । इस मूर्ति के पीछे, इस मूर्ति के प्रयोग में, इस पूजा में क्या मूल आधार सूत्र है ?

एक, जिस परम सत्य की खोज में आप चले हैं, या परम शक्ति की खोज में चले हैं, उसमें छलांग लगाने के लिए कोई जंपिंग बोर्ड, कोई जगह तो चाहिये; जहां से आप छलांग लगायेंगे । उस परम के लिए कोई जगह की जरूरत नहीं है, पर आपको तो खड़े होने के लिए जगह की जरूरत पड़ेगी, जहां से आप छलांग लगायेंगे । माना कि सागर में कूद चले हैं, सागर है अनंत, पर आप तो तट के किसी किनारे पर खड़े होकर ही छलांग लेंगे न ? छलांग लेने तक तो तट पर ही होंगे न ? छलांग लेते ही तट के बाहर हो जायेंगे । लेकिन पीछे लौटकर तट को इतना धन्यवाद तो देंगे न, कि तुझसे ही हमने अनंत में छलांग ली थी । उल्टा दीखता है । साकार से निराकार में छलांग हो सकती है ? अगर तर्क में सोचने जायेंगे, तो गलत है बात । साकार से निराकार में छलांग कैसे होगी ? साकार तो और साकार में ही ले जायेगा । कृष्णमूर्ति से पूछेंगे तो वह कहेंगे, नहीं होगी छलांग । साकार से निराकार में छलांग कैसे होगी ? शब्द से निःशब्द में कैसे कूदियेगा । नहीं, पर सब छलांगें साकार से निराकार में होती हैं ! क्योंकि गहरे में साकार, निराकार के विपरीत नहीं है, निराकार का ही एक हिस्सा है और अविभाजित हिस्सा है । विभाजित हमें दिखायी पड़ता है । हमारी देखने की क्षमता सीमित है, इसलिए । अन्यथा अविभाज्य है । जब हम सागर के किनारे खड़े होते हैं और तट को देखते हैं तो स्वभावतः हमें लगता है कि तट सागर से अलग है । वह जो दूसरा तट है सागर के उस पार, बहुत बहुत दूर, वह अलग है । अगर ऐसा सोचते हैं तो फिर हमें पता नहीं है । तो थोड़ा हमें सागर में नीचे उतर कर देखना चाहिए, तो हम पायेंगे, यह तट और दूसरा तट नीचे से जुड़े हैं । अगर हम वैज्ञानिक की भाषा में सोचें, ठीक ठीक भाषा में सोचें, तो एक बहुत मजेदार घटना पता चलेगी । सागर में मिट्टी है पूरी तरह, और मिट्टी में सागर सब जगह छिपा है । मिट्टी में गड्ढा खोदिये वहीं पानी निकल आता है । सागर में गड्ढा खोदिये, मिट्टी निकल आयेगी । अगर इसको ठीक वैज्ञानिक भाषा में कहें तो इसका मतलब हुआ कि सागर में मिट्टी की मात्रा जरा कम और पानी की मात्रा जरा ज्यादा है । और मिट्टी में, मिट्टी की जमीन में,

मिट्टी की मात्रा जरा ज्यादा और पानी की मात्रा जरा कम है । फर्क मात्रा का है, डिग्रीज का है । पर दोनों अलग जरा भी नहीं हैं । सब संयुक्त है । जिसको हम साकार कहते हैं, वह भी निराकार से संयुक्त है । जिसको हम निराकार कहते हैं, वह साकार से संयुक्त है । और हम साकार में खड़े हैं । मूर्ति की दृष्टि, इस सत्य को स्वीकार करके चलती है कि हम साकार में खड़े हैं । वह हमारी स्थिति है । उसको इन्कार करने का उपाय नहीं है । और हम जहां खड़े हैं, वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है । ध्यान रहे, हमें जहां होना चाहिए वहां से यात्रा शुरू नहीं होती । हम जहां हैं वहीं से यात्रा शुरू हो सकती है । बड़ी तार्किक दृष्टियां वहां से शुरू करती हैं यात्रा, जहां हमें होना चाहिए । जो हम हैं ही नहीं, वहां से यात्रा शुरू कभी नहीं हो सकती । यात्रा तो जहां हम हैं, वहीं से शुरू होगी ।

हम कहां हैं ? हम मूर्त में जी रहे हैं । हमारी सारी अनुभव की सम्पदा मूर्त की सम्पदा है । हमने कुछ भी ऐसा नहीं जाना जो मूर्त न हो । आकार वाला न हो । हमने सब आकार में जाना है । प्रेम किया है तो आकार को, और घृणा की है तो आकार को; आसक्त हुए हैं तो आकार में और अनासक्ति साधी है तो आकार में । मित्र बने हैं तो आकार में और शत्रु बनाये हैं तो आकार में । हमने जो भी किया है वह आकार है । मूर्ति इस सत्य को स्वीकार करती है । और इसलिए अगर हमें निराकार की यात्रा पर निकलना है तो हमें निराकार के लिए भी आकार देना पड़ेगा । निश्चित ही ये आकार अपनी अपनी प्रतिमा के आकार होंगे । किसी ने महावीर में निराकार को अनुभव किया है, किसी ने कृष्ण में निराकार को अनुभव किया है, किसी ने जीसस में निराकार के दर्शन किये हैं । जिसने जीसस में निराकार के दर्शन किये हैं, जिसने जीसस की आंखों में झांका, वह दरवाजा मिल गया उसे, जिससे खुला आकाश दिखायी पड़ता है । जिसने जीसस का हाथ पकड़ा, थोड़ी देर में वह हाथ मिट गया और अनंत का हाथ, हाथ में आ गया । जिसने जीसस की वाणी सुनी, और शब्द नहीं शब्द के जो पार है, उसकी प्रतिध्वनि हृदय में गूंज गयी, वह अगर जीसस की मूर्ति बनाकर पूजा में लग सके तो निराकार में छलांग के लिए उसे इससे ज्यादा आसान कोई और बात न हो सकेगी । किसी को कृष्ण में दिखायी पड़ा है, किसी को बुद्ध में, किसी को महावीर में । और सबसे पहले हमें 'किसी' में ही दिखायी पड़ेगा, यह स्मरण रखें । सबसे पहले हमें सीधा, शुद्ध निराकार दिखायी नहीं पड़ जायगा । शुद्ध निराकार को देखने की हमारी क्षमता और पात्रता नहीं है । निराकार भी बंध कर ही आयेगा कहीं तभी हमें दिखायी पड़ेगा । अवतार का यही अर्थ है—निराकार का बंधा हुआ रूप, निराकार की सीमा । उल्टा लगता है, पर यही अर्थ है अवतार का । एक झरोखा, जहां से बड़ा आकाश दिखायी पड़ जाता है—एक झलक ! निराकार से सीधी मुलाकात नहीं होगी । पहले तो

कहीं आकार में ही उसकी प्रतीति होगी। फिर जिस आकार में उसकी प्रतीति हो जाय, उस आकार से बार बार उसी प्रतीति में उतरना आसान हो जायेगा।

बुद्ध को जिसने देखा है, बुद्ध की प्रतिमा को देखते ही प्रतिमा भूल जायेगी और बुद्ध सजीव हो उठेंगे। जिसने बुद्ध को चाहा है और प्रेम किया है, उसके लिए ज्यादा देर नहीं लगेगी कि यह पत्थर की प्रतिमा विलीन हो जाय और सजीव व्यक्तित्व स्थापित हो जाय। तो बुद्ध हों, कि महावीर हों, कि कृष्ण हों, कि क्राइस्ट हों, वे सब अपने पीछे व्यवस्थाएं छोड़ गये हैं। जिन व्यवस्थाओं से उनको चाहने वाला व्यक्ति कभी भी उनसे पुनः संबंधित हो जाय। और आकार बहुत बड़ी व्यवस्था है। मूर्ति को बनाने की जो कला है या विज्ञान है, उसमें बहुत सी बातों का ख्याल और हिसाब रखा गया है। अगर उतनी सारी बातों के हिसाब और ख्याल से मूर्ति बनायी गयी हो तो गहरे परिणाम ले आयेगी। जैसे, दो-तीन बातें ख्याल कर लेने जैसी हैं:

अगर आपने बुद्ध की प्रतिमाएं देखी हैं तो बुद्ध की प्रतिमाओं को, हजारों प्रतिमाओं को देखकर भी एक बात पक्की अनुभव में आ जायेगी कि प्रतिमाएं व्यक्ति की कम, और किसी भाव दशा की ज्यादा हैं। बुद्ध की हजार प्रतिमाएं रखी हों तो वे व्यक्ति की कम, किसी भाव दशा की, स्टेटस आफ माइंड की प्रतिमाएं हैं। अगर बुद्ध को गौर से देखेंगे, बुद्ध की प्रतिमा पर ध्यान करेंगे तो थोड़ी ही देर में एहसास होना शुरू हो जायेगा एक अद्भुत अनुकंपा का! एक महाकरुणा का! जो आपको चारों तरफ से घेरने लगेगी। बुद्ध का उठा हुआ हाथ, या बुद्ध की आधी मुंदी हुई पलकें, बुद्ध के चेहरे का अनुपात, बुद्ध के बैठने का ढंग, बुद्ध के मुड़े हुए पैर, बुद्ध की जो सारी आनुपातिक व्यवस्था है वह व्यवस्था, किसी गहरे में आपके भीतर करुणा से संबंध जोड़ने का उपाय है।

कोई पूछ रहा था फ्रांस के एक बहुत बड़े चित्रकार से कि तुम यह चित्र बनाते हो, किसलिए? तो उस ने कहा कि इसलिए चित्र बनाता हूं कि मेरे हृदय में जो भाव था, खोजता हूं कि उस भाव के लिए आकार क्या होगा? और आकार बना देता हूं। अगर कोई उस आकार पर ठीक से ध्यान करे तो वह उस भाव को उपलब्ध हो जायेगा जो मेरे भीतर था। आप जब किसी चित्रकार का चित्र देखते हैं तो सिर्फ आकार देखते हैं, आपको ख्याल भी नहीं होता इस बात का कि तब चित्रकार की आत्मा आपके भीतर उतर जाती है। एक कागज पर कोई आड़ी-टेढ़ी लकीरें खींच दे, तो सिर्फ आड़ी-टेढ़ी लकीरें नहीं होतीं। अगर आप उनपर ध्यान करें तो आपके भीतर भी चित्र उतना ही आड़ा-टेढ़ा हो जायेगा। क्योंकि चित्त का एक नियम है कि वह जो देखता है, उसके अनुरूप प्रतिध्वनित होता है, रिजोनेंट होता है। अगर उतनी ही लकीरें, आड़ी-टेढ़ी न खींची जायं और एक विशेष अनु-

पात में खींची जायं तो आपका चित्त उनको देखकर उस विशेष अनुपात को उपलब्ध होता है।

एक फूल को देखकर आपको जो खुशी उपलब्ध होती है, आपको पता भी नहीं होगा कि वह फूल की कम, फूल की पंखुड़ियों के अनुपात की है। फूल के होने का जो ढंग है वह आपके भीतर आपके हृदय को भी फूल के होने का ढंग देता है। अगर एक सुन्दर व्यक्ति के चेहरे को देखकर आपको आकर्षण पैदा होता है तो उसका कुल कारण इतना ही नहीं है कि उस व्यक्ति का चेहरा किसी हिसाब से सुन्दर है। गहरे में असली कारण यह है कि उस व्यक्ति का सुन्दर चेहरा आपके भीतर सौंदर्य का रिजोनेंस पैदा करता है। आपके भीतर भी कोई चीज उस सुन्दर के साथ सुन्दर हो उठती है, और कुरूप के साथ कुरूप हो जाती है। कुरूप व्यक्ति के पास बैठकर आपको जो परेशानी होती है वह क्या परेशानी है? सुन्दर व्यक्ति के पास बैठकर आपको जो सुखद प्रतीति होती है वह कौन सी प्रतीति है? असल में सुन्दर अनुपात आपके भीतर भी सौंदर्य की धारा को बहाता है और आपको सुन्दर बना जाता है। कुरूप का अर्थ ही केवल इतना है, गैर आनुपातिक, नान प्रपोर्शनेट, आड़ा-तिरछा, जिससे भीतर कोई समरस ध्वनि पैदा नहीं होती, संगीत पैदा नहीं होता, विशृंखलता पैदा होती है, अराजकता पैदा होती है, भीतर सब कंपित हो जाता है।

जर्मनी का एक चित्रकार, एक दिन आत्महत्या करके मरा। निजिंस्की उसका नाम था। जब उसने आत्महत्या की और उसके घर की जांच-पड़ताल हुई तो जो लोग भी उसके घर में गये वे दस-पन्द्रह मिनट के बाद बाहर आ गये और कहा कि उसके घर में जाना ठीक नहीं है। वहां कोई भी आदमी इतने दिन रुक जाय तो आत्महत्या कर लेगा। बड़ी अजीब सी बात थी। उस घर के भीतर क्या होगा? निजंस्की ने एक एक दीवाल को इस तरह से चित्रित किया था—जहां सिर्फ दो ही रंगों का उपयोग किया था उसने अपने आखिरी दो साल में—सुर्ख और काला। एक एक दीवाल, फर्श, छत सब पुती हुई, पर रंग सिर्फ काला और लाल। दो साल से वह यही काम कर रहा था भीतर। पागल हो गया था, आश्चर्य नहीं। और आत्महत्या भी कर ली तो आश्चर्य नहीं। जिन लोगों ने उसके मकान को देखा, उन सभी लोगों ने कहा कि उस मकान के भीतर दो साल कोई भी रह जाय तो पागल होकर रहेगा। और आत्महत्या करने से दो साल तक बच जाय तो यह भी काफी है। निजिंस्की अद्भुत हिम्मत का आदमी रहा होगा। सारा का सारा वातावरण, पूरा का पूरा इतना अराजक था कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

आप जो भी देखते हैं उसकी प्रतिध्वनि भीतर होती है और आप किसी गहरे अर्थों में उसी जैसे हो जाते हैं। बुद्ध की सारी मूर्तियां करुणा के आसपास निर्मित

हैं, क्योंकि करुणा बुद्ध का आंतरिक संदेश है, कम्पैशन ! और करुणा आ जाय, तो बुद्ध कहते हैं, सब आ गया। करुणा का क्या अर्थ ? प्रेम नहीं है करुणा का अर्थ। प्रेम तो हम सबको आता है और चला जाता है। करुणा ऐसे प्रेम का नाम है जो आती तो है, लेकिन फिर जाती नहीं। और प्रेम में तो दूसरे से कुछ न कुछ पाने की, गहरे में सूक्ष्म आकांक्षा होती है। करुणा में इस बात का बोध होता है कि किसी के पास कुछ देने को ही नहीं है तो कोई देगा कैसे ? प्रत्येक इतना दीन है कि देने को किसी के पास कुछ नहीं है। इसीलिए करुणा है। करुणा में कोई मांग नहीं है, क्योंकि किससे मांगें, किसी के पास कुछ भी नहीं है। इस भाव दशा में दान का कोई ख्याल नहीं है, लेकिन इतनी महाकरुणा के आविर्भाव में अपने आप हृदय के द्वार खुल जाते हैं और स्वतः ही कुछ बंटना शुरू हो जाता है।

बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा था कि तुम ध्यान करो, पूजा करो, प्रार्थना करो, लेकिन स्मरण रखना, पूजा और प्रार्थना और ध्यान के बाद तुम्हें जो शांति मिले, तत्क्षण उसे बांट देना। एक क्षण भी अपने पास मत रखना। तुम्हें मैं अधार्मिक कहूंगा, अगर तुमने एक क्षण भी अपने पास रखा। जब तुम्हें आनन्द का अनुभव हो ध्यान के बाद, तत्क्षण प्रार्थना करना कि हे प्रभु, उन सबको मिल जाय जिन्हें आवश्यकता है। खोल देना अपना द्वार हृदय का और बह जाने देना जहां जहां गड्ढे हैं वहां वहां। यह जो महाकरुणा है, इसी को बुद्ध ने महामुक्ति कहा है।

तो बुद्ध की सारी प्रतिमाएँ इस अनुपात में निर्मित की गयी हैं कि उनकी पूजा करने वाला व्यक्ति उनके सान्निध्य में बैठकर उस रिजोनेन्स को, उस प्रतिध्वनि को उपलब्ध हो जाय जहाँ से करुणा का प्रवाह अनुभव करने लगे। आप बुद्ध की प्रतिमा के पास बैठकर पूजा करेंगे तो कैसे करेंगे ? मैं एक उदाहरण ले रहा हूँ, ताकि आपको और भी ख्याल आ सके। अगर बुद्ध की प्रतिमा पर पूजा करनी है, तो पूजा का केन्द्र बुद्ध का हृदय बनाना पड़ेगा। जिसको यह पता नहीं है, वह बुद्ध की मूर्ति से कभी भी परिचित नहीं हो पायेगा। क्योंकि बुद्ध की मूर्ति का जो निहित ध्येय है वह आपके भीतर महाकरुणा का जन्म है। और करुणा का जो केन्द्र है वह हृदय है। इसलिए बुद्ध की मूर्ति पर ध्यान करते वक्त बुद्ध के हृदय पर ध्यान रखना पड़ेगा। एक तरफ बुद्ध के हृदय पर ध्यान रखना पड़ेगा और दूसरी तरफ अपने हृदय पर ध्यान रखना पड़ेगा। दोनों के हृदय एक साथ धड़क रहे हैं, इसकी प्रतीति में गहरा उतरना पड़ेगा; और एक क्षण आयेगा कि अपना ही हृदय धड़कता हुआ मालूम नहीं पड़ेगा, बल्कि अपने ही हृदय से जैसे एक धागा जुड़ा हो और बुद्ध की प्रतिमा के भीतर भी हृदय धड़कता हो ऐसा लगेगा। यह सिर्फ मालूम ही नहीं पड़ेगा, बुद्ध की प्रतिमा पर ठीक हृदय की धड़कन खुली आँख से भी अनुभव होने लगेगी। और जब ऐसी धड़कन

बुद्धि की प्रतिमा पर अनुभव हो, तो समझना कि बुद्ध में प्राण की प्रतिष्ठा हुई। नहीं तो प्राण की प्रतिष्ठा नहीं है, और पूजा का कोई अर्थ नहीं है। बुद्ध का हृदय, पत्थर की मूर्ति का हृदय आपको बिल्कुल धड़कता हुआ मालूम पड़ सकता है, पड़ता है। अगर अपने हृदय की धड़कन पर ठीक ध्यान किया गया और बुद्ध के हृदय पर ध्यान किया गया तो दोनों में संयोग स्थापित हो जाता है। तब आपका हृदय बुद्ध की प्रतिमा में भी धड़कता है, ठीक वैसे ही जैसे दर्पण में आपकी प्रतिछबि दिखायी पड़ती हो। दर्पण में आपने ख्याल किया कभी ? दर्पण में जो आपकी तस्वीर दिखायी पड़ती है उसका हृदय धड़कता है या नहीं धड़कता है ? पर दर्पण में धड़कता है तो हम कहते हैं ठीक है, दर्पण तो दर्पण है। मूर्ति भी गहरे अर्थों में दर्पण है, आध्यात्मिक अर्थों में दर्पण है। और ठीक वैसे ही मूर्ति में हृदय धड़कता हुआ मालूम पड़ने लगेगा। हृदय न धड़के तब तक पूजा की शुरुआत नहीं हो सकती, क्योंकि मूर्ति तब तक पत्थर है। तब तक मूर्ति नहीं बनी, जब तक कि जीवन्त न हो गयी हो, जब तक उसमें प्राण प्रतिष्ठा न हो गयी हो।

बुद्ध की प्रतिमा पर अगर ध्यान करना है तो हृदय पर करना पड़ेगा। अगर महावीर की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो दूसरा केन्द्र है। अगर क्राइस्ट की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो तीसरा केन्द्र है। अगर कृष्ण की प्रतिमा पर ध्यान करना है तो चौथा केन्द्र है। ओर दुनिया में जितनी प्रतिमाएँ हैं, प्रत्येक प्रतिमा किसी पृथक केन्द्र पर निर्मित है। बड़ी हैरानी की बात यह है कि उन प्रतिमाओं को हजारों साल तक एक समाज पूजता रहेगा और उसे कोई पता नहीं होगा कि वह किस केन्द्र की प्रतिमा को पूज रहा है ! यदि केन्द्र का पता नहीं है तो आपका प्रतिमा से कभी कोई सम्बन्ध नहीं होगा। आप फूल रखकर आ जायेंगे, धूप जला आयेंगे, हाथ जोड़कर घर लौट आयेंगे, तो समझिये आप पत्थर के सामने से ही लौट आये। ध्यान रहे, पत्थर को प्रतिमा बनाना पड़ता है ! वह मूर्तिकार नहीं बनायेगा, वह आपको बनाना पड़ेगा ! मूर्तिकार तो सिर्फ आकार देगा पत्थर को। पर उसको प्राण कौन देगा ? प्राण—पूजा करने वाला देगा !

मूर्ति को प्राण दिये बिना वह पत्थर है। प्राण दिये जाने के बाद पूजा का प्रारंभ होता है। पूजा क्या है ? अगर आप किसी मूर्ति को प्राण देने में समर्थ हो जायें तो फिर पूजा क्या है ? फिर पूजा क्या होगी ! जैसे ही मूर्ति को प्राण दिया जा सके वैसे ही वह जीवन्त व्यक्तित्व हो गया। इसको थोड़ा समझना जरूरी होगा। जैसे ही कोई चीज जीवन्त हो जाय, उसमें आकार और निराकार दोनों समाविष्ट हो जाते हैं। क्योंकि देह तो आकार है और जीवन निराकार है। जीवन का कोई आकार नहीं है। देह का आकार है। मेरा हाथ कोई काट दे तो मेरा जीवन नहीं कटता।

अगर मेरी आँखें बन्द हों, और मेरे शरीर से मेरे पूरे सम्बन्ध तोड़ दिये गये हों, और मेरा हाथ काट दिया जाय तो मुझे कभी पता नहीं चलेगा। ऐसा किया जा सकता है कि मेरे मस्तिष्क को पूरा का पूरा निकाल लिया जाय बाहर, और उसे बिल्कुल पता न चलेगा कि शरीर अलग हो गया, क्योंकि जीवन का कोई आकार नहीं है। जीवन निराकार है। जहाँ भी जीवन है वहाँ आकार और निराकार का मिलन है। पदार्थ का आकार है, चेतना का कोई आकार नहीं। जबतक मूर्ति पत्थर है, तबतक आकार है, और जैसे ही उसको प्राण दिया, प्रतिष्ठा हुई और भक्त ने अपने हृदय को मूर्ति में धड़काया, कि मूर्ति जीवन्त हुई। ध्यान रहे, जो भक्त अपने हृदय को मूर्ति में न डाल सकेगा वह भक्त परमात्मा के हृदय को अपने में डालने की पात्रता न पा सकेगा। पात्रता ही यही है। जैसे ही भक्त अपने हृदय को मूर्ति में डालपाता है और मूर्ति जीवंत हो जाती है, वैसे ही मूर्ति दोनों बातें हो गयी–– एक तरफ आकार रहा और दूसरी तरफ से निराकार का द्वार खुल गया। उस द्वार से यात्रा करने का नाम पूजा है।

पूजा के संबंध में पहली बात तो यह कि वह है मूर्त से अमूर्त की यात्रा। उसके एक एक कदम हैं। बुनियादी आधारभूत कदम पूजा का है––कि व्यक्ति सेल्फ सेंटर्ड है, स्व केन्द्रित है। हमारे जीने की सारी व्यवस्था ऐसी है कि जैसे 'मैं' सारी दुनिया का केन्द्र हूँ। चाँद-तारे मेरे लिए घूम रहे हैं, पक्षी मेरे लिए उड़ रहे हैं, सूरज मेरे लिए निकलता है। इस सारे जगत का केन्द्र हूँ 'मैं'। साधारण व्यक्ति, जिसने पूजा को नहीं जाना, स्व केन्द्रित होकर जीता है। कुछ भी हो, मैं केन्द्र पर हूँ, बाकी सारा विश्व मेरी परिधि है। यही हमारी सब की दृष्टि है। पूजा में इस दृष्टि के विपरीत चलना पड़ेगा। पूजा का सार सूत्र है—केन्द्र कहीं और है, मैं परिधि हूँ। अधार्मिक आदमी का सार सूत्र है—मैं केन्द्र हूँ और सब जगह परिधि है। अगर परमात्मा भी कहीं होगा तो वह परिधि पर है, केन्द्र मैं हूँ। वह भी मेरे लिए है। जब मैं बीमार हो जाऊँ तो मेरी बीमारी ठीक कर दे, मेरे लड़के को नौकरी न मिले तो नौकरी लगवा दे। किसी मुसीबत में पड़ जाऊँ तो मेरा सहारा बन जाय। वह भी मेरे लिए है। ध्यान रहे, जिस आदमी ने इस भाँति सोचा हो कि परमात्मा मेरे लिए है, उसकी आस्तिकता, नास्तिकता से ज्यादा बदतर है। उसे ख्याल ही नहीं, वह क्या कह रहा है। पूजा का अर्थ है, प्रार्थना का अर्थ है, धार्मिक भाव का अर्थ है कि अब तू केन्द्र हुआ और मैं परिधि हूँ। जैसे ही मूर्ति जीवंत हो गयी और उसका हृदय धड़कने लगा, जैसे ही यह प्रतीत हुआ कि मूर्ति में प्राण आ गये, निराकार प्रवेश कर गया ; वैसे ही जो दूसरा बुनियादी सूत्र है वह यह है, कि अब मैं परिधि पर हूँ। अब मैं तेरे लिए नाचूंगा, तेरे लिए गाऊँगा, तेरे लिए जिऊँगा, तेरे लिए श्वास लूँगा। अब जो कुछ भी होगा, तेरे लिए होगा। तू केन्द्र है!

रामकृष्ण के पास एक बहुत बड़ा ज्ञानी ठहरा हुआ था तोतापुरी। तोतापुरी ने रामकृष्ण से कहा, तू कबतक मूर्ति में उलझा रहेगा ? अब निराकार की यात्रा पर निकल! तो रामकृष्ण ने कहा, जरूर निकलूँगा। रामकृष्ण सबसे सीखने को सदा तैयार हैं। जो भी सिखाने आ जाता था उससे सीखने को तैयार थे। रामकृष्ण ने कहा, जरूर निकलूँगा लेकिन जरा रुको। मैं जरा माँ को भीतर जाकर पूछ आऊँ। तोतापुरी ने कहा, कौन माँ ? रामकृष्ण ने कहा, काली है न जो, उससे मैं जरा पूछ आऊँ। तोतापुरी ने कहा, यही तो मैं तुम्हें कह रहा हूँ कि पत्थर में कबतक उलझे रहोगे ? और तुम वहीं पूछने जा रहे हो ? तो रामकृष्ण ने कहा, बिना पूछे तो कोई उपाय नहीं। क्योंकि जिस दिन पूजा शुरू हुई थी मैं परिधि पर हो गया हूँ और मां को केन्द्र पर रख लिया है। अब तो बिना पूछे कोई उपाय नहीं, अब तो मैं हूँ ही नहीं। अब तो मैं जो भी कर सकता हूँ वह उसी के लिए है। उसकी आज्ञा हो गयी तो ठीक और उसकी आज्ञा नहीं हुई तो ठीक। उनकी बिना आज्ञा के मोक्ष भी अब व्यर्थ है और उसकी आज्ञा हो नर्क के लिए भी, तो मैं राजी हूँ। उससे बिना पूछे अब कुछ भी नहीं हो सकता है। तोतापुरी के तो समझ के बाहर पड़ी बात। मूर्ति-पूजा छोड़ने के लिए मूर्ति से पूछने जायेंगे रामकृष्ण, तो कैसे छूटेगी मूर्ति-पूजा ? जिसको छोड़ना है उससे पूछना क्या है ? और छोड़ने के लिए पूछना पड़ता है ? रामकृष्ण तबतक भीतर चले गये हैं। तोतापुरी पीछे पीछे जाकर खड़े हो गये हैं। देखा कि रामकृष्ण की आँखों से तरल आँसुओं की धार बहती है। वह रो रहे हैं और बार बार कह रहे हैं कि नहीं, आज्ञा दे दे। फिर रोते हैं कहते हैं, नहीं, आज्ञा दे दे। तोतापुरी राह देखते होंगे, आज्ञा दे दे। फिर प्रसन्न हो गये, फिर नाचने लगे हैं। तोतापुरी ने कहा, क्या हुआ ? कहा, आज्ञा मिल गयी। अब राजी हूँ। अब कोई सवाल नहीं है। केन्द्र पर रखने का अर्थ है अब से मेरा जीवन समर्पित जीवन होगा। पूजा का अर्थ है समर्पित जीवन! पूजा का अर्थ है, अब मैं ऐसे जिऊँगा जैसे परमात्मा के लिए जी रहा हूँ। उठूँगा-बैठूँगा उसके लिए, खाऊँगा-पिऊँगा उसके लिए, बोलूँगा, चुप होऊँगा उसके लिए।

केन्द्र पर जैसे ही किसी ने निराकार को रखा, वैसे ही एक अद्भुत प्रवाह शुरू होता है। एक फैलाव शुरू होता है। हम अपने ही हाथ से सिकुड़ कर बैठे हैं। बीज टूट जाता है और वृक्ष बनने लगता है। हम सिकुड़ कर बैठे हैं, सब तरफ से दबा कर बैठे हैं––'मैं'। वह टूट जाता है। फिर बड़े अंकुर निकलते हैं और फैलने शुरू हो जाते हैं। फिर वे अंकुर इतने फैल सकते हैं कि पूरे विराट को घेर लें। और बड़े आश्चर्य की बात है, और धर्म ऐसे बहुत से आश्चर्यों से भरा हुआ है, कि जो व्यक्ति अपने को बचाता है वह मिटा लेता है और जो अपने को खो देता है वह अपने को पा लेता है। यह पूजा का आधार है। परमात्मा को रखना है केन्द्र पर, स्वयं को रख देना है परिधि

पर। बहुत कठिन है। हमें ख्याल ही नहीं होता है कि यह कैसे हो सकेगा, क्योंकि हम पैदा होते से ही अपने को केन्द्र मानकर जीते हैं।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे कि तुम जाकर कुछ दिन मरघट में रह आओ। तीन महीने तो अनिवार्य था। कोई भिक्षु संन्यास ले, तो उसे तीन महीने मरघट में रहना पड़े। भिक्षु कहते भी कि हम आपके पास सीखने आये हैं, मरघट से क्या होगा? बुद्ध कहते, पहले तुम मरघट में रहो। तीन महीने बाद तुम आ जाना। उससे तुम्हारे 'मैं' का केन्द्र शिथिल हो जाय तो आसानी होगी। तीन महीने रोज सुबह-साँझ कोई आयेगा, कोई मरेगा, कोई जलेगा और तुम देखते रहोगे, देखते रहोगे! कभी तीन महीने में एकाध दिन तो ख्याल आयेगा कि तुम्हारे लिए यह जगत नहीं चल रहा है। तुम नहीं थे तब भी चल रहा था। यह आदमी जो तुम्हारे सामने जल रहा है, यह अभी थोड़ी देर पहले इसी ख्याल में था कि जगत मेरे लिए चल रहा है। जगत को पता भी नहीं चला, यह आदमी समाप्त हो गया है! सागर को खबर भी नहीं हुई और लहर मिट गयी! तुम देखते रहना, किसी भी दिन, जिस दिन तुम्हें ख्याल आ जाय कि यह जगत तुम्हारे लिए नहीं चल रहा है—तुम आ जाना। उसी दिन आराधना शुरू हो सकेगी। उसी दिन साधना शुरू हो सकेगी। जब तक तुम केन्द्र पर हो तब तक पूजा का, प्रार्थना का, ध्यान का कोई भी उपाय नहीं है। भ्रांति लेकिन बहुत मजबूत है। पूजा शुरू होती है इस भ्रांति के विसर्जन से। इसलिए पूजा में 'मैं' शब्द गिर जाता है और 'तू' शब्द महत्त्वपूर्ण हो जाता है। तू ही है, यह महत्त्व पूर्ण हो जाता है।

ध्यान रहे, पहले भक्त मूर्ति को मिटाता है और अमूर्त का द्वार खोलता है। फिर अपने को मिटाता है और पूजा में प्रवेश होता है। मूर्ति के भीतर से अमूर्त का द्वार खोल लेने पर स्वयं को मिटाना सरल हो जाता है। सरल इसलिए हो जाता है कि जैसे ही यह दिखायी पड़ता है कि एक पत्थर की मूर्ति भी अमूर्त के लिए द्वार बन गयी और निराकार को दिखाने लगी तो मैं भी निराकार के लिए द्वार बन सकता हूँ। मूर्ति को भूला तो निराकार दिखायी पड़ा। अब स्वयं को भूलूँ तो और भी गहरी छलाँग लग सकती है। ध्यान रहे, दो आकारों में तो भेद होता है लेकिन दो निराकारों में कोई भेद नहीं होता। सच तो यह है कि दो का शब्द आकार के लिए ही प्रयोग करना ठीक है, निराकार के लिए दो कहने का कोई अर्थ नहीं। निराकार एक ही होता है। जब मूर्ति निराकार हो गयी और भक्त भी निराकार हो गया तो दो निराकार नहीं बचते, एक ही निराकार हो जाता है। निराकार में संख्या का उपाय नहीं है। आकार या संख्या, यह तो आधार हैं। लेकिन आधार को व्यवहृत करने की, उसको प्रयोग में लाने की अनेक विधियाँ हैं।

दो-चार सूत्र समझ लेने जैसे हैं। जैसे—सूफियों ने पूजा के लिए नृत्य को गहरा मूल्य दिया। भक्तों ने भी दिया। मीरा ने, चैतन्य ने बहुत मूल्य दिया। नृत्य की कुछ खूबियाँ हैं जिनके कारण अनेक अनेक भक्ति की साधनाओं ने नृत्य को चुना। नृत्य की पहली खूबी तो यह है कि नृत्य करते समय अधिकतम यह प्रतीति होती है कि आप शरीर नहीं हैं। नृत्य को जो गति है, जो मूवमेंट है, उस तीव्र गति में, थोड़ी ही देर में आप और आपके शरीर का साथ छूट जाता है। असल में आपकी चेतना और आपके शरीर का साथ, एक अडजेस्टमेंट है। एक संयोजित व्यवस्था है। आप जो काम दिन-रात करते रहते हो सुबह से साँझ तक, उस काम करने में वह संयोग कभी नहीं टूटता है, वह व्यवस्थित है।

गुरुजिएफ कहा करता था, जैसे किसी डिब्बे में बहुत सी चीजें रखी हों और कोई जोर से डिब्बे को हिला दे तो उसके भीतर का सब अरेंजमेंट, भीतर की सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है। कोई पत्थर का टुकड़ा नीचे था, वह ऊपर आ जाता है, कोई ऊपर था वह बीच में चला जाता है, कोई बीच में था वह किनारे चला जाता है। उस डिब्बे के भीतर चीजों का जो समायोजन था वह सब अस्त-व्यस्त हो जाता है। अगर उस डिब्बे के पत्थरों को एक ही तरह से रहने की आदत से कोई अहंकार पैदा हो गया हो, कि हम हैं, वह टूट जाता है। उनको पता चलता है कि 'मैं नहीं हूँ' यह तो सब टूट गया! यह तो सिर्फ व्यवस्था थी। यह एक अरेंजमेंट था।

तो सूफियों ने, चैतन्य ने, मीरा ने, नृत्य का गहरा उपयोग किया। और दरवेश नृत्य तो बहुत ही गहरे हैं। इतने जोर से गति देना है शरीर को, कि फकीर की जितनी सामर्थ्य हो, जितनी ऊर्जा हो, जितनी शक्ति हो पूरी दाँव पर लगा देनी है। शरीर का रोयाँ रोयाँ नाचने और काँपने लगे। उस स्थिति में, हमारी चेतना और शरीर के बीच में जो संबंध स्थापित हो गया है, वह टूट जाता है। अचानक पता चलता है कि शरीर अलग है, और मैं अलग हूँ। पूजा के लिए इसका उपयोग कीमती हो जाता है।

ईसाइयों के दो सम्प्रदाय हुए हैं—एक सम्प्रदाय अब भी काफी बड़ी प्रभावशाली शक्ति रखता है—क्वेकर्स। एक दूसरा सम्प्रदाय था, शेकर्स। ये नाम सूचक हैं। शेकर्स उस सम्प्रदाय का नाम था जो शरीर को शेक इतने जोर से करते, इतने जोर से शरीर को कंपाते थे पूजा के वक्त, कि उनका नाम शेकर्स पड़ गया। शरीर को इतने जोर से कंपाना कि रोयाँ रोयाँ कंपन बन जाय, ट्रेम्बलिंग हो जाय। पसीना-पसीना हो जाएगा साधक! मूर्ति के सामने खड़ा है और सारे शरीर को कम्पन दे रहा है। कम्पन इतना तीव्र है कि थोड़ी ही देर में सारे शरीर से पसीने की धाराएँ बहने लगेंगी। और वह घटना घटेगी जहाँ शरीर से चेतना अलग मालूम पड़ेगी।

जब अलग मालूम पड़े तो पूजा पर चली जा सकती है। क्वेकर्स नाम भी इसीलिए पड़ा—क्वेकिंग का अर्थ भी वही होता है। भूकम्प को कहते हैं। आप अर्थक्वेक। इतने जोर से शरीर में भूकम्प पैदा करना है कि शरीर के भीतर का जो आयोजन है वह टूट जाय। इस प्रकार नृत्य का उपयोग किया गया पूजा में अनेक अनेक ढंगों से। और नृत्य ने भारी सहायता पहुँचायी है स्वयं के भीतर निराकार को अलग कर लेने के लिए। संगीत, भजन और कीर्तन का भी इसी भाँति उपयोग हुआ है।

ध्वनिशास्त्र का कुछ थोड़ा सा रूप ख्याल में ले लेना जरूरी है। फिजिक्स, भौतिकशास्त्र जैसा मानता है उसके हिसाब से, जीवन की जो आखिरी इकाई है, वह विद्युत है। लेकिन भारतीय और पूर्वीय मनीषी मानते रहे हैं कि पदार्थ की जो अंतिम इकाई है, वह ध्वनि है, विद्युत नहीं। आधुनिक विज्ञान मानता है कि विद्युत, पदार्थ की अंतिम रचना का आखिरी हिस्सा है जिससे सारी चीजें बनी हैं, –इलेक्ट्रान्स। पूर्वीय मनीषी मानते हैं कि ध्वनि, समस्त पदार्थ का आधारभूत हिस्सा है। दोनों में से कुछ भी सच हो, लेकिन दोनों के बीच एक गहरा संबंध है, वह ख्याल में ले लेना चाहिए। संभावना यह हो सकती है कि दोनों ही बातें सच हों और एक ही साथ सच हों। तब आज नहीं कल, हम उस असली तत्व को खोज लेंगे जिसका एक रूप ध्वनि है और दूसरा रूप विद्युत है। जो इन दोनों के बीच का लिंक है। शायद अध्यात्म की तरफ से खोज करने के कारण भारतीय मनीषी ध्वनि पर पहुँचा, और पदार्थ की खोज करने के कारण पश्चिमी मनीषी विद्युत पर पहुँचा। ध्यान रहे, स्वयं के भीतर खोज की है भारतीय मनीषी ने, पदार्थ के भीतर नहीं। तो स्वयं के भीतर, आपका जो स्वयं का बोध है, वह ध्वनि का आखिरी हिस्सा है। जब तक आपको अपना बोध रहेगा, आपके भीतर ध्वनि का बोध रहेगा। जितने आप भीतर गहरे उतरेंगे उतनी ध्वनि सूक्ष्म होती जायेगी, सूक्ष्म होती जायेगी, सूक्ष्म होती जायेगी। एक आखिरी घड़ी आयेगी जब बिल्कुल शून्य रह जायेगा; शून्य की भी ध्वनि है—'साउण्डलेस साउण्ड'। उसको भारतीय मनीषी अनहद नाद कहते रहे हैं। शून्य का भी अपना सन्नाटा है। उसकी भी अपनी ध्वनि है। वह उस शून्य के सन्नाटे की आखिरी पकड़ है। मनुष्य की चेतना में आखिरी चीज, निराकार में उतरने के पहले, वह ध्वनि है। इसलिए उनका कहना बिल्कुल ठीक था कि अंतिम तत्व ध्वनि होनी चाहिए। वैज्ञानिक पदार्थ की खोज करके जिस आखिरी तत्व पर पहुँचते ह जिसके आगे सब खो जाता है, निराकार आ जाता है, वह विद्युत कण है। सोचने जैसा यह है, कि पदार्थ का जो आखिरी कण है, क्या चेतना का आखिरी कण उससे पहले होगा या पीछे ? निश्चित ही चेतना, पदार्थ से ज्यादा गहन वस्तु है। निश्चित ही चेतना, पदार्थ से ज्यादा रहस्यमय वस्तु है। और संभावना यही है कि चेतना

का जो अन्तिम कण हो वह पदार्थ के अंतिम कण से आगे हो। इसलिए भारतीय मनीषी ध्वनि को विद्युत कण से आगे रखने की दृष्टि प्रस्तावित किये हुए हैं।

जो भी हो, संगीत, कीर्तन, भजन, प्रार्थना, मंत्र, सब ध्वनि के उपयोग हैं। और प्रत्येक ध्वनि से साथ आपके भीतर एक स्थिति पैदा होती है। ऐसी कोई भी ध्वनि नहीं है जो आपके भीतर कोई स्थिति पैदा न कर जाती हो। अब तो साउण्ड इलेक्ट्रानिक पर काम करने वाले वैज्ञानिकों का ख्याल है कि जिस पौधे में फूल महीने भर बाद आने वाले हैं उसके पास अगर एक विशेष प्रकार का वाद्य बजाया जाय तो फूल महीने भर पहले आ जाते हैं। जो गाय सेर भर दूध देती है उसके पास विशेष ध्वनि बजायी जाय तो उसका दूध बिल्कुल खो जाता है, या दुगुना भी हो जाता है। असल में ध्वनि का आघात होता है आपकी चेतना पर। ध्वनि आघात करती है आपके भीतर जाकर। हम तलवार से आपकी सिर्फ गर्दन काट सकते हैं, लेकिन ध्वनि की तलवार से आपके मन को भी काट सकते हैं। कोरी तलवार आपके मन को न काट पायेगी, लेकिन ध्वनि की धार ज्यादा तीक्ष्ण है जो मन को भी काट जायेगी। ऐसी ध्वनि की तीव्र धारों के प्रयोग किये गये, जिनसे मन कट जाय, साधक मिट जाय, भक्त मिट जाय और अनंत की यात्रा पर निकल जाय। सभी धर्मों ने विशेष ध्वनियों के प्रयोग किये हैं। विशेष ध्वनियों पर हजारों वर्ष की साधना से बड़े परिष्कार हुये हैं।

अभी एक साधक मेरे पास जापान से था, वह जिस सम्प्रदाय में दो वर्ष साधना करके आ रहा था वह है सोटोज़ेन। उसमें साधक को मूँह मूँह मूँह—इस तरह की आवाज करवायी जाती है। चौबीस घण्टे। साधक खाना खा लेता है, विश्राम कर लेता, है, बस इतना छोड़कर तीन बजे रात उठ आता है। स्नान करके बैठ जाता है मूँह मूँह मंह मूँह बोलता रहता है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, आप कल्पना नहीं कर सकते कि क्या होगा, क्योंकि एक ध्वनि का कभी इतना प्रयोग नहीं किया है। तीन दिन के बाद उस साधक के भीतर विचार क्षीण हो जाते हैं। मंह और मूँह की ही आवाज भीतर गूंजने लगती है। एक तूफान भीतर पैदा हो जाता है मूँह मूंह मूंह ! सारे शब्द गिर जाते हैं। मूँह की ध्वनि तलवार बन जाती है तीन दिन में, और सब विचारों को काटकर गिरा देती है। सात दिन पूरे होते होते उस साधक को 'मूँह' की आवाज करनी नहीं पड़ती। वह चाहे बैठा हो, चाहे चल रहा हो, 'मूँह' की आवाज अपने आप चलने लगती है। वह उसके रोयें रोयें में व्याप्त हो जाती है। खाना खाना मुश्किल हो जाता है उसको। क्योंकि जब वह खाना खा रहा है तब भी मूँह मूँह मूँह की आवाज चल रही है। नींद सात दिन के बाद कठिन हो जाती है, क्योंकि वह सो रहा है लेकिन ओठ उसके मूँह मूँह मूँह में लगे हुए हैं। नींद में वह आवाज उसके भीतर

घुसती जा रही है। इक्कीस दिन पूरे होते होते वह साधक शेरों की तरह दहाड़ने लगता है—मूंह। और चिल्लाने लगता है। उसकी आँखें बदल जाती हैं, उसका चेहरा बदल जाता है, उसका ढंग बदल जाता है। वह बिल्कुल रोरिंग, सिंहनाद करने लगता है 'मूंह' का। और गुरु उसको लगाये रखता है कि वह जारी रखे। जैसे ही सिंहनाद शुरू होता है वैसे ही गुरु उससे कहता है, जोर जोर से, और जोर से। फिर खाना, पीना, सोना, बन्द हो जाता है। खा ही नहीं सकता। गैप ही नहीं रखता। 'मूंह' की आवाज चलती ही रहती है। चौथे सप्ताह में उसकी नींद, उसका भोजन, उसका स्नान सब विदा हो जाता है सिर्फ 'मूंह' की आवाज चलती रहती है। वह बिल्कुल पागल हो जाता है। ठीक उस जगह पहुँच जाता है जहाँ पागल आदमी मुश्किल से कभी पहुँचता है। उस किनारे पर, जहाँ उसको कोई होश नहीं है, सिर्फ एक आवाज 'मूंह' रह गयी है। उससे पूछो नाम तुम्हारा, वह कहेगा मूंह। एक महीना निरंतर ऐसा करते उसे अपने शरीर का बोध नहीं रह जाता, बल्कि एक ध्वनि का बोध भर रह जाता है। मैं कौन हूँ, उसे पता नहीं रहता। उस पर सब पाबंदी रखनी पड़ती है। उसको रोक कर रखना पड़ता है, वह कहीं भी जा सकता है। वह कुछ भी कर सकता है। अब उसे कुछ भी पता नहीं है, अब उस पर चौबीस घण्टे विजिल, पहरा रखना पड़ता है। जिस दिन से उसमें सिंह की आवाज शुरू होती है और खाना-पीना-नींद बन्द हो जाती है, उस दिन से उस पर पूरा पहरा रखना पड़ता है। अचानक आखिरी क्षणों में वह आखिरी आवाजें लगाता है। इतनी भयंकर आवाजें लगाता है कि जिसका कोई हिसाब हम नहीं लगा सकते। जितनी शक्ति होती है वह सारी आवाज में ही निकलती है। जैसे भीतर कोई घाव खुल गया या भीतर कोई प्रेत जग गया है, और वह आवाजें लगाये चला जाता है। आखिरी हुँकार जैसे ही उसकी हो जाती है वैसे ही सब शांत हो जाता है। जैसे लहर उठी तूफान की आखिरी छलाँग लेकर, और गिर गयी। जैसे आखिरी क्लाइमेक्स आ गया, आखिरी चरम स्थिति आ गयी, और सब चीजें बिखर गयीं। फिर वह आदमी गिर जाता है। कभी सात दिन, कभी पन्द्रह दिन, और कभी इक्कीस दिन भी वह बिल्कुल शांत पड़ा रहता है। हाथ-पैर भी नहीं हिलाता। सब शांत हो जाता है। और जब सात दिन, या चौदह दिन या पन्द्रह दिन बाद वह आदमी वापस लौटता है तो वह वही आदमी नहीं होता, वह दूसरा ही आदमी होता है। तब वह कहते हैं, 'द ओल्ड मैन हैज डाइड', वह पुराना आदमी मर गया। अब वह नया आदमी है। इसमें कुछ भी पुराना नहीं खोजा जा सकता है—न इसका क्रोध, न इसका काम, न इसका लोभ, कुछ भी नहीं। पुराने से इसका सातत्य टूट गया है। 'मूंह' के प्रयोग से, ध्वनि के इतने तीव्र आह्वान से, पूरी चेतना का रूपांतरण हो गया। ओम् भी वैसी ही ध्वनि है।

सारी दुनिया के सब धर्मों के पास अपनी ध्वनियाँ हैं, जो पूजा में उपयोग की

जाती हैं। उनकी पूजा में जैसे जैसे गहराई बढ़ती जाती है वैसे वैसे भीतर ध्वनि की चोट से रूपान्तरण होने शुरू हो जाते हैं। भजन, कीर्तन भी विशेष ध्वनियों के आधार हैं, और इसीलिए सदा पुनरुक्ति पर जोर है। अगर आपने एक भजन एक दिन किया, दूसरे दिन दूसरा भजन किया, तीसरे दिन तीसरा भजन किया तो परिणाम नहीं होंगे। सतत चोट चाहिए, एक ही केन्द्र पर सतत चोट चाहिए! जैसे कोई आदमी एक हथौड़ी से एक जगह ठोंक दे, फिर दूसरी जगह ठोंक दे, फिर तीसरी जगह ठोंक दे तो उससे कील ठुकने वाली नहीं है। एक आदमी एक जगह खोद ले दो फीट, दो फीट दूसरी जगह खोद ले और तीसरी जगह खोद ले, उससे कोई कुआँ खुदने वाला नहीं है। सतत एक ही बिंदु पर खुदाई होनी चाहिये। इसलिए पुनरुक्ति पर इतना आग्रह रहा है। इतना आग्रह कि एक महीने भर आदमी 'मूंह' और 'मूंह' की पुनरुक्ति कर रहा है, या ओम् की ध्वनि लगा रहा है। एक ही गीत की कड़ी को दोहराये चला जा रहा है, एक ही धुन को किये चला जा रहा है। इसमें खतरा भी है कि अगर इसको मैकेनिकल ढंग, यांत्रिक ढंग से किया तो बेकार मेहनत चली जायेगी। योंही आदमी बैठा हुआ मुं मुं मुं करता है, जैसे एक काम कर रहा है, तो कुछ नहीं परिणाम होगा। यह 'मूंह' इसका प्राण बन जाय, जीवन मरण का सवाल बन जाय, यह दाँव लगा दे अपना सब, इस आवाज में इसके शरीर का रोयाँ रोयाँ सम्मिलित हो जाय, इसके एक एक सेल, एक एक कोष्ठ की ऊर्जा इसमें लग जाय, इसकी एक एक हड्डी, माँसपेशी, एक एक स्नायु इसमें संयुक्त हो जाय, खून इसका पुकारने लगे, हड्डियाँ चिल्लाने लगें! इसका पूरा का पूरा अस्तित्व 'मूंह' की आवाज बन जाय तो ध्वनि के द्वारा परिणाम हो पायेगा। भक्त भी एक ही कड़ी दोहराये चला जाय वर्षों तक। वह एक ही कड़ी दोहराने का प्रयोजन है। चोट करनी है एक ही जगह, और चोट करते ही चले जाना है जब तक कि द्वार खुल ही न जाय। और द्वार खुल जाता है!

पूजा में ध्वनि का, नृत्य का, कीर्तन का इन सबका उपयोग हुआ है। और इन सबका उपयोग मूर्ति के सामने है। ताकि किसी भी क्षण यह ख्याल न भूल जाय। क्योंकि अकेला नृत्य और बात है, वह तो नर्तक भी कर रहा है, नर्तकी भी कर रही है। उसको कोई परम ज्ञान उपलब्ध नहीं हो जाता। वह नृत्य के लिए ही नृत्य कर रहा है, तब कोई परम ज्ञान से संबंध न होगा। यह मूर्ति के सामने चल रहा है सारा क्रम। उस मूर्ति के सामने चल रहा है जिसमें अपने प्राण डाल दिये हैं। वह मूर्ति चौबीस घण्टे स्मरण दिलाती रहेगी कि नृत्य के लिए नृत्य नहीं है। यह नृत्य तो परिधि पर है। केन्द्र तो वहाँ है, केन्द्र तो तू है। उसके लिए सारा नृत्य चल रहा है। यह स्मरण बना ही रहे पूरे वक्त कि यह किसी परम सत्ता में छलाँग लेने की तैयारी है। वह मूर्ति सतत स्मरण दिलाती रहगी। अन्यथा नाच नाचने वाले हैं, गीत गाने वाले हैं,

बहुत अच्छा गीत भक्त गा लेते हैं। उससे कुछ भी न होगा। भक्त को संगीत से प्रयोजन नहीं है। भक्त को प्रयोजन कुछ और है। वह प्रयोजन यह है कि वह इतना मस्त हो जाय, वह इतना छोड़ पाये अपने को, कि कोई भी रौ, कोई भी धारा उसे बहा ले जाय अनन्त की तरफ। वह परिधि बन जाय और केन्द्र कोई और बन जाय; वह बह सके, प्रवाहित हो सके। प्रवाहित होने के लिए एक लिक्वीडिटी पैदा हो सके उसमें,—सब तरल हो जाय और बहने लगे।

अक्सर आपको भक्त रोता हुआ मिल जायेगा। वह दुख से नहीं रोता है आनंद से रोता है। और आँसू, भीतर जब कुछ तरल होता है तभी बहते हैं—चाहे दुख में तरल हो जाय, चाहे सुख में तरल हो जाय। अभी तक वैज्ञानिक ठीक से नहीं बता पाये हैं कि आँसुओं का प्रयोजन क्या है आदमी के शरीर में? ज्यादा से ज्यादा जो खोज पाये हैं, वह इतना ही खोज पाये हैं कि आँख पर जो धूल वगैरह जम जाती है, उसकी सफाई का प्रयोजन दिखायी पड़ता है। आँख के भीतर जो आँसुओं की ग्रन्थियां हैं उनका एक ही प्रयोजन मालूम पड़ता है कि आँख की सफाई कर सकें। लेकिन बड़ी हैरानी की बात है कि आँख की सफाई की जरूरत तभी पड़ती है जब कोई आनंद में होता है या दुख में होता है? बाकी समय आँख पर धूल नहीं जमती? बाकी समय आँख की सफाई की कोई जरूरत नहीं पड़ती? जब भी भीतर ओव्हरफ्लोइंग होती है, कुछ अतिरेक हो जाता है—चाहे दुख का, चाहे सुख का, तभी आँसू बहते हैं। आँसू की ग्रंथियाँ तभी खुलती हैं जब भीतर कुछ तरल हो जाता है और बहना शुरू हो जाता है। भक्त भी रोये, पर भक्तों का रोना बहुत अलग है। गैर भक्त नहीं जान सकता कि भक्त क्यों रोये! क्या हुआ उनके भीतर कि वे रो रहे हैं। आप देखेंगे, तो शायद लगेगा कि कोई तकलीफ है जीवन में, तो भगवान के सामने हाथ जोड़कर रो रहे हैं। जो तकलीफ से भगवान के सामने रो रहा है वह तो अभी केन्द्र खुद है। वह अभी भक्त नहीं है, अभी उसे पूजा का कोई पता नहीं है। नहीं, लेकिन एक क्षण ऐसा आता है कि चेतना बिल्कुल तरल हो जाती है, सब ठोसपन, सब फ्रोजेननेस, जहाँ जहाँ जम गये हैं हम, भीतर वह सब मिट जाता है, सब पिघल जाता है। तब आँसुओं की धारा अविरल शुरू हो जाती है। वह आँसू किसी परम अनुकम्पा को धन्यवाद देने के लिए ही बहते हैं। किसी परम प्रसाद को, किसी 'ग्रेस' को, जो उतरना शुरू हुआ है, उसको देने के लिए हमारे पास आँसुओं के सिवाय और कुछ भी नहीं बचता। वह जो हमें मिला है, उसकी हममें कोई पात्रता नहीं है! जो आनन्द उतरना शुरू हुआ है उसको सम्हालने की भी हमारे पास कोई जगह नहीं है! जो बरस रहा है हमारे ऊपर, वह हम कभी सोच भी नहीं सकते सपने में भी, कि हमें कभी मिल पायेगा! उसको धन्यवाद देने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है। न शब्द धन्यवाद दे पायेंगे जिसे, न और कुछ भी। उस वक्त आँख एक अलग

ही ढंग से रोती है। भक्त की आँख जैसी रोयी है वैसी कभी किसी की आँख नहीं रोयी है। प्रेमी की आँख भी रोती है, पर उसमें वह बात नहीं होती। प्रेमी की आँख में बहुत तरह की क्षुद्रताएँ इकट्ठी हो जाती हैं। लेकिन भक्त की आँख अकारण ही रोती है। कोई प्रयोजन नहीं है, अब कोई उपाय नहीं है, निरुपाय है भक्त। वह परमात्मा को धन्यवाद देना चाहे तो मुँह से शब्द नहीं निकलता। और जब मुँह नहीं बोलता तब आँख अपने ढंग से बोलना शुरू करती है। पूजा की पूर्णता आँसुओं में है, तरलता में है, बह जाने में है!

बहुत ढंगों से, बहुत प्रकार से मूर्ति का उपयोग इस परम अनुभूति के लिए किया गया है। जो मूर्ति के खिलाफ बोलते हैं उन्हें पूजा का कोई पता नहीं होता। और तब उनके बोलने का उतना ही उपयोग है जितना किसी भी अज्ञानी के बोलने का कोई उपयोग हो सकता है। लेकिन इस सदी में उस तरह की बातें बहुत प्रभावी हो गयी हैं। क्योंकि लोगों को भी कोई पता नहीं है। और जब किसी को भी कोई पता न हो तो जो भी हमें कहा जाय उसे स्वीकार करने के सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता। और मन का एक नियम है कि निषेध की बात को जल्दी स्वीकार कर लेता है। क्योंकि निषेध की बात में कुछ सिद्ध नहीं करना पड़ता है। एक आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है, तो उसे कुछ भी सिद्ध नहीं करना रहता। जो कहता है 'है' वह सिद्ध करके बता दे। इसलिये निषेध को स्वीकार करने के लिए मन बड़ी जल्दी राजी हो जाता है। विधेय को स्वीकार करने के लिए मन बड़ी बाधा डालता है। क्योंकि मन को फिर श्रम उठाना पड़ता है। पूजा एक विधेय है। मूर्ति भी एक विधेय है। इन्कार करना हो, कोई कठिनाई नहीं है। सिर्फ कह दो कि नहीं है।

तुर्गनेव ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। लिखा है कि गाँव में एक आदमी था। बहुत बुद्धिमान आदमी था, बहुत प्रतिभाशाली आदमी था। उसी गाँव में एक महामूढ़ भी था। उस महामूढ़ ने इस बुद्धिमान आदमी से जाकर पूछा कि मुझे भी बुद्धिमान होने का कोई रास्ता बता दो। उस बुद्धिमान आदमी ने पूछा कि तुझे बुद्धिमान दिखना है, कि होना है। क्योंकि 'होने' का रास्ता बहुत लंबा है। 'दिखना' हो तो बहुत आसान है मामला। उसने कहा, आसान ही बताइए, कठिन अपने से न हो सकेगा। होने की झंझट छोड़िये, दिखना काफी है, दिखने से काम चल जायेगा। उस बुद्धिमान आदमी ने कहा कि होने में तो कभी भूल-चूक भी हो सकती है, लेकिन दिखने में कभी भूल चूक नहीं होगी। उस महामूढ़ ने कहा, फिर और भी अच्छा है। आप देर न करिये। उस बुद्धिमान आदमी ने उसके कान में एक मंत्र बोल दिया और उस दिन से गाँव में खबर होनी शुरू हो गयी कि वह आदमी बुद्धिमान हो गया। सच ही सारे गाँव में खबर फैलने लगी। चर्चा सारे गाँव में चलने लगी। क्या मंत्र

फूंक दिया ! एक छोटा सा मंत्र, एक निषेध का सूत्र उसे दे दिया। उसने कहा, जब भी कोई कुछ कहे, फौरन इन्कार करो। जैसे कोई कहे कि मूर्ति-पूजा में कुछ है, कहो कि कुछ भी नहीं है। उस आदमी ने पूछा, अगर मुझे पता न हो तो भी ? तू पते की फिक्र ही मत कर। तू सिर्फ इन्कार करते जाना। कोई कहे कि कालिदास की किताब बहुत अद्भुत है। तू कहना, कचरा है। क्या है उसमें ? सिद्ध करो। कोई कहे बिथोवन का संगीत परम स्वर्गीय है, तू कहना कि नर्क में भी ऐसा संगीत बजता है। तुम सिद्ध करो कि स्वर्ग का कैसा है ! तू बस एक बात याद रख, इन्कार करना और जो गड़-बड़ करे, उससे कहना सिद्ध करो। पन्द्रह दिन में वह आदमी गाँव भर में महाबुद्धि-मान हो गया। लोगों ने कहा, उसका ओर-छोर पाना कठिन है। किसी ने कहा कि शेक्सपीयर ने इतने सुन्दर गीत लिखे। उसने कहा, क्या रखा है, कचरा है। स्कूल के बच्चे लिख सकते हैं। जो शेक्सपीयर की तारीफ कर रहा था, वह डर गया। क्योंकि कुछ भी सिद्ध करना कठिन बात है। और कुछ भी असिद्ध करने से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं है।

हमारी यह सदी बहुत अर्थों में कई तरह की मूढ़ताओं की सदी है। और हमारी मूढ़ता का जो सबसे बड़ा आधार है वह निषेध है। पूरी सदी कुछ भी इन्कार किये चली जाती है। जब दूसरे भी सिद्ध नहीं कर पाते तब वे भी निषेध की धारा में खड़े हो जाते हैं। लेकिन ध्यान रहे, जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतना ही क्षुद्र हो जायेगा। क्योंकि इस जगत का कोई भी सत्य विधेयक हुए बिना उपलब्ध नहीं होता। जितना निषेधात्मक होगा जीवन उतना बुद्धिमान ऊपर से दिखायी पड़ेगा, भीतर बहुत बुद्धिहीन हो जायगा। जितना निषेधात्मक होगा जीवन, उतनी ही सत्य की, सौंदर्य की, आनन्द की, किसी अनुभूति की किरण भी नहीं उतरेगी। क्योंकि कोई भी महत्तर अनुभव विधायक चित्त में ही अवतरित होता है। निषेधा-त्मक चित्त में कोई भी महत्वपूर्ण अनुभव अवतरित नहीं होता। असल में जिसने कहा, नहीं, उसका मन बन्द हो जाता है। कभी शब्द का ख्याल किया है आपने ? अपने कमरे को बन्द करके जोर से कह कर देखना, 'नहीं' तब आपको पता चलेगा सारा हृदय सिकुड़कर बन्द हो गया है। और उसी कमरे में जोर से कहना 'हाँ' और आपको पता लगेगा, सारे हृदय ने पंख खोलकर जैसे आकाश में उड़ान ली है। शब्द ऐसे ही निर्मित नहीं होते हैं। उनकी समानान्तर घटना भीतर घटती है। 'नहीं' कहते ही भीतर कोई चीज बन्द हो जाती है और सिकुड़ जाती है। और 'हाँ' कहते ही चीज खुल जाती है।

सेंट अगस्टीन से किसी ने पूछा, क्या है तेरी प्रार्थना, क्या है तेरी पूजा ? तो सेंट अगस्टीन ने कहा, यस, यस, यस माई लार्ड ! इतनी ही मेरी पूजा है। हां, हां,

हां मेरे प्रभु ! इतनी ही मेरी पूजा है। इतनी ही मेरी प्रार्थना है। वह तो नहीं समझा होगा कि वह क्या कह रहा, लेकिन जो हृदय इस पूरे जीवन को 'हां' कहने के लिए तैयार हो जाय वह आस्तिक है। आस्तिकता का अर्थ ईश्वर को 'हां' कहना नहीं, 'हां' कहने की क्षमता है। नास्तिक का अर्थ ईश्वर को इन्कार करना नहीं, नास्तिक का अर्थ, 'न' के अतिरिक्त किसी भी क्षमता का न होना। बस, एक ही क्षमता, 'नहीं'। तो ठीक है,—वैसा आदमी सिकुड़ता जायेगा, सिकुड़ता जायेगा और सड़ जायेगा। 'हां', और वैसा आदमी खुलता है, और खुलता है, फैलता है और विराट तक उसकी उड़ान संभव हो पाती है।

मूर्ति-पूजा एक बहुत विधायक विधि, एक पोजेटिव उपाय है। पर इतनी बातें सोचकर, समझ कर गहरे उतरेंगे तब आपको पता चलेगा कि मूर्ति में, पूजा में, मूर्ति-पूजा में, मूर्ति कहां है ? पूजा ही है। मूर्ति तो बस शुरुआत है। पूजा परमात्मा की है, यह भी ठीक है, लेकिन गहरे में तो आपका ही रूपांतरण है। परमात्मा तो बहाना है। उस बहाने, अपने को बदलने में सुविधा मिल जाती है। जिस डाक्टर रोडाल्फ की मैं बात कर रहा था शुरू में, इस आदमी ने एक और महत्वपूर्ण नियम खोजा है, वह मैं आपसे कहूं, जो इसके लिए उपयोगी होगा।

जब भी हमारे मस्तिष्क में कोई विचार पैदा होता है तो उस विचार को यात्रा करनी पड़ती है स्नायुओं से, मांसपेशियों से, शरीर के तंत्र से। समझ लो कि मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि मैं आपको प्रेम करूं और आपका हाथ अपने हाथ में ले लूं। मेरे मस्तिष्क का यह विचार अपनी यात्रा शुरू करता है। और मेरे शरीर के बहुत से यांत्रिक ढांचे को पार करके मेरी हाथ की अंगुलियों तक आता है। रोडाल्फ ने मनुष्य के स्नायुओं पर महत्वपूर्ण खोज करके यह पता लगाया है कि जब विचार पैदा होता है कि मैं प्रेम करूं और आपका हाथ अपने हाथ में ले लूं, तब अगर उसको हम मान लें कि उसमें सौ शक्ति है, सौ की पोटेंशियलिटी है तो उंगली तक पहुंचते पहुंचते एक की पोटेंशियलिटी रह जाती है। निन्यानवे की शक्ति, बीच के स्नायुओं में, जो ट्रांसफर होने की यात्रा है, उसमें खो जाती है। सभी विचार हमारे व्यक्तित्व की बाहरी पर्त तक आते-आते बिल्कुल निर्जीव हो जाते हैं। इसीलिए तो जब मन में हम सोचते हैं कि किसी का हाथ प्रेम से हाथ में ले लें तब जितना सुखद मालूम पड़ता है, उतना सुखद तब नहीं मालूम पड़ता है जब हम हाथ में हाथ लेते हैं। तब ऐसा लगता है कि कुछ खास न हुआ। यह बात क्या हो गयी ? यह कुछ खास क्यों न हुआ ? एक आदमी संभोग के संबंध में सोचता रहता है, बड़ा सुख मन में पाता है। लेकिन संभोग के कृत्य में जाकर सिर्फ डिप्रेस्ड होकर लौटता है। पीछे से लगता है कि इसमें कुछ हुआ नहीं। बात क्या हो गयी ? मस्तिष्क में जो विचार था वह सौ की पोटें-

शियलिटी का था । जबतक वह शरीर की परिधि तक आता है तबतक एक की पोटेंशियलिटी रह जाती है । और कभी कभी एक की भी नहीं रह जाती है । कभी कभी तो निगेटिव पोटेंशियलिटी हो जाती है । अगर रुग्ण शरीर हो, तो शरीर की यात्रा में इतनी शक्ति समाप्त हो जाती है कि वह विचार पहुंचते पहुंचते निगेटिव हो जाता है । यानी कई बार ऐसा हो जाता है कि जिसका हाथ हाथ में लेकर सोचा था सुख मिलेगा, उसका हाथ लेकर सिर्फ दुख मिलता है । ऋणात्मक हो जाता है । रोडाल्फ का कहना है कि अगर यही स्थिति है तो आदमी कभी सुख न पा सकेगा ।

क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है कि विचार मेरे मस्तिष्क से सीधी छलांग लगाकर आपके मस्तिष्क में प्रवेश कर जाय ? धर्म कहता है, ऐसा उपाय है । और रोडाल्फ भी कहता है, उसके अपने हजारों प्रयोगों के आधार पर, कि विचार सीधी छलांग भी लगा सकते हैं । तब, मेरे मन में जो विचार उठा है वह मेरे पूरे शरीर की यात्रा करके मेरे शरीर के माध्यम से आप तक जाय, इस पूरी चैनल का, इस पूरे यंत्र का उपयोग नहीं किया जाता । तब मैं अपने विचार को अपने आज्ञाचक्र पर आंख बन्द करके रोकता हूं और सीधा उसे छलांग लगाकर आपके आज्ञाचक्र में पहुंचाता हूं । सारी टेलीपैथी, सारा विचार का संक्रमण इसी कला पर निर्भर है । रोडाल्फ ने एक-एक हजार मील दूर तक विचार संक्रमित करके बताये । रूस में हावर्ड ने, और दूसरे प्रयोगों में दूसरे लोगों ने भी बहुत दूर तक विचार का संक्रमण करके बताया । तब अपने विचार को सिकोड़कर अपने आज्ञाचक्र पर इकट्ठा कर लेना है, जैसे कि कोई घूमता हुआ छोटा सा सूर्य आपके विचार का बन गया और आपके मस्तिष्क में घूमने लगा हो भीतर । उसे छोटा करते जाना है, —छोटे से छोटा । ताकि वह ज्यादा पोटेंशियल हो जाय । शरीर पर फैलता है तो पोटेंशियलिटी कम हो जाती है । उसे इकट्ठा करते जाना है एक बिन्दु पर । बस एक छोटा सा बिन्दु रह जाय प्रकाश का, ऐसा अनुभव कर लेना है । एक घड़ी आती है, जब वह इतना छोटा हो जाता है कि उसके आगे छोटा नहीं हो सकता, वही घड़ी छलांग लगवा देने की घड़ी है । तब सिर्फ इतना ख्याल करना है कि वह मस्तिष्क से छलांग लगाकर दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में चला गया है । वह दूसरा व्यक्ति चाहे कितनी ही दूर हो, सिर्फ आपकी कल्पना में होना चाहिए कि वह दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रवेश कर गया, उसके आज्ञाचक्र पर चला गया । वह ट्रांसफर हो जायेगा ! टेलीपैथी, विचार का संक्रमण बिना माध्यम के इस कला पर निर्भर है । इसलिए बिन्दु की साधना धर्म ने बहुत बहुत रूपों में की है । बिंदु की साधना का यही वैज्ञानिक रूप है । इसका व्यक्ति में भी उपयोग कर सकते हैं और इसको हम परमात्मा के लिए भी उपयोग कर सकते हैं।

जैसे महावीर की मूर्ति रखकर आप बैठें । महावीर की तो चेतना खो गयी अनंत

में । लेकिन इस मूर्ति के सामने अगर बैठकर आप अपनी, पूरे के पूरे प्राणों की ऊर्जा को आज्ञाचक्र पर इकट्ठा करके छलांग लगवा दें मूर्ति के मस्तिष्क में, तो तत्क्षण वह विचार महावीर की चेतना तक संक्रमित हो जायेगा । इस माध्यम से न मालूम कितने लोगों ने, न मालूम कितने पीछे आने वाले लोगों को हजारों वर्ष तक सहायता पहुंचायी है । उनके लिए फिर बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट मरे हुए व्यक्ति नहीं रहते, जीवित व्यक्ति रहते हैं । अभी और यहीं । उनके लिए बात सीधी सामने होती है । और इसका प्रयोग सीधा परमात्म-शक्ति में छलांग लगाने के लिए भी किया जा सकता है। लेकिन परमात्मा का केन्द्र आप कहां खोजेंगे ? इस अपने मस्तिष्क में इकट्ठे हुए बिन्दु को आप कहां छलांग लगाकर भेजेंगे ?

सरल पड़ेगा, एक मूर्ति के माध्यम से इसे संक्रमित कर देना । इसको अनंत में सीधा फेंकने में बड़ी कठिनाई होगी । फेंका जा सकता है अनंत में भी सीधा, लेकिन उसके अलग टेकनीक हैं । जिन धर्मों ने मूर्ति का प्रयोग नहीं किया उन धर्मों ने उन टेकनीकों का प्रयोग किया है जिनसे अनंत में सीधी छलांग लगायी जा सकती है । लेकिन अति कठिन है । इसलिए जो धर्म मूर्ति का प्रयोग नहीं करते वह थोड़े-बहुत दिन में घूम-फिर कर मूर्ति का प्रयोग शुरू कर देते हैं । अब जैसे कि इस्लाम ने मूर्ति का प्रयोग नहीं किया, लेकिन मस्जिद का प्रयोग शुरू हो गया । फकीरों की मजारें बन गयीं, फकीरों की समाधियाँ बन गयीं, उनका प्रयोग शुरू हो गया । आज भी मुसलमान दुनिया के किसी भी कोने में प्रार्थना करता है तो काबा के पत्थर की तरफ चेहरा करता है । वह काबा का पत्थर इस बिन्दु को उछालने के लिए काम में लाया जाने लगा, उनके द्वारा जो जानते हैं । जो नहीं जानते हैं वह तो सिर्फ मुंह करके खड़े हो जाते हैं । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि काबा के पत्थर पर बिन्दु को फेंका जाय कि किसी मूर्ति पर फेंका जाय । इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मूर्ति के चरण चूमे जायं कि काबा के पत्थर का जाकर बोसा लिया जाय । कोई फर्क नहीं पड़ता, एक ही बात है । मुहम्मद का कोई चित्र नहीं रखा, मुहम्मद की कोई मूर्ति नहीं बनायी, तो उससे क्या फर्क पड़ता है ? दूसरा काम करना पड़ा । यह बड़े मजे की बात है, मुहम्मद का चित्र नहीं बनाया, मूर्ति नहीं बनायी; तो फिर बहुत छोटे फकीरों की मजारों पर फूल चढ़ाने पड़ते हैं । मुहम्मद के बराबर का सब्सस्टीट्यूट नहीं खोजा जा सका फिर । तो अगर कृष्ण आज्ञा देते हों कि कोई फिक्र नहीं, मेरी मूर्ति के चरणों में तू आ जा, तो मैं मानता हूं कि बहुत दूरगामी हैं वे । क्योंकि कृष्ण की समझ यह है कि आदमी मूर्ति से तो बच न सकेगा । अनंत में सीधी छलांग लगानी इतनी दुष्कर है कि कभी करोड़ में एक आदमी लगायेगा । बाकी करोड़ का क्या होगा ? अगर कृष्ण की मूर्ति न मिली तो क ख ग की मूर्ति मिलेगी जो बिल्कुल ही साधारण होगी । मुहम्मद की मूर्ति से बचने का परिणाम क्या हुआ है ? परि-

णाम यह हुआ है कि गांव में एक फकीर मर जाता है तो उसकी मजार पर मुसलमान इकट्ठा होने लगते हैं। उसमें मुसलमान का कसूर नहीं है, उसमें मनुष्य की वह जो आंतरिक सुविधा है, वही है कारण। मैं भी मानता हूं कि मुहम्मद की मूर्ति से जो पैदा हो सकता वह इस मजार से नहीं हो सकता। हालांकि मुहम्मद जो कह रहे थे बिल्कुल ठीक कर रहे थे कि मूर्ति की कोई जरूरत नहीं है। मगर करोड़ में एकाध आदमी के लिए वह बात ठीक है। और जिस आदमी के लिए वह बात ठीक है उस आदमी के लिए किसी चीज की कोई जरूरत नहीं है। मूर्ति की नहीं, उसके लिए काबा की भी कोई जरूरत नहीं, उसके लिए कुरान की भी कोई जरूरत नहीं, उसके लिए इस्लाम की भी कोई जरूरत नहीं, गीता की भी कोई जरूरत नहीं, कृष्ण की, बुद्ध की, किसी की भी कोई जरूरत नहीं। उस आदमी के लिए तो सभी कुछ बेकार है। वह सीधा ही जा सकता है। पर बाकी सबके लिए? बाकी सबके लिए सबकी जरूरत है! और उचित यह होगा कि श्रेष्ठतम मिले उन्हें। जब जरूरत ही है तो उचित होगा कि बजाय हम किसी फकीर की मूर्ति बनायें, गांव के एक अच्छे आदमी की मूर्ति और मजार पूजें, उससे बेहतर है कि बुद्ध या कृष्ण या मुहम्मद या महावीर जैसे व्यक्ति की मूर्ति से यात्रा हो। जब जाना ही है सागर में, तो गांव की बनी डोंगी में यात्रा करना खतरे से खाली नहीं है। तब फिर विशाल पोत में, बड़े जहाज में यात्रा की जा सकती है। जब बुद्ध की नाव उपलब्ध होती हो, तो किसी आदमी ने गांव में ताबीज निकाल दिये हों, या किसी आदमी के आशीर्वाद से कोई बीमार ठीक हो गया हो, उसकी मजार पर इकट्ठा होना बिल्कुल पागलपन है। लेकिन अगर बुद्ध की मूर्ति उपलब्ध न होगी तो आदमी की जरूरत है भीतरी, कि वह कोई दूसरा सब्सटीट्यूट खोजेगा। ऊपर से दिखायी पड़ता है कि जिन लोगों ने इन्कार कर दिया उन्होंने बड़ी ऊंची बात की। लेकिन हजारों, लाखों साल का अनुभव था, जिन्होंने इन्कार नहीं किया था, उनके साथ भी। उनके साथ भी अनुभव था कि आदमी को जरूरत पड़ेगी ही। वह आदमी की भीतरी कठिनाई है कि वह अनंत पर सीधा नहीं जा सकता, इसलिए एक बीच में पड़ाव चाहिए। वह पड़ाव जितना श्रेष्ठतम मिल सके उतना बेहतर है।

मूर्ति, दुनिया में ऐसा कोई समाज नहीं रहा आज तक अस्तित्व में, जहां निर्मित न हुई हो। मनुष्य जाति का कोई कबीला नहीं रहा कहीं, किसी भी कोने में, जहां किसी न किसी भी रूप में मूर्ति निर्मित न हुई हो। स्वभावतः इससे पता चलता है कि मनुष्य को, मनुष्यता की कोई आंतरिक जरूरत मूर्ति से पूरी होती है। सिर्फ हमारी सदी है, जिसे मूर्ति का ख्याल टूटना शुरू हुआ है इन दो सौ, ढाई सौ वर्षों में। मूर्ति, ऐसा मालूम होने लगा है कि वह व्यर्थ का बोझ है। उसे हटा दिया जाय। लेकिन हटाने के पहले अगर मूर्ति-पूजा का पूरा ख्याल साफ हो जाय तो मैं नहीं सोचता हूं कि इस जगत में कोई बुद्धिमान आदमी उसे हटाने को राजी होगा। हां,

अगर मूर्तिपूजा का विज्ञान ही ख्याल में न रह जाय तो मूर्ति हटानी ही पड़ेगी, उसे बचाया नहीं जा सकता। वह अपने आप ही गिर जायेगी। आज लोग पूजा भी कर रहे हैं बिना जाने, मूर्ति के सामने हाथ भी जोड़ रहे हैं बिना जाने। पर वहां कोई हृदय का भाव नहीं रह गया है, सिर्फ औपचारिकता रह गई है। यह औपचारिक लोग ही मूर्ति को मिटवाने का कारण बनेंगे! क्योंकि यह मूर्ति भी पूज आते हैं और इनकी जिन्दगी में तो कोई फर्क पैदा नहीं होता! यही खबर लाते हैं कि बेकार है। एक आदमी चालीस साल से मूर्ति-पूजा कर रहा है और कुछ भी नहीं हो रहा है। वह अपने बेटे को कह रहा है कि तू भी मंदिर चल। वह बेटा पूछने लगा है कि आपको कुछ भी नहीं हुआ है चालीस साल में, आप मुझे कहां और किस लिए ले जाना चाहते हैं? कोई जवाब भी नहीं है उनके पास, क्योंकि हुआ हो तो जवाब की जरूरत नहीं रहती।

सुना है मैंने ईसप की कथा है एक छोटी सी, एक सिंह जंगल में एक एक जानवर से पूछ रहा है,—— पूछता है एक भालू से कि क्या ख्याल है तुम्हारा? जंगल का मैं राजा हूं न? भालू कहता है बिल्कुल ही, निश्चित ही। कौन इस पर शक कर सकता है? और यही पूछता है एक चीते से। चीता थोड़ा सा संकोच खाता है। फिर कहता है, नहीं, ठीक ही है बात, बिल्कुल ठीक है। आप राजा हैं। पूछता है वह फिर एक हाथी से। हाथी उसे उठाता है अपनी सूंड़ में और लपेटकर बहुत दूर फेंक देता है। सिंह नीचे गिर कर वहां से कहता है कि महाशय, अगर आपको जवाब का पता नहीं है तो सीधा मना क्यों नहीं कर देते हैं। फेंकने की क्या जरूरत है? सीधे ही कह दिया होता, इतनी तकलीफ की क्या जरूरत थी? मैं चला जाता! मगर जो हाथी फेंक सकता है उठाकर, वह सिंह को जवाब क्यों देने लगा?

कौन राजा है, इसके जवाब थोड़े ही देने पड़ते हैं। जो मूर्ति को पूज रहा है उसको जवाब न देना पड़े, अगर उसको पूजा का पता हो। उसकी जिन्दगी जवाब है। उसकी आंख, उसका उठना, उसका बैठना, वह जवाब बन जाय। लेकिन उसको जवाब देने पड़ते हैं। पर वे जवाब कुछ भी नहीं हैं। ऐसे ही लोग जो मूर्ति को पूज रहे हैं, मूर्ति को हटवाने का कारण बन गये हैं। पूजा का ही पता नहीं है, बस हाथ में मूर्ति रह गयी है। इसलिए मैंने पूजा की बात आपसे कही, कि उसे समझ लें, वह इनर टोटल ट्रांसफार्मेशन है; अन्तर समग्रता से परिवर्तन की व्यवस्था है। मूर्ति तो सिर्फ बहाना है—जैसे किसी खूंटी पर कोई कोट टांग दे। टांगना है कोट! आप मुझे देख लें कि मैं खूंटी पर कोट टांग रहा हूं, और आप मुझसे कहने लगें, कि क्या पागलपन है, इस खूंटी से क्या होगा? तो मैं आपसे कहूंगा कि खूंटी से कोई प्रयोजन नहीं है। यह तो कोट टांगने की व्यवस्था है। खूंटी नहीं होती तो फिर

किसी खीली पर टांगते, दरवाजे की नोक पर टांगते। वह तो टांगना पड़ेगा। लेकिन कोट टांगते वक्त आपको कोट दिखायी पड़ता है, खूंटी दिखायी नहीं पड़ती; इसलिए आप झंझट खड़ी नहीं करते और सवाल नहीं उठाते। मूर्ति तो खूंटी है, पूजा है असली चीज, लेकिन मूर्ति-पूजा के वक्त आपको पूजा तो दिखायी नहीं पड़ती,—कोट तो दिखायी नहीं पड़ता, खूंटी दिखायी पड़ती है। आप कहते हैं, क्यों दीवाल खराब रख रखी है? किस लिए रोक रखा है इस खूंटी को? कोट हो गया अदृश्य, खूंटी रह गयी है दृश्य। पूजा का कोई भी पता नहीं है आपके पास! मूर्ति बैठी रह गयी है, तो मूर्ति बड़ी असहाय हो गयी है और बड़ी पराजित हो गयी है। और बच न सकेगी, क्योंकि पूजा का प्राण ही उसे बचा सकता है। इसलिए मैंने पूजा की बात आपसे कही।